बृहत्त्रयी में दार्शनिक तत्त्व-एक समीक्षात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
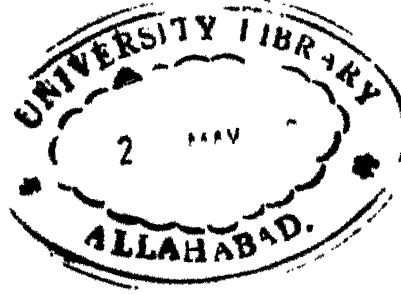
पर्यवेक्षक :-
डॉ० हरिदत्त शर्मा (रीडर)
संस्कृत विभाग

अनुसन्धाता :-
साहब लाल

संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

१९९२ ई०

निवेदन

भरविकृत "किरातार्जुनीयम्" माघकृत "शिशुपालवधम्" तथा श्रीहर्षप्रणीत "नैषधीयचरितम्" महाकाव्यों की गणना बृहत्त्रयी में की जाती है। पूर्ववर्ती, समकालीन एवं परवर्ती महाकाव्यों के मध्य इन महाकाव्यों की अपनी शैलीगत समता एवं विशिष्टता है। इन महाकाव्यों में भाषा-विन्यास , कल्पना और वर्णन-शैली के रूप में अत्यधिक समता दीख पड़ती है। बहुत विशिष्ट समता है, पाडित्य-प्रदर्शन की अभिरूचि की। भारवि,माघ और श्री हर्ष ने क्रमशः अपने पाण्डित्य को और विशिष्ट रूप से प्रदर्शित करने की चेष्टा की है। अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन के निमित्त इन महाकवियों ने अपने-अपने महाकाव्य में अधिक से अधिक दार्शनिक तत्त्वों को डालने की चेष्टा की है। इस प्रयत्न में श्रीहर्ष ने "नैषधीयचरितम्" महाकाव्य को मानो दर्शन का आकर- ग्रन्थ बना डाला है। वस्तुतः उपर्युक्त महाकाव्यों में दार्शनिक तत्त्वों के अध्ययन एवम् अनुसन्धान करने का अच्छा विषय बनता है। अध्ययन का अच्छा सा रूप यह भी बनाता है कि इन महाकवियों ने एक-दूसरे की तुलना में अपनी कल्पना के शब्द-जाल द्वारा दार्शनिक तत्त्वों को कितने सुन्दर ढंग से प्रयुक्त किया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में बृहत्त्रयी के तीनों महाकाव्यों में दार्शनिक तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है और एक तुलना भी कर दी गयी है।

एम0ए0 की कक्षा की अवधि में मैंने यू0जी0सी0 (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) की जे0आर0एफ0 (कनिष्ठ अध्येता वृत्ति) की परीक्षा दी और मेरा चयन हो गया। मेरे मस्तिष्क – प्रान्त में बिखरे अनुसन्धान के विचार मूर्त होने लगे। सौभाग्य से मेरा नामांकन मेरी शिक्षा-स्थली प्रयाग-भूमि के इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हो गया। मेरे अपने प्रबल भाग्य से मुझे गुरुवर्य डॉ0 हरिदत्त शर्मा के स्नेहमय आशीर्वाद एवं निर्देशन की स्वीकृति मिल गयी । पूज्यपाद गुरुदेव जी ने बृहत्त्रयी पर अनुसन्धान करने के मेरे विचारों को जान कर "बृहत्त्रयी में दार्शनिक तत्त्व एक समीक्षात्मक अध्ययन" जैसे एक सुन्दर विषय को चुनने में सहयोग प्रदान की ।

मुझे गुरुवर्य डॉ0 हरिदत्त शर्मा और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के शिक्षकों से अनुसन्धान कार्य में बहुत अधिक सहयोग मिला, जिसके लिए मैं बहुत अधिक आभारी हूँ। दूसरी ओर मेरे पूज्य माता-पिता जी खूब अधिक पढ़ लेने को अपनी आशा से मुझे प्रेरित करते रहे। आदरणीय अग्रज श्री लालबहादुर यह कहकर मेरी आत्मा को शक्ति को स्फूर्ति करते रहे कि तुम्हारा उन्नत जीवन ही वस्तुत: इस परिवार और मेरे गौरव का मापदण्ड है। मैं अपने जीवन में उनसे कितनी मानसिक एवं भौतिक ऊर्जा पाता रहा हूँ, यह सर्वथा वर्णनातीत है।

मैं यू0जी0सी0 का प्रभूत आभारी हूँ, जिसने अनुसन्धान-कार्य के लिए आर्थिक सहायता अध्येतावृत्ति के रूप में दी । मैं पूज्य गुरू डॉ0 हरिदत्त शर्मा और अन्य विभागीय गुरूदेवों का परम आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे अनुसन्धान कार्य में सतत सहयोग दी। मैं उन पुस्तक-लेखकों का कृतज्ञ हूँ, जिनकी कृतियों से शोधार्थ अध्ययन किया गया है और कतिपय अंशों को उद्धृत किया गया है। पुस्तकालयाधिकारी भी शोध-कार्य में सहयोग के कारण कृतज्ञता-ज्ञापन के पात्र है। मैं अपने उस मित्र-समुदाय का भी कृतज्ञ हूँ, जिसने आपात् समस्याओं के समाधान में सहयोग किया है।

मैं आशा करता हूँ कि यह शोध-प्रबन्ध अपने स्वरूप में पूर्ण रहेगा, और जिज्ञासुओं को ऐच्छिक लाभ पहुँचाता रहेगा ।

अनुसन्धाता

इलाहाबाद

1.12.1992

साहब लाल

विषय- सूची

प्रथम- अध्याय

पृष्ठ संख्य

द्वितीय -अध्याय

तृतीय-अध्याय

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तमअध्याय

0 0 0 0 0

0 0 0

0

प्रथमोऽध्याय:

प्रथम अध्याय

भूमिका

आनन्द हृदय की वस्तु है। मनुष्य के अन्वेषण के लिए अपनी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं का सम्प्रयोग अपनी दैनिक चर्याओं में करता है। इस आह्लादक तत्व की अवाप्ति के लिए भिन्न-भिन्न लोगों ने भिन्न-भिन्न मार्गों को ज्ञापित किया है। दार्शनिक शास्त्रकारों ने योगाभ्यास, तपस्यादि को सुख-प्राप्ति का साधन बतलाया है, दूसरी ओर काव्य शास्त्रकारों ने काव्य को आनन्द का सुगम साधन बतलाया है। जीवन के कर्तव्य एवं तज्जनित उद्योग से अवकाश के क्षणों का होना प्राकृतिक नियम है। इन अवकाश के क्षणों में मनुष्य आनन्द से आप्लावित
वाणी द्वारा करते हैं। लघु पक्षियों के कलरव उसे एक संगीतमय
हृदय की उन्मुक्तता का आगुन्जन हृदय को संगीतमय छन्द जैसे आभासित होते हैं और उसकी चेष्टाएँ बहुत कुछ खगवत् होने लगती हैं। वस्तुतः ऐसे भावों की अभिव्यक्ति ही काव्य को जन्म देती है। वैयाकरणो ने "काव्य" एवं "कवि" की व्युत्पत्ति इसी अर्थ में दी है- "कवेरिदं कार्यं भावो वा काव्यम्।" और "कवते पद्य्
वर्णयतीति कविः।" अग्नि पुराण में लिखा है कि "इस असीम काव्य संसार में कवि ही ब्रह्मा है।" काव्य शास्त्र के आद्य आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नाट्य एवं काव्य की परिभाषा की है कि नाट्य अथवा काव्य धर्मार्थियों को धर्म, कामार्थियों को काम, विद्याभिलाषियों को विद्या, दीन-दुखियों को परमशान्ति देने वाला एकमात्र साधन है। वामन ने कीर्ति और प्रीति को काव्य का प्रयोजन माना है। भामह के अनुसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कला वैचक्षण्य, कीर्ति एवं प्रीति काव्य से प्राप्त होते हैं। कुन्तक भी काव्य को हृदयाह्लादकारक मानते हैं। रूद्रट सत्काव्य को सर्वमनोरथदायक मानते हैं। इस प्रकार निष्कर्ष निकलता है कि सभी आचार्यों

की मान्यता है कि काव्य से परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसलिए उसे "ब्रह्मानन्द-सहोदर" कहते है। काव्यप्रकाशकार मम्मट का कथन है कि काव्य यश-प्रदाता, अर्थ का उत्पादक, व्यावहारिक निपुणता-कारक, अनिष्टनाशक पढ़ने-सुनने-देखने आदि के साथ ही शीघ्र आनन्द प्रदाता तथा कान्ता(स्त्री) के समान (सरस रूप से कर्तव्याकर्तव्य) का उपदेश देने वाला है।

पुराण, इतिहास आदि के देखने से स्पष्ट हो जाता है कि काव्य के द्वारा व्यास, वाल्मीकि, अश्वघोष, भारवि, दण्डी, बाण, माघ, श्रीहर्ष आदि महाकवियों की कीर्ति शताब्दियों के व्यतीत हो जाने पर भी आज भी अक्षुण्ण है। इन कवियों ने अपनी कृतियों में जीवन के जीवन्त तत्त्वों एवं सहज अनुभूतियों का उद्घाटन किया है। इसलिए दु:साध्य योग, तप, वेद, वेदान्तादि के परि-शीलन की अपेक्षा ब्रह्मानन्द सहोदर काव्य शास्त्र के परिशीलन में ही काव्य का प्रयोजन है। वेद, धर्मशास्त्र, स्मृतियाँ आदि सत्कार्यों का उपदेश दे सकते हैं। किन्तु काव्य ही जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करके पाठक को स्वयं स्वपरिस्थितियों का निर्णायक बना देता है। वस्तुत: मानव की उदात्त भावनाओं को सबल एवं सक्रिय बनाना काव्य की विशेषता है।

काव्य के शरीर का निर्माण शब्द एवं अर्थ से होता है। ये दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं। कालिदास ने लिखा कि शब्द और अर्थ की एकता पार्वती एवं परमेश्वर शंकर की एकता के तुल्य है। शब्द और अर्थ काव्य का शरीर व्यक्त हैं। किन्तु उसकी आत्मा के रूप में भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न तर्क दिये हैं। भारतीय विचारधारा के अनुसार अधोलिखित सम्प्रदाय द्रष्टव्य हैं-

भामह और दण्डी अलङ्कार को काव्य की आत्मा मानते हैं। भामह ने कहा है कि सुन्दर होने पर भी आभरण रहित कामिनी-मुख शोभित नहीं होता है। दण्डी ने अलङ्कारों को शोभाधायक धर्म कहा है। रीति सम्प्रदाय के आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है अर्थात् वर्णन शैली का ही काव्य में प्राधान्य होता है। वक्रोक्ति सम्प्रदाय के आचार्य कुन्तक का मन्तव्य है कि चमत्कार पैदा कर देने वाली काव्य -भंगिमा ही वक्रोक्ति है। रस सम्प्रदाय का विचार है कि रस ही काव्य की आत्मा है। भरतमुनि ने इस सम्प्रदाय की स्थापना की थी और इस तथ्य को विश्वनाथ ने अपनी कृति"साहित्य-दर्पण" में स्पष्ट किया है। ध्वनि सम्प्रदाय के संस्थापक आनन्दवर्धन ने "व्यञ्जित अर्थ" अर्थात् "ध्वनि" को काव्य का जीवन माना है।

दृश्य और श्रव्य के भेद से काव्य दो प्रकार का होता है। इसमें प्रथम दृश्य काव्य का नामान्तर रूपक भी है।यह नाटकादि भेद से दस प्रकार का होता है। तथा द्वितीय श्रव्यकाव्य-पद्यात्मक,गद्यात्मक और उभयात्मक-अर्थात् गद्यपद्यात्मक भेद से तीन प्रकार का होता है। इसमें भी प्रथम पद्यात्मक काव्य के §1§ महाकाव्य §2§ खण्ड काव्य §3§ कुलक §4§ कलापक §5§ सन्दानितक §6§ युग्मक और §7§ मुक्तक सात भेद हैं। द्वितीय गद्यात्मक काव्य के -कथा और आख्यायिका ये दो भेन्द हैं। जबकि विश्वनाथ मत से मुक्तक,वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय और चूर्णक ये चार भेद होते हैं। तृतीय उभयात्मक काव्यचम्पूकाव्य

कहा जाता है और उसी को राजस्तुति परक होने पर विरुद्ध तथा अनेक भाषा-मय होने पर करम्भक कहते हैं।

संस्कृत महाकाव्य की परम्परा

संस्कृत महाकाव्य श्रवव्यकाव्य के अन्तर्गत आने वाला एक प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण भेद है। इसका कलेवर व्यापक एवं विषयक्षेत्र वैविध्यमय होता है। साहित्य-दर्पण में प्राप्त महाकाव्य का लक्षण सर्वांगीण और व्यापक है। विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार है- महाकाव्य सर्गों में विभक्त होता है। इसका नायक देवता, कुलीन क्षत्रिय या एक वंशज कुलीन राजा होता है। श्रृंगार, वीर और शान्त रस में से कोई एक प्रधान रस होता है और अन्य उसके सहायक। इसमें सभी नाटकीय सन्धियाँ प्रयुक्त होती हैं। इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक या किसी सज्जन व्यक्ति से सम्बद्ध होती है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन दिया रहता है और किसी एक फल की प्राप्ति का वर्णन होता है। प्रारम्भ में देवादि को नमस्कार, आशीर्वाद या वस्तुनिर्देश होता है। प्रत्येक सर्ग में एक प्रकार का छन्द होता है, किन्तु अन्त में छन्द-परिवर्तन हो जाता है। इसमें आठ से अधिक सर्ग होते हैं। कहीं विभिन्न छन्दों वाले सर्ग भी प्राप्त होते हैं। सर्ग के अन्त में भावी कथा का सङ्केत मिलता है। इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि प्रदोष, अन्धकार, दिन प्रातः, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, युद्ध विवाह, पुत्र, उदय आदि का वर्णन होता है। ग्रन्थ का नाम कवि-कथानक, नायक या प्रतिनायक के नाम पर रखा होता है। सर्गों का नाम वर्णित कथा के आधार पर रखा होता है।

महाकाव्य के रूप में आदि लेखन वाल्मीकि का रामायण है, जिसमें महाकाव्य के मानक लक्षणों का अंशत: संयोग पाया जाता है। यद्यपि जाम्ववतीजयम् स्वर्गारोहण आदि महाकाव्यों का उद्धरण मिलता है, किन्तु वे आज अप्राप्य हैं। वस्तुत: महाकाव्य के मानक लक्षणों से उपेत महाकाव्यों में महाकवि कालिदास का रघुवंश और कुमारसम्भव प्रमुख महाकाव्य हैं। कालिदास के महाकाव्य प्रसादात्मक शैली में लिखे गये है। प्रसादात्मक शैली में अश्वघोष ने भी बुद्धचरित और सौन्दर-नन्द महाकाव्यों की रचना की है। परवर्ती काल में एक नयी आलंकारिक शैली की स्थापना हुई जिसमें भारवि, माघ, श्रीहर्ष, भट्टि आदि कवियों ने महाकाव्यों की रचना की। भारवि का किरातार्जुनीयम् माघ का शिशुपालवधम्, श्रीहर्ष का नैषधीयचरितम् इस शैली के उत्कृष्ट महाकाव्य हैं। परवर्ती महाकवियों में भट्टि कुमारदास, रत्नाकर राजशेखर, हरिश्चन्द्र तथा कश्मीरी महाकवियों, बौद्धमहाकवियों, जैनमहाकवियों की गणना की जाती है। श्लेषात्मक शैली में भी महाकाव्यों की रचना हुई जैसे- धनन्जयकृत-द्विसन्धान काव्य, कविराजसूरिकृत-राघवपाण्डवीय, हरिदत्तसूरिकृत- राघवनैषधीय, विद्यामाधवकृत- पार्वतीपरुक्मणीय, राजचूड़ा-मणि दीक्षितकृत-राघवयादव पाण्डवीय चिदम्बरसुमतिकृत-राघवपाण्डवयादवीय आदि है।

अन्तत: यह कहा जा सकता है कि संस्कृत -महाकाव्यों की रचना उत्कृष्ट मानकों के आधार पर की गयी । महाकाव्यों की रचना कापरम उद्देश्य पाठक को आह्लादक आनन्द की प्राप्ति कराना रहा। संस्कृत महाकाव्य विविध शैलियों में लिखे गयें जो कवियों के उद्देश्य एवं स्वभाव के अनुरूप हैं।

महाकाव्यों के मध्य बृहत्त्रयी का विशिष्ट स्वरूप

बृहत्त्रयी -किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम्-महाकाव्य के लक्षणों से पूर्णतः संयुक्त है। बृहत्त्रयी के महाकाव्यों में उन सभी लक्षणों का निर्वाह किया गया है जिन्हें काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के लक्षणों के रूप में निर्धारित किया है। बृहत्त्रयी के महाकाव्य अनेक सर्गों में निबन्धित हैं। इसके महाकाव्यों के कथानक पौराणिक हैं। नायक चतुर उदात्त और महाशूर हैं। चतुर्वर्गफल-प्राप्ति महानायकों का लक्ष्य है। नगर, पर्वत, नदी, ऋतु-चन्द्र-सूर्य, उद्यान, जलक्रीड़ा, मधुपान, रत, उत्सव, वियोग संयोगादि का वर्णन इन महाकाव्यों में विधिवत् किया गया है। अलङ्कारों की सुसर्जना, रसभाव-प्रस्रवण की अजस्रधारा, कर्णप्रिय छन्दों का विधान, अनेकानेक लोक रंजक वृत्तान्तों का निवेश, सन्धि-समन्वय आदि तत्त्व बृहत्त्रयी कोपरिपुष्ट महाकाव्य के सामर्थ्य से संयुक्त करते हैं।

महाकाव्य के सशक्त लक्षणों से सन्नद्ध होने के बाद भी महाकाव्यों के मध्य बृहत्त्रयी का विशिष्ट स्वरूप है। तीनों महाकाव्यों-किरातार्जुनीयम्, शिशु-पालवधम्, नैषधीयचरितम् को अपनी विशिष्ट लेखन शैली के कारण ही संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों की धारा में "बृहत्त्रयी" नाम से विनिर्धारित किया गया है। यह स्पष्ट नहीं है कि इन तीनों महाकाव्यों के लिए बृहत्त्रयी शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग किसने और कब किया। कालिदास के काव्यों को संस्कृत-साहित्य में अति उच्चस्थान प्राप्त है तदापि उनके काव्य बृहत्त्रयी में नहीं रखे गये हैं। उनके काव्यग्रन्थों

कुमारसम्भवम्, रघुवंशम्, मेघदूतम्- को लघुत्रयी में अन्तर्भूत किया गया है। विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष के नैषधीयचरितम् की रचना के पश्चात् ही लघुत्रयी और बृहत्त्रयी नाम प्रकाश में आया। वस्तुत: तत्कालीन विद्वत्समाज में कालिदास को अलग से महिमामंडित करने के लिए उनके काव्यों को लघुत्रयी नाम उचित समझा गया। इस युग के विद्वत्-समाज को कुन्तक द्वारा विनिर्दिष्ट विचित्र-मार्ग के अनुसर्ता कवियों भारवि, माघ, श्रीहर्ष द्वारा रचित किरातार्जुनीयम् आदि काव्य-रचनाओं में कालिदास आदि सुकुमारमार्गी कवियों की सुकुमार काव्य-रचनाओं से कही अधिक आनन्द मिलता था। इस प्रकार के बौद्धिक वातावरण तथा काव्य-विन्यास की नवधारा में विचित्रमार्ग की परम्परा के आधार पर विरचित किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम् को बृहत्त्रयी नाम से विशिष्ट स्थान मिला। बृहत् शब्द का प्रयोग वस्तुत: इन तीनों की काव्य-सम्पदा एवं कलेवर को देखकर ही किया गया होगा। विचित्र मार्ग अर्थात् आलंकारिक शैली विद्वत्-समाज में नैषधीयचरितम् की रचना तक पूर्णत: प्रतिष्ठित हो चुकी थी। इस प्रकार की काव्य-शैली में काव्य- विधा की रचना कर तत्कालीन कवि-समाज अपने को गौरान्वित समझता था। इस विचित्र मार्ग-अति आलङ्कारिक शैली- के प्रथम कवि हैं भारवि। भारवि के अनुकरण पर माघ ने शिशुपालवधम् की रचना की। किन्तु इन दोनों की स्पर्धा से आगे निकल जाने की भावना से श्रीहर्ष ने नैषधीयचरितम् महाकाव्य की रचना की। वस्तुत: श्रीहर्ष ने भारवि द्वारा प्रादुर्भूत विचित्र-मार्ग

की काव्य-परम्परा को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया । इस विचित्र -मार्ग की परम्परा पर अन्य काव्य भी लिखे गये हैं, किन्तु वे काव्य बृहत्त्रयी के गुणों से अति निम्नस्तरीय हैं।

आचार्यकुन्तक ने अन्य रीतियों एवं मार्गों का खण्डन कर तीन शैलियों की स्थापना की है-सुकुमार, विचित्र और मध्यम। वस्तुतः ये शैलियाँ कवियों के स्वभाव पर अवलम्बित होती हैं। जिस कवि का जैसा स्वभाव होता है तदनुसार उसकी काव्य-शक्ति भी होती है। विचित्र-मार्ग का सर्वप्रमुख लक्षण है शब्द और अर्थ के अन्दर उक्ति-वैचित्र्य रूप वक्रता का स्फुरण होना। इस मार्ग के कवि किसी वस्तु का नूतन वर्णन प्रस्तुत नहीं करते हैं। किन्तु उक्ति-वैचित्र्य मात्र से उसे किसी अपूर्व सौन्दर्य को कोटि में पहुँचा देते हैं। भारवि, माघ, श्रीहर्ष के काव्य-ग्रन्थ उक्ति-वैचित्र्यों से भरे पड़े हैं। उनके काव्यों में अलङ्कारों को बहुलता से प्रयुक्त किया गया है। उनमें नूतन कल्पनाओं का सम्प्रयोग, व्यङ्ग्यार्थ का प्राधान्य, तथा सरस पदार्थों के लोकोत्तर वैचित्र्य से परिपूर्ण वर्णन प्राप्त होते हैं। इनके काव्यों में पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रबलभावना द्रष्टव्य है। इस श्रृखला के कवि हैं- भारवि, भट्टि, माघ, श्रीहर्ष, मङ्खक, रत्नाकर आदि।

लघुत्रयी के तीनों काव्य महाकवि कालिदास कीकृतियाँ है, जिसकी रचना शैली सुकुमार -मार्ग को परम्परा से सम्बद्ध है। संस्कृत-काव्य धारा में वाल्मीमिकि, कालिदास, अश्वघोष आदि सुकुमार मार्ग के कवि हैं। वाल्मीकि रचित रामायण सुकुमार-शैली की सुन्दर रचना है। इनमें छोटे-छोटे एवं मनोरम पदों द्वारा भावपूर्ण अर्थों की अभिव्यक्ति प्राप्त है। इनके वर्णनों में नितान्त

स्वाभाविकता है तथा रसों का मञ्जुल समन्वय है। अलङ्कारों का भी प्रयोग है, किन्तु वे अलङ्कार अति स्वाभाविक ढंग से संयुक्त किये गये हैं। इन अलङ्कारों के सम्प्रयोग से वस्तुचित्र का सौन्दर्य भी मधुर एवं प्रखर रूप से स्फुरित होता है जिससे सहृदय पाठकों का मनमुग्ध ही हो जाता हैं। यहाँ हम कह सकते हैं कि विचित्रमार्गी सुकुमारमार्गी के गुणों से बहुत अधिक भिन्नता रखते हैं। विचित्रमार्गी अति आलङ्कारिकता पर बल देते हैं तो सुकुमारमार्गी स्वाभाविकता और रस प्रस्रवण पर। इस अन्तर के अतिरिक्त भी बृहत्त्रयी की लेखन-शैली में कुछ अन्य विशिष्टतायें हैं जो बृहत्त्रयी को अन्य महाकाव्यों की श्रेणी से अलग करती हैं। उन विशिष्टताओं को हम निम्नवत् अवलोकित कर सकते हैं-

काव्य-रचना का सर्व प्रमुख उद्देश्य माना गया है शिवेतर की क्षति कर लोक-कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करना। महाकाव्यकार इस भावना से अभिप्रेरित होता है कि वह अपनी काव्य-रचना द्वारा लोक-रंजन में सहयोग कर सके अतः एव उसके काव्य में जीवन के गुणों परप्रकाश डाला गया रहता है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह प्राय: काव्य की रचना जन-सामान्य की बुद्धि से ग्राह्य करने योग्य शैली में करता है। उसके द्वारा प्रणीत काव्य जन-सामान्य का हृदय-गम्य होता है। इस प्रकार वह काव्यकार और उसका काव्य लोक-प्रिय हो जाता है। किन्तु ,बृहत्त्रयी के रचनाकारों ने उपर्युक्त दृष्टिकोण को अमान्य ठहराकर जन-समान्य में अपनी लोक-प्रियता के सिद्धान्त को अनङ्गीकृत कर दिया है। वे विद्वत्-समाज में ही अपनी लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा को बहुतहो अभ मानते हैं।

वे विद्वज्जनों की बुद्धिसह्य रचना को अपना उद्देश्य स्थापित करते हैं। इसी लिए बृहत्त्रयी में साधारण पाठकों की भावना एवं क्षमता का सम्मान न कर उच्चपाण्डित्य प्रदर्शन पर बल दिया गया है। तीनों महाकवि सरल एवं सहज लेखन से पराङ्-मुखी हैं और वे क्लिष्ट, दुरूह और आलंकारिक लेखन की मानसिकता से अभिभूत हैं। वे पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना में दर्शन, व्याकरण, संगीत-शास्त्र, धर्मशास्त्र, आयु-र्वेद, कामशास्त्र, ज्योतिषशात्रादि विविध विषयों को जानबूझकर अपने काव्य में प्रयुक्त करते हैं और इसी में अपना गौरव समझते हैं। बृहत्त्रयी के इन तीनों कवियों में पाण्डित्य-प्रदर्शन को श्रेष्ठता की स्पर्धा का एक उत्तरोत्तर क्रम देखने को मिलता है। भारवि द्वारा प्रवर्तित आलङ्कारिक शैली और पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना माघ द्वारा बलवत्तर रूप में अपनायी गई है और श्रीहर्ष ने उन दोनों को पीछे छोड़कर उस शैली को परमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। इसीलिए किसी प्रशस्तिकार ने -"नैषधं विद्वदौषधम्" जैसी उक्ति कही है।

भारवि, माघ और श्रीहर्ष ने महाभारत के छोटे-छोटे प्रसंगों को विषय बनाकर महाकाव्यों के रूप में परिणत कर दिया है। कवित्रय ने अपनीप्रखर कल्पना से सम्प्रयुक्त लघु प्रसंगों में कृत्रिम परिस्थितियाँ (वस्तु-विषय) पैदाकर विशाल महाकाव्य का रूप प्रदान किया है। भारवि ने अर्जुन का पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के निमित्त शंकर भगवान् की आराधना करना तथा उनके द्वारा इष्ट अस्त्र का प्राप्त करना मात्र इतने लघु प्रसंगो को महाकाव्य को विषय बनाया है। माघ ने शिशुपाल के वध के निमित्त श्रीकृष्ण का युधिष्ठर के यज्ञ में जाना और वहाँ शिशुपाल का वध करना, को ही अपने महाकाव्य का विषय बनाया है। श्रीहर्ष ने नल और दमयन्ती के प्रेम और स्वयंवर में दमयन्ती द्वारा नल का वरण कर

विवाह करना, प्रसंगमात्र को अपने महाकाव्य का विषय बनाया है। वस्तुत: महाकाव्य की रचना के लिए इतने छोटे प्रसंगों को महाकाव्य का आधार-विषय नहीं बनाया जा सकता है, किन्तु कवियों ने छोटी-छोटी घटनाओं को विस्तृत रूप देकर अपने-अपने महाकाव्यों को कईसर्गों में सज्जित कर दिया है। प्रभात-वर्णन, सन्ध्या-वर्णन, स्वयंवरवर्णन, केलिवर्णन आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। बृहत्त्रयी के कवियों ने छोटी-छोटी घटनाओं को अनावश्यक रूप से विस्तृत रूप देकर धारा-प्रवाह में अवरोध उत्पन्न कर दिया है। इसी लिए पाठक वर्ण्य-विषय से ऊबने लगता है। वस्तुत: कवित्रय घटना से सम्बन्धित अपने ज्ञान को उड़ेल देना चाहते हैं और घटना से सम्बन्धित किसी भी पक्ष को नहीं छोड़ना चाहते। ऐसी स्थिति में कवियों को पाण्डित्य-प्रदर्शन का पूरा अवसर मिलता है। कवित्रय अपने छन्द-विधान, अलङ्कार-ज्ञान,पौराणिक वैशारद्य, दार्शनिक-पाण्डित्य का बल-पूर्वक प्रयोग करते हैं। इस ज्ञान-प्रदर्शन की लिप्सा में पड़कर काव्य-रचना रस और स्वाभाविकता से बहुत दूर छूट जाती है। कवित्रय अलङ्कारों के प्रयोगसे नहीं ऊबते हैं, वे अलङ्कारों की छटा और घटा लगा देते हैं। वे हार के मणि-विन्यास के समान एक अलङ्कार के लिए अन्य अलङ्कारों का उपनिबन्धन करते हैं। जिस प्रकार रत्नों की किरणों की शोभा के उल्लास से देदीप्यमान आभूषण रमणी के शरीर को ढककर अलङ्कृत करते हैं उसी प्रकार विचित्रमार्गी बृहत्त्रयी के महा-कवियों द्वारा प्रयुक्त उपमा आदि अलङ्कारों की महिमा इतनी प्रकृष्ट होती है कि अलङ्कार्य उनके स्वरूप से आच्छादित सा होकर प्रकाशित होता है।

शिशुपालवध का चतुर्थ सर्ग यमकप्रियता का उदाहरण है। षोडश सर्ग में माघ ने शिशुपाल के दूत द्वारा जो वचन कहलवाये हैं उसमें श्लेषालङ्कार की छटा झलकती है। नैषध का त्रयोदश सर्ग श्लेष-रचना की छटा से संयुक्त है। बृहत्त्रयी के महाकवियों में छंदों का दुरूह एवं क्लिष्ट प्रयोग की विशिष्ट मनोवृत्ति देखी जा सकती है। छन्दों का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि बृहत्त्रयी के महकवियों ने छन्द रचना में विशेष श्रम किया होगा। भरवि के किरातार्जुनीयम् के पञ्चदश सर्ग में, माघ के शिशुपालवधम् के एकोनविंशसर्ग में चित्रबन्ध छन्द-रचना देखी जा सकती है। बृहत्त्रयी के रचनाकारों ने भाषा को सरलता, सहजता एवं प्रवाहमयता के स्थान पर भाषा की क्लिष्टता, दुरूहता कोप्रयुक्त किया है। नवनिर्मित शब्दों का प्रयोग तीनों महाकाव्यों में सर्वत्र प्राप्त होता है। वर्णानात्मक स्थिति में भाषा कुछ सुग्राह्य तो होती है कि पौराणिक आख्यानों, दार्शनिक तत्त्वों, अलङ्कारों आदि के प्रयोग के स्थलों पर भाषा दुरूह और अप्रवाहमय हो गयी है। नूतन शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में तीनों महाकवियों की मनोवृत्ति एक समान रही है। व्याकरण की विविध विधियों का प्रयोग, नये शब्दों की सर्जना तीनों महाकाव्यों में सर्वत्र प्राप्त है। वस्तुत: भाषा को सहजता के स्थान पर क्लिष्टता का प्रयोग बृहत्त्रयी के महाकवियों के पाण्डित्य-प्रदर्शन की चेतना के कारण प्रकट हुआ है। संस्कृतसाहित्य के सुकुमार लेखन के महाकाव्यकारों में यह मनोवृत्ति नहीं देखी जाती है। उनके काव्य में भाषा की सहजता एवं सरलता को वरीयता प्रदान की गयी है।

बृहत्त्रयी में एक और विशिष्ट लेखन की प्रवृत्ति मिलती है, वह है वासनात्मक लेखन की प्रवृत्ति। बृहत्त्रयी के महाकाव्यकार श्रृंगार रस को स्वाभाविक एवं भावनात्मक अनुभूतियों से अपने को बहुत दूर रखते हैं। उनका मन कामशास्त्र के सूत्रों और उनके प्रयोजनों में अधिक रमता है। वे कामशास्त्र के विविध सूत्रों को व्यक्त कर देने को आतुर सा मिलते हैं। श्रीहर्ष ने तो चार्वाक के तर्कों से काम को अधिक महिमा मण्डित करना चाहा है। वे स्पष्ट करते हैं कि विलासिता भोग जीवन का परमसुख और लक्ष्य है। वासनात्मक एवम् अश्लीलता जन्य वर्णन एवं प्रदर्शन किरात के नवें सर्ग, शिशुपालवधम् के दसवें सर्ग एवं नैषध के अट्ठारहवें सर्ग में प्राप्त होता है। इन कवियों के लिए प्रकृति वासनात्मक कामोद्दीपन का साधन है। प्रकृति की रमणीयता की अनुभूति का प्रयोग ये काव्यकार मनश्शान्ति के लिए कदाचित् ही करते हैं। वस्तुत: ऐसी मनोवृत्ति का चलन बृहत्त्रयी के इन महाकवियों की अतिआलङ्कारिक शैली के प्रयोग से हुआ है।

यह ध्यान देने योग्य है कि बृहत्त्रयी के महाकाव्यकार प्रचुर भंगिमा पूर्ण एवम् असहज कल्पना के धनी हैं। वे अपनी भङ्गिमापूर्ण कल्पनाओं से अभूतपूर्व सौन्दर्य को उद्भूत करते हैं। पौराणिक आख्यानों, अलङ्कारों दार्शनिक तत्त्वों के प्रयोग से इनकी कल्पनायें अधि कलात्मक चमत्कारपूर्ण और बुद्धिविलासमय हो जाती है। वस्तुत: पाठक इन कल्पनाओं की मीठी छाया में आकर दुरूहता के मार्ग की बाधाओं से उत्पन्न ऊबेपन से निवृत्त होकर सुख पाने लगता है और

काव्य-सुख से चमत्कृत हो उठता है। पाठक को पदलालित्य और अर्थ-गौरव का मन्जुल समन्वय हृदयाह्लादक सा लगता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बृहत्त्रयी शैली की दृष्टि से अन्य महाकाव्यों से विशिष्ट है। बृहत्त्रयी में रस एवं स्वाभाविकता की उपेक्षा कर विलासात्मक, वासनात्मक एवम् अतिश्रृंगारिक वर्णन पर बल दिया गया है। बृहत्त्रयी में कल्पना का प्राचुर्य एवं अति आलंकारिक बंधन छाया हुआ है। शब्द-विन्यास, बहुज्ञताज्ञापन और पाण्डित्य प्रदर्शन की चेतना बृहत्त्रयी के प्राणतत्त्व हैं। भारवि इस आलङ्कारिक शैली के जन्मदाता हैं और माघ एवं श्रीहर्ष ने उसे विशेष रूप से अपनाया है।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

तीनों महाकाव्यों की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता

बृहत्त्रयी के तीनों महाकाव्यों-किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम्- में लेखन शैली की दृष्टि से एकरूपता है। जिस आलंकारिक शैली को जन्म देकर भारवि ने किरातार्जुनीयम् महाकाव्य की रचना की उसी शैली का अनुकरण कर माघ और श्रीहर्ष ने क्रमशः शिशुपालवधम् और नैषधीयचरितम् महाकाव्यों की रचना की। तीनों महाकाव्यों में भङ्गिमापूर्ण कल्पनाचातुर्यबहुज्ञताज्ञापन एवं पाण्डित्य-प्रदर्शन की चेतना , अलंकारों का अजस्र स्रोत, विलासितापूर्ण एवं वासनात्मक लेखन, रस और स्वाभिकता की उपेक्षा व्यापक रूप से प्राप्त है। किन्तु यह विचारणीय है कि इस अनुकरणात्मक लेखन की परम्परा में तीनों कवियों में उत्कृष्ट लेखन की प्रतिस्पर्धा की चेतना उत्तरोत्तर क्रम में मिलती है। भारवि से उत्कृष्ट लेखन के लिए माघ आतुर लगते हैं,तो श्रीहर्ष दोनों -भारवि,माघ से उत्तम और अद्वितीय लिख देने की चेष्टा करते हैं। हम नीचे भारवि और माघ के मध्य तुलनात्मक समीक्षा करने के उपरान्त श्रीहर्ष की श्रेष्ठता को स्थापित करते हैं।

भारवि और माघ दोनों एक ही महाकाव्य- क्षेत्र के युगप्रवर्तकमहाकवि हैं। माघ भारवि की प्रतिभा से प्रभावित ही नहीं थे, अतपतु अभिभूत भी थे उनके समक्ष भारवि केकवित्व से आगे निकल जाने की प्रतिस्पर्धा थी।भारवि की कविता विद्वत्समाज में प्रतिष्ठित और समादृत भी हो चुकी थी, अतः माघ को

भारवि से आगे बढ़ने , विद्वत् समाज में प्रतिष्ठा पाने के लिए आवश्यक था, उनकी कृतियों में वह सब कुछ हो जो भारवि की कृतियों में हो और उसके अतिरिक्त उनमें कुछ नवीनता एवं उत्कृष्टता भी हो। इसी स्पर्धा वश माघ ने अपनी रचना को भारवि की रचना से उत्कृष्ट बनाने का प्रयास किया है।

दोनों महाकाव्यों के कथानक महाभारत से अवतरित किये गये हैं। दोनों महाकाव्यों का आरम्भ "श्री" शब्द से होता है। भारवि प्रत्येक सर्ग का पर्यावसान ॥श्री॥ शब्द का पर्यायभूत "लक्ष्मी" शब्द से करते हैं। किन्तु माघ अधिक चमत्कार लाने के लिए सर्ग का अन्त "श्री" शब्द से ही करते हैं। दोनों महाकाव्यों का प्रथम सर्ग संदेशकथन से युक्त है। किरात में वनेचर प्रतिनायक दुर्योधन की गुण व्याख्या करता है तो शिशुपालवध में नारद प्रतिनायक शिशुपाल का गुण-गान श्रीकृष्ण के समक्ष करते हैं। माघ यहाँ भारवि की स्पर्धा से आगे बढ़ने के निमित्त शिशुपाल के जन्मान्तरीय दुर्गुणों एवं दुराचारों को विशद रूप से वर्णित करने में नहीं चूकते हैं। यदि भारवि प्रथम सर्ग में द्रौपदी तथा द्वितीय सर्ग में भीम के मुख से शान्तिपूर्ण राजनीति का प्रसंग प्रस्तुत करते हैं तो माघ भी द्वितीय सर्ग में बलराम जी के मुख से ओजस्वीतापूर्ण तथा उद्धव जी का वर्णन करना ही उचित समझते हैं। तृतीय सर्ग में ॥किरात0 में॥ अर्जुन की यात्रा का वर्णन है तथा शिशुपाल के तृतीय सर्ग में श्रीकृष्ण भगवान् की यात्रा का वर्णन है। माघ तृतीय सर्ग में नागरिकों का बहुत ही मनोहारी चित्रण प्रस्तुत करते हैं। यदि किरात में वेदव्यास

पाण्डवों का मार्ग दर्शन करते है तो शिशुपालवध में नारद श्रीकृष्ण का मार्गदर्शन करते हैं। किरात में अर्जुन तपश्चर्या के निमित्त इन्द्रील पर्वत जाते हैं और शिशुपालवध में श्रीकृष्ण रैवतक पर्वत के समीप ठहरते हैं। भारवि चतुर्थ और पंचमसर्ग का उपयोग हिमालय और शरदृतु के वर्णन के लिए प्रस्तुत करते हैं। यहाँ पर भारवि विविध छन्दों का प्रयोग करते हैम माघ का चतुर्थ तथा पञ्चम सर्ग का उपयोग रैवतक पर्वत तथा वहाँ के मनोहारी दृश्यों के वर्णन के लिए प्रयुक्त करते हैं। यहाँ पर भारवि और माघ दोनों कवियों ने यमक अलंकार का बहुश: प्रयोग किया है। अष्टम् सर्ग में भारवि ग्रन्धर्वों तथा अप्सराओं के पुष्पावचय तथा जल-क्रीडा का वर्णन किया है, तो माघ द्वारा सप्तम सर्ग में यादवों के साथ यादवांगनाओं के पुष्पावचय और अष्टम सर्ग में उनकी जलक्रीड़ा का मनोहर एवं विशद वर्णन प्रस्तुत किया गया है। किरात के सप्तम सर्ग में गन्धर्व एवं अप्सराओं के सेनानिवेश का वर्णन है तो शिशुपाल में पञ्चम सर्ग में ही श्रीकृष्ण के सेना निवेश का वर्णन प्राप्त हो जाता है। यदि भारवि नवम सर्ग में ही सन्ध्या, चन्द्रोदय, सुरतादि का वर्णन कर डालते हैं तो माघ नवम सर्ग में सन्ध्या , चन्द्रोदय तथा दशम सर्ग में पानगोष्ठी एवं सुरत का विस्तृत वर्णन करते हैं। दोनों कवियों काप्रभातवर्णन अतीव मनोहारी है। किरात में अर्जुन घोरतपश्चर्या करते हैं तो शिशुपाल में युधिष्ठिर की यज्ञसभा तथा राजसूय-यज्ञ के विस्तृत वर्णन है। भारवि अन्तिम चार सर्गों मेंशिव और अर्जुन का घोर युद्ध दर्शाते हैं तो माघ यादव-पाण्डवों के घोर युद्ध को निरूपित करते है। यदि भारवि 15 वें सर्ग में बन्धमय छन्दों की रचना करते हैं, तो माघ 19वें सर्ग में बन्धमय छन्दों की रचना

करते हैं। यदि भारवि अपने महाकाव्य को 18 सर्गों में समाप्त करते है तो माघ 20 सर्गों में शिशुपाल को समाप्त कर वस्तर काव्य बनाने की चेष्टा करते हैं। वस्तुत: माघ भारवि को अपेक्षा समस्त कथानक को सुन्दर एवं विस्तृत करने को चेष्टा करते हैं। श्रीहर्ष भी नैषधीयचरितम् के लिए कथानक का चयन महाभारतसे करते हैं। यद्यपि वे कथानक को भारवि और माघ की पद्धति पर विकसित करते हैं। तदपि कथानक के सर्गों का वर्ण्य-चित्रण अपने पूर्ववर्ती कवियों भारवि-माघ के वस्तु-चित्रण को दृष्टि में रखकर निर्धारित करने की चेष्टा की गयी है। चेचर और नारदकी तरह हंस दूत एवं उपदेशक का कार्य करता है। नल का दौत्यकार्य भी बृहत्त्रयी के पूर्ववर्ती कवियों की दौत्य शैलो में सम्पन्न कराया गया है। नल एवं दमयन्तो का सम्मिलन एवं सम्भोग-क्रीड़ा का वर्णन बृहत्त्रयी के अन्य कवियों के अनुकरण पर किया गया है। अन्तिम चार सर्गों में देवस्तुति चन्द्रोदय, सूर्योदय, नलदमयन्ती का विलास-वर्णन भी माघ और भारवि के काव्य के अनुगमन का प्रमाण है। त्रयोदशं सर्ग को पञ्चनली वर्णन श्लेषात्मक वर्णन का उत्कृष्ट अंकन है। वैवाहिक भोज का दृश्य भारवि और माघ को रमणियों की केलि-क्रीड़ा के अनुरूप है। श्रीहर्ष माघ और भारवि से उत्कृष्ट कथानक देने के लिए अपने महाकाव्य नैषध का समापन22 सर्गों में करते हैं। काव्य-कलेवर की दृष्टि से किरात से शिशुपाल दीर्घतर है और नैषध तो इन दोनों से बहुत अधिक दीर्घ है।

वर्णन-वैचित्र्य की दृष्टि से शिशुपालवध किरातार्जुनीयम् से सुन्दर और उत्तम है। भारवि विविध विषयों के वर्णन में सिद्धहस्त हैं। प्रकृति -वर्णन §सर्ग-5§ मनोभाव-वर्णन , युद्ध -वर्णन §सर्ग 12518§ , जल विहार-वर्णन §सर्ग-8§, ऋतु-वर्णन §सर्ग-4§, सुरत वर्णन§सर्ग-9§ आदि अत्यन्त मनोहर है । माघ अपने वर्ण्य-विषय को भारवि की शैली पर तो निर्धारित करते हैं, किन्तु उनसे उच्च कला, प्रतिभा और कल्पना के प्रयोग को करने की चेष्टा करते हैं। वर्णनों में माघ की सूक्ष्मदृष्टि प्रशंसनीय है। वे कल्पना को गहराई तक ले जाने के लिए वर्ण्य-विषय पर पूरा सर्ग ही लगा देते हैं। द्वारका,समुद्र का वर्णन§सर्ग-3§ रैवतक पर्व का वर्ण§सर्ग-4§, ऋतओं का वर्णन §सर्ग-6§ जल-क्रीड़ा वर्णन§सर्ग-8§, प्रभात-वर्णन §सर्ग-6§ युद्ध वर्णन §18-20§ में नवीन कल्पनाओं का दर्शन होता है। श्री हर्ष तो इन दोनों-भारवि-माघ -कवियों से अधिक श्रेष्ठ कल्पना ,कला, प्रतिभा का प्रयोग करते हैं। पौराणिक प्रसंगों के बीच भंगिमा-पूर्ण कल्पना का प्रयोग श्रीहर्ष की कल्पना-शक्ति का प्राण-तत्त्व है। वे अपने छोटे से विषय दमयन्ती-वर्णन तक को भी कल्पनात्मक इन्द्रजाल में पिरो देना चाहते हैं। वे इस पर पूरा एक सर्ग खर्च कर देते हैं। सरोवर वर्णन§सर्ग-1§,दमयन्ती नखशिख -वर्णन §सर्ग-7§, राजवर्णन §सर्ग-11-13§, कञ्चनली वर्णन "सर्ग-13" चार्वाक-मत वर्णन §सर्ग-17§, संभोग - वर्णन §सर्ग-18§ प्रात: काल , सूर्योदय,चन्द्रास्त,चन्द्रोदय वर्णन§सर्ग 19§ आदि श्रीहर्ष की उत्कृष्ट कल्पना और वर्णन वैचित्र्य को देखकर उसकी शक्ति के अनुपम उदाहरण मानते हैं। वस्तुत: पाठक-वैचित्र्य को देखकर चमत्कृत रह जाता है, वह सहज रूप से कह उठता है कि श्रीहर्ष भारवि,माघ, से वर्णन-वैचित्र्य में बहुत आगे हैं।

छन्द योजना में कालिदास के अतिप्रिय 6 छन्दों के अनुपात में भारवि ने 12 छन्दों में वैशिष्ट्य दिखाते हैं तो माघ 16 छन्दों में। भावगाम्भीर्य तथा चित्रालंकारों के प्रयोग में भारवि और माघ दोनों कवि अनुष्टप् जैसे सरल छन्द का प्रयोग करते हैं। श्रीहर्ष ने छन्द प्रयोग में बड़ी दक्षता-प्राप्त की है। छोटे छन्दों की तुलना में हरिणी, शार्दूलविक्रीडित, मदाक्रान्ता, स्रगधरा आदि बड़े छन्दों के प्रयोग में भी उन्हें उतनी ही सफलता मिलती है। नैषध में 19 छन्दों काप्रयोग है।

किरात के 15 वें सर्ग में अनेक बन्धों के चित्रविचित्र श्लोक प्राप्त होते हैं। कहीं-कहीं ऐसे चित्रबन्ध श्लोकों के दो-तीन अर्थ निकलते हैं। चरमान्त उस श्लोक में दिखाई पड़ते हैं, जिसमें केवल एक ही व्यन्जन "न" का प्रयोग हुआ है। चित्रबन्ध श्लोकों की संख्या पूरे महाकाल में 10 प्रतिशत से भी कम है अन्यत्र भारवि सर्वथा सरल हैं। माघ चित्रालंकारों के प्रयोग में भारवि से आगे हैं। वे गुरज-बन्ध, चक्रबन्ध आदि नये बन्धों का प्रयोग करते हैं। शिशुपाल के 19 वें सर्ग में चित्रालंकारों का आश्रय लेकर व्यूह-रचना के भेदों का वर्णन है। चित्रालंकारों में कही एकाक्षर, कहीं द्व्यक्षर, कहीं एकाक्षर पाद, अर्धसम, गोमूत्रिका बन्ध, मुरजबन्ध चक्रबन्ध, सर्वतोभद्र आदि प्रमुख हैं। श्रीहर्ष ने चित्रबन्ध अलंकारों का प्रयोग तो नहीं किया किन्तु उत्प्रेक्षा, अर्थश्लेष, यमक, उपमा आदि अलंकारों में चमत्कार डालने का प्रयास किया है।

भरवि का पण्डित्य उनके व्याकरण से प्रमाणित किन्तु कठिन और अल्प प्रयुक्त क्रियारूपों और शब्दों के प्रयोग करने में दिखाई पड़ता है। कर्मवाच्य लिट् लकार से क्रियापद भारवि की रचना में प्राय: मिलते हैं। तन् आस धातुओं से बने पदों का बहुधा: प्रयोग प्राप्त है। कहीं कहीं श्लेष के चार अर्थ निकलते हैं। किरात के प्रथम तीन सर्ग क्लिष्ट लेखन के कारण पाषाण-त्रय कहे जाते है। माघ का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वे पद-पद पर पदलालित्य प्रयुक्त करने का प्रयास करते हैं। नवीन शब्दावली की दृष्टि से शिशुपाल शब्द -कोष की भाँति है। संस्कृत काव्य-समालोचकों ने यहाँ तक कहडाला "नव सर्ग गते माघे नव शब्दों न विद्यते।" श्रीहर्ष को व्याकरण और कोश के बिना समझना कठिन है। उनकी भाषा को कठिनता में अप्रचलित शब्दों का प्रयोग मुख्य कारण है। व्याकरण का अगाध पाण्डित्य सूननायक, प्रतीतचर, अधिगामुका, हंसस्पृशम् जैसे अनेकानेक नवीन शब्दों को गढ़ लेने की क्षमाता उन्हें प्रदान करता है। शब्द-चमतकर एवं शब्द-क्रीड़ा की प्रवृत्ति के कारण श्लेष तथा यमक जैसे अलंकारों से वे अपनी भाषा को दुरूह एवं दुर्बोध बना देते है। नैषध में एक ही विषय पर कई श्लोकों में वर्णन मिलेगा पर सर्वत्र नवीन शब्दावली एवं अभिनव पद -शय्या उपलब्ध होगी। नैषध में शब्द और अर्थ का मनोहर सामञ्जस्य है। भाषा की दृष्टि से श्रीहर्ष भारवि और माघ से बहुत आगे हैं।

पाण्डित्य-प्रदर्शन किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् नैषधीयचरितम् तीनों महाकाव्यों में प्राप्त होता है। भारवि, माघ, श्रीहर्ष वेद-वेदांग, स्मृति-पुराण, व्याकरण, काव्यशास्त्र, दर्शन, राजनीति, आयुर्वेद, नीतिशास्त्र, संगीतशास्त्र, हस्तिअश्वादि विधाओं, पाकशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, ज्योतिष, कामशास्त्र आदि के उद्भट विद्वान् हैं। तीनों कवियों ने अपने ज्ञान का परिचय दिया है। किन्तु जो पाण्डित्य-प्रदर्शन की विपुलता एवं व्यापकता नैषध में है वह अन्य महाकाव्यों में नहीं है। माघ अपनेपाण्डित्य-प्रदर्शन को मध्यम स्तर पर प्रयुक्त करते हैं और भारवि यत्र-तत्र। श्रीहर्ष दार्शनिक-ज्ञान के ज्ञापन के लिए इतना आतुर रहते हैं कि चार्वाक-मत- प्रदर्शन (सर्ग-17) के लिए एक अतिरिक्त सर्ग की व्यवस्था कर डालते हैं। कामशास्त्रीय ज्ञान-प्रज्ञापन के निमित्त दो-दो सर्गों का प्रावधान कर डालते हैं। राजनीतिक ज्ञान के प्रदर्शन में तीनों कवि अच्छी रुचि दिखाते हैं। श्रीहर्ष में पौराणिकता का संयोग है। वस्तुत: पाण्डित्य-प्रदर्शन में उत्तरोत्तर श्रेष्ठता का दर्शन होता है और नैषध तो विद्वनों की औषध ही हो गया है।

सन्धियोजना एवं रस-प्रस्रवण में तीनों कवि अनुपम प्रदर्शन करते हैं। कथानक में वे कुतूहल सदैव बनाये रखते हैं, कथानक बाधाओं में भ्रमण करता हुआ लक्ष्य को प्राप्त होता है। सन्धियोजना में किरात एवं शिशुपाल में बहुत ही साम्य है। नैषध सन्धि-योजना में अद्भुत रूप से उत्कृष्ट है। नल - दमयन्ती का प्रेम इन्द्रादि देवों द्वारा उत्पन्न किये व्यवधानों में सफल हो पायेगा या नहीं

यह पाठक को सदैव कचोटता है। नैषध में सभी प्रकार के रसों का उत्कृष्ट एवं सफल प्रयोग देखने को मिलता है, यद्यपि किरात एवं शिशुपालवध भी रसयोजना में अति उत्तम हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीनों महाकाव्य कथानक-विकास, वर्णन-वैचित्र्य, कल्पना-संयोजन छन्दोऽलंकार नैपुण्य, भाषा-विन्यास, पाण्डित्यप्रदर्शन सन्धि-योजना और रस-प्रस्रवण में उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। किरातार्जुनीयम् के अनुकरण पर अन्य दोनों महाकाव्यों शिशुपालवधम् और नैषधीयचरितम् की रचना की गयी है, किन्तु इन दानों में भी उत्तरोत्तर श्रेष्ठता के तत्व विद्यमान हैं। भारवि ने किरात में जिस अलङ्कारमयी विशिष्ट शैली का बीजारोपण एवं प्रवर्तन किया, माघ के काव्य में उसका पूर्ण पल्लवन एवं प्रतिफलन हुआ और श्रीहर्ष के काव्य में आकर उसका चरम परिपाक हुआ। यही इन तीनों महाकवियों एवं उनके महाकाव्यों की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता का स्वरूप है। इस पाण्डित्य-प्रदर्शन पूर्ण शैली का प्रयोग इन महाकवियों ने अपने विविध दर्शन-ज्ञान के रूप में किया। काव्य की उर्वरा भूमि पर इन कवियों की व्युत्पत्ति के बल से उगा हुआ दर्शन-ज्ञान सुस्पष्टपरिलक्षित होता है। काव्य-भूमि पर उपजी इन्हीं विविध दार्शनिक प्रवृत्तियों एवं दार्शनिक तत्वों का समालोचन ही इस प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है।

0 0 0 0 0 0 0 0 0
0 0 0 0 0 0 0
0 0 0 0 0
0 0 0
0

द्वितीयोऽध्यायः

भारतीय दर्शन का स्वरूप

समस्त सांसारिक प्राणी अपनी सहज प्रवृत्तियों से परिचालितरहते हैं। वे अपने जीवन की रक्षाके लिए उद्योग करते हैं।

मनुष्य एवं पशु में सहज प्रवृत्तियों का नियन्त्रण होने पर भी मनुष्य अपनी बौद्धिक क्षमता-वशात् पशु से भिन्न है। पशु का जीवन निर्वाह निरूद्देश्य होता है किन्तु मनुष्य अपनी बौद्धिक विशिष्टता के कारण सहज प्रवृत्तियों से ऊपर उठकर जीवन की स्थितियों का चिन्तन करता है। वह संसार का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करता है, वह केवल वर्तमान के लाभ पर चिन्तन नहीं करता है,अपितु भविष्य के परिणामों पर भी दृष्टि डालता है। बुद्धि की सहायता से वह युक्तिपूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। युक्ति पूर्वक तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न को "दर्शन" कहते हैं। युक्ति पूर्वक यह विचार करना कि मनुष्य क्या है? उसके जीवन का क्या लक्ष्य है ? यह जीवन कहाँ से आया ? इस जीवन का कालान्तर में क्या होगा? यह संसार क्या है ? इस संसार का स्रष्टा कौन है? जीवन निर्वाह का उचित मार्ग क्या है? ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिन्हे प्राय: विभिन्न देशों के मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही सुलझाने का प्रयत्न करते आ रहे हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार हमें तत्त्व का साक्षात्कार हो सकता है। इसी को "सम्यक् दर्शन" या "दर्शन" कहते हैं। मनु का कथन है-"सम्यक् दर्शन प्राप्त होने पर कर्म मनुष्यको बंधन में डाल नहीं सकता, जिसको यह सम्यक् दृष्टि नहीं है वे ही संसार के जाल में

फँस जाते हैं।"

सम्यक् दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबद्ध्यते ।

दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ।।

प्राचीन तथा अर्वाचीन, हिन्दू तथा अहिन्दू, आस्तिक तथा नास्तिक जितने प्रकार के भारतीय हैं, सभी के दार्शनिक विचारों को "भारतीय दर्शन" कहते हैं। कुछ लोग भारतीय दर्शन को "हिन्दू धर्म" या "हिन्दू दर्शन" का पर्याय समझते हैं, वस्तुत: यह सर्वथा अनुचित है। हिन्दू शब्द का अर्थ वैदिक धर्मावलम्बी है, जबकि भारतीय शब्द एक उपमहाद्वीप के समग्र जन समुदाय को व्यक्त करता है और भारतीय दर्शन से तात्पर्य होता है भारतीय उप महाद्वीप के समग्र जन समुदाय की चैन्तनिक अभिव्यक्ति ? माधवाचार्य एक वैदिक धर्मावलम्बी हिन्दू थे तदापि इन्होंने अपनी कृति "सर्व-दर्शन"-संग्रह" में चार्वाक, बौद्ध, तथा जैन मतों को भी उद्धृत किया है। इन मतों के संस्थापक वैदिक धर्मावलम्बी नहीं थे। तदापि, इन मतों को भारतीय दर्शन में सन्निविष्ट किया गया है।

प्राचीन वर्गीकरण के आधार पर भारतीय दर्शन दो खण्डों में विभक्त किया गया है- आस्तिक और नास्तिक। आस्तिक दर्शन में - मीमांसा, वेदान्त, साङ्ख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक दर्शन परिगणित हैं। इन्हें षड्दर्शन की संज्ञा भी दी जाती है। द्रष्टव्य है, आस्तिक दर्शन से तात्पर्य ईश्वरवादी दर्शन नहीं है। उपर्युक्त परिगणित दर्शनों में सभी ईश्वर को सत्ता की स्वीकृति नहीं देते हैं। वस्तुत:

इनकी वैदिक अभिमान्यता के कारण इन्हें आस्तिक दर्शन से संज्ञापित किया जाता है। मीमांसा एवं साङ्ख्य ईश्वर की सत्ता को आङ्गीकृत नहीं करते हैं तद्यपि इन्हें आस्तिक कहा जाता है, क्योंकि ये वेद के वर्चस्व को स्वीकार करते हैं। इन षड् आस्तिक दर्शनों के अतिरिक्त इतर दर्शन यथा-शैव दर्शन, पाणिनीय दर्शन, रसेश्वर दर्शन (आयुर्वेद) वैष्णव दर्शन आदि हैं। इन दर्शनों का उल्लेख माधवाचार्य कृत "सर्व दर्शन संग्रह" में प्राप्य है। तीन नास्तिक हैं- चार्वाक, बौद्ध तथा जैन। इनके मत में वेद की निन्दा की गयी है। ज्ञातव्य है कि चार्वाक दर्शन परलोक में विश्वास नहीं करता है, किन्तु बौद्ध तथा जैन परलोक में विश्वास करते हैं।

भारतीय साहित्यावलोकन में "वेद" आदिसाहित्य रूपेण गृहीत है। भारतीय चिन्तन-परम्परा में वेद का विशिष्ट एवं अप्रतिम स्थान है। वेदोपरान्त जो भारतीय चिन्तन-प्रवाह परिस्फुटित हुए वे वेद से अतिशय प्रभावित रहे। भारतीय दर्शन पर वेद का प्रभाव दो प्रकार से पड़ा। उपरि परिदत्त है कि वेद को अंगीकृत करने वाले "छः दर्शन" षड्दर्शन" से संज्ञापित हैं। इनमें मीमांसा पुनश्च वेदान्त तो वैदिक संस्कृति से ही अनुप्राणित हैं। वेद में दो विचार धारायें थीं। एक का सम्बन्ध कर्म से था तो दूसरे का ज्ञान से। प्रथम वैदिक कर्म-काण्ड तथा द्वितीय वैदिक ज्ञान-काण्ड के रूप में परिज्ञात हैं। दोनों विचारधाराओं में स्वकीय दृष्टिकोण से वैदिक विचारों की मीमांसा हुई, एतद्पश्चात् इन दोनों को कदाचित् मीमांसा भी कहते हैं। स्पष्ट है कि पूर्व मीमांसा को कर्म मीमांसा और वेदान्त को उत्तर मीमांसा या ज्ञान मीमांसा

कहते हैं। साङ्ख्य , योग, न्याय और वैशेषिक दर्शनों का प्रवर्तन वैदिक विचारों के प्रभाव में नहीं हुआ है, किन्तु ये दर्शन अपने विचारों में वेद का विरोध नहीं करते हैं। वेद का विरोध तो चार्वाक, बौद्ध तथा जैन दर्शन करते हैं।

भारतीय दर्शनों का क्रमिक विकास नहीं हुआ, अर्थात् एक-एक मतवाद के बाद दूसरा मतवाद नहीं आया, अपितु अनेक दर्शन समानान्तर रूप से विकसित हुए। इनके विकास में शताब्दियों तक का समय लगा। भारत में दर्शन को जीवन का एक अनिवार्य पक्ष माना जाता रहा था। इस तत्त्व का भारत में दर्शनों के प्रवर्तन एवं विकास में अहम् भूमिका रही। यहाँ ज्यों ही किसी दार्शनिक मत का प्रतिपादन होता था त्यों ही उनके अनुयायियों का सम्प्रदाय स्थापित हो जाता था। सम्प्रदाय के सभी सदस्य उस दार्शनिक विचार को अपने जीवन का अंग मानते थे और तदनुसार जीवन का संवहन करते थे। यह विश्वास एवं अनुसरण वंशोत्तर चलता रहता। इस प्रकार प्रत्येक सम्प्रदाय को एक अविच्छिन्न परम्परा दृढ रही। यही कारण रहा कि भारत में विभिन्न दर्शन शताब्दियों तक जीवित रहे। प्रत्येक सम्प्रदाय अपने विचारों एवं मतों को सबल एवं सुदृढ़ करने के लिए युक्ति पूर्वक पर-आक्षेप की प्रणाली का संप्रयोग करते थे। एक मतवाद दूसरे मतवाद की परस्पर आलोचनाएँ करता था। पूर्व-पक्षी प्रतिपक्षी के आक्षेप का युक्ति पूर्वक खंडन करता था। वस्तुत: इस प्रथा का सुन्दर परिणाम आया। विचारों में गहनता एवं अन्वेषण का स्थान बना एवं नित - नूतन साहित्य की आवश्यकता हुई। वेद के बाद उपनिषद् और इनके उपरान्त

सूत्र साहित्य की उत्पत्ति में इसी उपर्युक्त तथ्य का प्रभाव था। दार्शनिक विचारों का सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप सर्वप्रथम सूत्र साहित्य में ही दृष्टिगत होता है। सूत्र शब्द का अर्थ सूत है। किन्तु, उपर्युक्त प्रसंग में सूत्र का अर्थ "संक्षिप्त" स्मृति सहायक उक्ति है-

लघूनि सूचितार्थानि सूवल्पाक्षरपदानि च ।

सर्वत: सारभूतानि सूत्राण्याहुर्मनीषिण: ।।- ‡भमती ।/।/‡

बादरायण के "ब्रह्म-सूत्र" में वेदों के, विशेषत: उपनिषदों के दार्शनिक विचारों का संग्रह है और सुव्यवस्थित रूप में व्यक्त किया गया है। वेद तथा उपनिषद् के आक्षेप भी इस ग्रन्थ में निराकृत हुए हैं। मीमांसा के लिए जैमिनि, न्याय के गौतम, वैशेषिक के लिए कणाद, योग के लिए पतञ्जलि ने सूत्र ग्रन्थों की रचना की। ईश्वर कृष्ण कृत "साङ्ख्यकारिक" भी साङ्ख्य दर्शन पर प्रमाणिक रचना है। सूत्र-ग्रन्थों की क्लिष्टता को अपवारित करने हेतु भाष्य ग्रन्थों की सर्जना हुई। एक ही सूत्र-ग्रन्थ पर कई भाष्य लिखे गये। भाष्यकारों ने अपने-अपने भाष्य में अपने-अपने मत-वादों की पुष्टि की। उदाहरणार्थ- शंकर, रामानुज, श्रीकंठ, मध्व, बल्लभ, निम्बार्काचार्य, बलदेव आदि भाष्यकारों ने ब्रह्म-सूत्र के भिन्न-भिन्न भाष्य लिखे।

देश की सभ्यता एवं संस्कृति की प्रतिष्ठा एवं गौरव वहाँ के दर्शन पर अवलम्बित होते हैं। भारतीय दर्शन में अनेक मतवाद पाये जाते हैं। एक मतवाद दूसरे मतवाद का खण्डन करता है परन्तु उनके मध्य जो विशिष्टता है, वह है, उनकी

नैतिक एवं आध्यात्मिक साम्य। भारतीय दर्शन पुरूषार्थ-साधना के मार्ग को निर्दिष्ट करता है। भारतीय दर्शन मात्र मानसिक कुतूहल को ही शान्त करने का प्रयास नहीं करता, अपितु जीवन-बोध भी देता है कि दर्शन की जीवन में क्या उपादेयता है, वह स्पष्ट करता है कि जीवन के लिए दूर-दृष्टि भविष्य-दृष्टि और अन्तर्दृष्टि को नितान्त आवश्यकता है। वस्तुत: इसी आशय से प्रत्येक दार्शनिक ग्रन्थकार अपनी पुस्तक के प्रारम्भ में लिख देता है कि उसकी पुस्तक सेपुरूषार्थ-साधन में क्या सहायता मिल सकती है। अस्तु, पाश्चात्त्य विद्वानों की धारणा भ्रान्ति पूर्ण है कि भारतीय दर्शन केवल -नीतिशास्त्र,धर्मशास्त्र हैं। भारतीय वेदानुकूल या वेद विरोधी जितने भी दर्शन हैं,सभी ने दु:ख निवारण का प्रयत्न किया है।जीव के दु:खों का क्या कारण है;इसे जानने के लिए सभी दार्शनिक मतवाद अनुसंधान करते हैं। दु:खों का किस प्रकार नाश हो,एतद् विषय पर भी सभी दर्शन संसार तथा मनुष्य के अन्तर्निहित तत्त्वों का अनुसंधान करते हैं। भारतीय दर्शन नैराश्य को विनष्ट कर आशा की ओर अग्रसारित करते हैं। वे नैराश्य के कारण को अभिज्ञापित करते हैं। वे सहज तृष्णाओं और अज्ञानात्मक उद्वेगों की स्थिति को स्पष्ट करते हैं। वस्तुत: इन्हीं विकरों के बढ़ते प्रकम के कारण हम दुखों का भोग करते हैं;इनका विशद वर्णन भारतीय दर्शनों में है किन्तु, साथ ही साथ वहीं आशा का संदेश भी व्यक्त है। इन विचारों का सारांश महात्मा बुद्ध के समस्त ज्ञान का निचोड़ उनके आर्य-सत्यों में मिलता है। ये इस प्रकार है-1•दु:ख है 2•दु:ख का

कारण है। 3. दुःख का निरोध है। 4. दुःख निरोध का मार्ग है। इस प्रकार सिद्ध है कि भारतीय दर्शन की उत्पत्ति नैराश्य से हुई है, किन्तु उसके सम्प्रवेश एवं पर्यावसन आशा के मार्ग में हुए हैं।

भारतीय दर्शन जगत् की शाश्वत नैतिक व्यवस्था को अङ्गीकार करते हैं। चार्वाक का भौतिकवाद ही एकमात्र अपवाद है, जो जगत् की नैतिकता को अवधृत नहीं करता है चार्वाक् के अतिरिक्त जितने भारतीय दर्शन हैं-चाहे वे वैदिक हों या अवैदिक, ईश्वरवादी हों या अनीश्वर वादी-श्रद्धा एवं विश्वास की भावना से संयुक्त हैं। वैदिक काल में भी लोगों में इस नैतिक व्यवस्था के, प्रति श्रद्धा थी । ऋग्वेद की ऋचाएँ इसे प्रमाणित करती हैं। ऋग्वेद में इस व्यवस्था को "ऋक्" शब्द से नामांकित किया गया है। मीमांसा में इसे "अपूर्व" कहा गया है। न्याय वैशेषिक में इसे "अदृष्ट" कहते हैं। यही नैतिक व्यवस्था कालान्तर में कर्मवाद कहलायी। कर्मवाद का तात्पर्य है कि किए हुए कर्मों का फल नष्ट नहीं होता है और बिना किए हुए कर्म का फल नहीं मिलता है। हमारे कर्मों के फल चिरन्तन रहते हैं और हमारे जीवन की घटनायें पूर्व कृत कर्मों पर अवलम्बित रहती हैं। जैन तथा बौद्ध भी कर्मवाद को मानते हैं। भारतीय दर्शन में कर्म के चार रूप दिये गये हैं-1. कर्मजात शक्ति 2. संचयीकर्म 3. प्रारब्ध कर्म 4. संचीयमान कर्म। भारतीय दर्शन की इस नैतिक व्यवस्था से जीवन में श्रद्धा एवं विश्वास उत्पन्न होते हैं। यही कारण है कि भारतीय लोग भाग्यवाद को स्वीकार करते हैं। उनका विचार रहता

है कि वर्तमान का दु:ख पूर्वजन्म कृत अपकर्मों का प्रतिफल है। एतद्वशात् भविष्यगत जीवन को शान्ति एवं सुख हेतु आशा के साथ सुकर्म करने की चेष्टा करते हैं।

भारतीय दर्शन सारे जगत् को एक रंगमंच के रूप में मानते हैं। जिसतरह रंगमंच पर नाटक के पात्र अभिनयार्थ सुसज्जित होकर प्रकट होते हैं उसी प्रकार मनुष्य भी विभिन्न कर्म एवं रूपों से जगत् में प्रकट होता है और पूर्व निर्दिष्ट कर्मानुसार जीता है। वस्तुत: शरीर, परिस्थितियाँ और इन्द्रियाँ आदि प्रकृति अथवा ईश्वर से तो मिलते हैं किन्तु उनकी प्राप्ति पूर्वार्जित कर्मानुसार ही होती है।

भारतीय दर्शन की एक और विशिष्टता है कि वह अज्ञान को बंधन का कारण मानता है। बंधन से मुक्ति संसार तथा आत्मा के तत्त्वज्ञान से सम्भव है। बारम्बार जन्म लेना तथा दु:खों के परित्राण को सहना ही जीव के लिए बन्धन है। पुनर्जन्म की निवृत्ति मोक्ष से सम्भव है जैनमत, बौद्ध मत, साङ्ख्य तथा अद्वैत वेदान्त तो मोक्ष की प्राप्ति ,जीवन-काल में ही सम्भव है, स्पष्ट करते हैं। भारतीय दर्शन में ज्ञान-प्राप्ति के निमित्त दो मार्ग सुझाये गये हैं-1• निदिध्यासन 2• आत्म-संयम । जिस प्रकार अनवरत सांसारिक कैतवों, प्रपंचों से सम्बद्ध रहने से अज्ञान एवं कुसंस्कार की पुष्टि होती है, उसी प्रकार विरीत दिशा में अनवरत चिन्तन एवं अभ्यास से उनका विनाश किया जा सका है।वस्तुत: ज्ञान की पुष्टि हेतु ज्ञान को अपने दैनिक जीवन में समाविष्ट करने की नैरन्तरिक चेष्टा की आवश्यकता होती है। साधना और अभ्यास के द्वारा अज्ञान का नाश एवं

तत्त्वज्ञान के प्रति श्रद्धा को पुष्टि सम्भावित होते हैं। मन, राग, द्वेष, ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का नियन्त्रण आत्मसंयम कहा गया है। आत्म-संयम से यह अर्थ होता है कि हमें इन्द्रियों के कुवृत्तियों को मात्र दमन ही नही करना है अपितु उन वृत्तियों का भावोन्नयन भी करना है। इस तथ्य को योग दर्शन "यम" और "नियम" योगांगों से समझाता है। अन्यान्य आस्तिक एवं नास्तिक बौद्ध , जैन दर्शन इस तथ्य को मैत्री, करुणा मुदिता आदि के अनुशीलन में व्यक्त करते हैं। गीता में कहा गया है कि जो व्यक्ति इन्द्रियों को राग द्वेष से रहित कर तथा अपने वश में लाकर आत्मविजयी हो जाते हैं, वे इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करते हुए भी प्रसाद या सन्तोष प्राप्त करते हैं।[1]

नैतिक तथा आध्यात्मिक विचारों को समानता के अतिरिक्त भारतीय दर्शनों में यह भी सादृश्य है कि वे देश और काल की अनादि एवं अनन्त मानते हैं। भारतीय दर्शन में सृष्टि क्रम को अनादि व्यक्त किया गया है। वर्तमान सृष्टि के पूर्व अन्यान्य सृष्टियाँ हुई और उनका प्रलय हुआ। अनादि विश्व में पृथ्वी एक नगण्य बिन्दु मात्र है। सांसारिक जीवन तथा वैभव नश्वर एवं महत्त्व हीन हैं। जीवन मानो काल समुद्र में बुलबुला है, जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। न जाने इस काल-समुद्र में कितने बुलबुलों की सम्भूति होती है और उनका विनाश होता है। इन

- - - - - - - - - -

1. रागद्वेष विमुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।
—भगवद्गीता 2/64

विचारों का भारतीय तत्त्व-विज्ञान पर पूर्ण प्रभाव है। दार्शनिकों को अनन्त के अनुसंधान की प्रेरणा यहीं से मिली । दार्शनिकों को यह स्पष्ट हुआ कि जीवन की एक नैरन्तरिक धारा है और क्षणिक जीवन में लिप्त रहना व्यर्थ है। इसी नैरन्तरिक धारा के व्यापक दृष्टि का प्रभाव है कि वे इस परिवर्तनशील जगत् को शाश्वत नहीं मानते हैं और अनित्य की अपेक्षा नित्य को अङ्गीकार करते हैं। मनुष्य का शरीर क्षुद्र, तुच्छ क्षणिक् एवं नगण्य है तथापि इसके साहाय्य से वह आध्यात्मिक पुरूषार्थ से देश-काल के बन्धन से परे शाश्वत शान्ति और परम आनन्द को प्राप्त कर सकता है। वस्तुत: मनुष्य जन्म एक दुर्लभ सम्पत्ति है। ते भगवान् बुद्ध कहते हैं- "किच्छो मनुस्स पिरलाभा" । भागवत में भी कहा गया है कि "दुर्लभो मानुषो देहो देहिनांक्षणभंगुर:।"

चार्वाक दर्शन के अतिरिक्त सभी भारतीय दर्शन मोक्ष को जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानते हैं। सभी दार्शनिक मत स्वीकृति देते हैं कि मोक्ष की प्राप्ति जीवन के दु:खों के नाश से सम्भव है। कुछ भारतीय दार्शनिक मत मोक्ष से केवल दु:खों का अन्त ही नहीं, अपितु परम आनन्द लाभ समझते हैं। वेदान्त, जैन आदि मतों के अनुसार मोक्ष से आनन्द की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दर्शन जीवन के रहस्यों का उद्घाटन करने की एक युक्ति है। दर्शन यह स्थापित करता है कि इस जीवन का स्रष्टा ईश्वर है। यह जीवन चिरन्तन नहीं है, अपितु नश्वर है। जन्म-मरण, दु:ख, क्लेशों का मूल कारण कर्म-बन्धन है। कर्म-बन्धन का नाश ही मोक्ष है। मोक्ष के बाद जीव को भगवत् प्राप्ति होती है। वस्तुत: भगवत् प्राप्ति से परमानन्द की प्राप्ति होती है। वस्तुत: भगवत् प्राप्ति से परमानन्द की प्राप्ति होती है। भारतीय दर्शन का यही मूल तत्त्व है।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

भारतीय दर्शन के तत्त्वों का विवेचन

भारतीय दार्शनिक परम्परा में छ: आस्तिक दर्शन-न्याय,वैशेषिक, सांख्य,योग,मीमांसा,वेदान्त और तीन नास्तिक दर्शन-जैन,बौद्ध,चार्वाक की गणना की जाती है। प्रकट रूप में सभी दर्शनों के चिन्तन की अपनी-अपनी धारायें हैं, किन्तु परोक्ष रूप में चार्वाक को छोड़कर लगभग सभी दर्शनों के चिन्तन में मूलत: एक रूपता है। चार्वाक आत्मा और जन्मान्तर को नहीं मानता है, जबकि अन्य दर्शनों के चिन्तन का मूल आधार यही दोनों दार्शनिक तत्त्वों की आस्था है। इन दार्शनिक तत्त्वों को स्थापित करने का प्रत्येक दर्शन का अपना-अपना दृष्टि-कोण है। कर्म और जन्मान्तर को अवधारणा को स्थापित करने में कुछ दर्शन ईश्वर के अस्तितत्व को अङ्गीकृत करते हैं तो कुछ नहीं। हम भारतीय दर्शन के तत्त्वों का अध्ययन कतिपय अधोलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे-

चार्वाक दर्शन

चार्वाक मतानुसार प्रत्यक्ष ही एक मात्र प्रमाण है। अनुमान,आगम आदि जितने भी प्रमाण हैं वे सभी मिथ्या एवं भ्रममूलक हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा हमें भौतिक जगत् का ज्ञान होता है। जड़ जगत् चार प्रकार के भौतिक पदार्थ-वायु,अग्नि,जल तथा पृथ्वी से विनिर्मित है। संसार के सभी द्रव्य इन्हीं चारों भौतिक तत्त्वों में समाविष्ट हैं। इन सभी द्रव्यों का ज्ञान इन्द्रियों से होता है। चार्वाक आत्मा के अस्तित्व को नहीं स्वीकार करते हैं। उपर्युक्त चारो भूतों से मनुष्य की सृष्टि हुई

है,उसमें कोई आत्मा जैसी सार वस्तु नहीं है। यह कथन कि "मैं स्थूल हूँ", "मैं कृश हूँ", "मैं पंगु हूँ"—पूर्णत: स्पष्ट करता है कि मनुष्य और उसका शरीर भेदरहित हैं। मनुष्य में जो चैतन्य है वह मनुष्य एवं शरीर का एक अभिन्न गुण है। मनुष्क का निर्माण अचेतन तत्त्वों से हो सकता है। किन्तु अचेतन तत्त्वों से चेतन सत्ता की उत्पत्ति सम्भव है। यह उसी प्रकार जिस प्रकार विभिन्न वस्तुओं के मिलने से एक नये रूप और गुण की उत्पत्ति हो जाती है। एक ही वस्तु विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न रूप और गुण धारण कर लेती है। ताम्बूल में रक्त वर्ण नहीं डाला जाता है, किन्तु जब ताम्बूल पत्र से चूना, खैर(कत्था), सुपारी(पुँगीफल) आदि डाले जाते हैं तो रक्त वर्ण का आविर्भाव हो जाता है। वस्तुत: इसी तरह मनुष्योत्पत्ति भी है। जब सभी चारों भौतिक तत्त्वों का सम्मिलन एक विशेष स्थिति में होता है तो स्वभावत: उसमें चैतन्य गुण का आविर्भाव हो जाता है। जब शरीर का विनाश हो जाता है तब चैतन्य गुण भी नष्ट हो जाता है। तत्त्वत: मृत्यु के बाद कोई भी सार तत्त्व नहीं बचता। अतएव यह मन्तव्य सर्वथा मिथ्या है कि मृत्यु के बाद मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगता है।

प्रत्यक्ष-प्रमाणावलम्बी जड़वादी चार्वाक ईश्वर के अस्तित्व को भी मिथ्या प्रतिष्ठित करते हैं। भौतिकवादी होने के कारण वे प्रत्यक्ष प्रमाण से, ईश्वर अग्राह्य है, सिद्ध करते हैं, अत: ईश्वर नहीं है। जब ईश्वर ही नहीं है तब संसार की सर्जना में उसका योग सर्वथा तर्क हीन है। संसार की सर्जना चतुर्भूतों के संयोग

से है। चतुर्भूतों के विघटन से प्रलय अथवा मृत्यु है। ईश्वर - मिथ्यात्व-वशात् समस्त ईश्वर-परिकल्पना, तदाराधना, स्वर्गिक कामना नितान्त निरर्थक हैं। भौतिकवादी चार्वाक वेदों पुरोहितों को अप्रामाणिक एवं भ्रामक सिद्ध करते है। पुरोहितोंके कर्मकाण्ड स्वार्थवशात् परिकल्पित हैं, यह उनके जीविका निर्वाह का साधन है बुद्धिमत्ता इसी में है कि प्राप्त जीवन को अधिकाधिक सुख योग्य बनायें। सुख साधनों के लिए हर भौतिक दृष्टिकोण को प्रयुक्त किया जा सकता है। द्रष्टव्य है कि अन्य लक्ष्यों की अपेक्षा सुखार्जनात्मक प्रयत्न अधिक सुसाध्य, सुनिश्चित एवं आनन्दकर है। यह नितान्त भ्रामक है कि सुख परित्यजनीय हैं क्योंकि वे दुःखों से संपृक्त रहते हैं। भूसे से मिले रहने के कारण कौन अन्न का परित्याग कर देता है अथवा पशु के डर से कौन खेतों में फसल नहीं उगाता है। वस्तुतः सत्य तो यह है कि जीवन में अधिक से अधिक सुख प्राप्त करने के लिए दुःखों को निरन्तर अपवारित करने का प्रयत्न करना चाहिए। संक्षेपतः -"यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्।" ही उनके जीवन का सिद्धान्त है।

जैन दर्शन

जैन मत का प्रवर्तन ऐतिहासिक युग से बहुत पूर्व हो चुका था। जैन मत में 24 तीर्थङ्करों की एक श्रृंखला है। महावीर 24 वें तीर्थङ्कर थे। ये गौतम बुद्ध के समकालीन थे। जैनियों को "जिन" भी कहा गया है। ये मुक्त विचरण करते थे और जैनमत का प्रचार करते थे।

जैन मतावलम्बी प्रत्यक्ष के साथ-साथ अनुमान, शब्द आदि प्रमाणों को मानते हैं। उनका मन्तव्य है कि अनुमान की सत्यता के लिए तर्क -विज्ञान के नियम अपरिहार्य हैं अन्यथा चार्वाक-दार्शनिकों का यह तर्क ही सत्य होगा कि अनुमान प्रमाण भ्रममूलक होता है। शब्द प्रमाण तब सत्य होता है जब वह आप्त अर्थात् विश्वसनीय व्यक्ति का कथन हो। जैन मत की धारणा है कि आध्यात्मिक विषयों का यथार्थ ज्ञान प्रारम्भ में प्रत्यक्ष तथा अनुमान के द्वारा नहीं हो सकता। एतदर्थ सर्वज्ञ तथा विमुक्त जिनों या तीर्थङ्करों के वचन ही प्रमाण हैं। इन्हीं तीन प्रमाणों के साहाय्य से जैन दर्शन स्थापित है। प्रत्यक्ष के द्वारा भौतिक तत्त्वों का बोध होता है। जैन मत भी स्वीकार करता है कि भौतिक द्रव्यों की रचना चार प्रकार के तत्त्वों से हुई है। भौतिक तत्त्वों के अतिरिक्त अनुमान के द्वारा आकाश, काल, धर्म और अधर्म का बोध होता है इनके लिए स्थान की आवश्यकता नहीं होती है। जबकि, भौतिक द्रव्यों के लिए स्थान एक अनिवार्य पक्ष है। अतः जब भौतिक द्रव्य स्थान घेरते हैं तो आकाश अवश्य है। द्रव्यों की अवस्थाओं के परिवर्तन के लिए काल अनिवार्य है। अतः, काल अवश्य है। धर्म तथा अधर्म क्रमशः गति और स्थिति के कारण परिज्ञात होते हैं, अतः इस युक्ति से इनकी भी स्थिति सिद्ध होती है। जैनियों में धर्म तथा अधर्म विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हैं। धर्म और अधर्म गति और स्थिति के कारण रूप है। इन उपर्युक्त द्रव्यों के अतिरिक्त चेतन वस्तु अर्थात जीव को भी द्रव्य के रूप जैनियों ने माना है। सुख-दुःख की स्थिति में

व्यक्ति अनुभवोपरान्त जीव की सत्ता को स्वीकारता है। जैन मत चार्वाक के उस तर्क का खण्डन करते हैं कि चैतन्य की उत्पत्ति भौतिक द्रव्यों से होती है। वे कहते हैं कि ऐसा कदापि नहीं देखा गया है कि भौतिक द्रव्यों के सम्मिलन से चैतन्य उत्पन्न हो गया हो ।

जैन मतावलम्बी का विचार है कि जितने सजीव शरीर हैं, उतने ही जीव हैं। वे मनुष्य, पशु-पक्षी, पेड़-पौधों और धूलिकणों में जीव की सत्ता स्वीकार करते हैं। सभी जीव समान चेतना से सम्पन्न नहीं हैं। वनस्पति एवं धूलिकणवासी जीव एकेन्द्रिय होते हैं। कतिपय निम्न कोटिक जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, होते हैं। किन्तु मनुष्य में पंच इन्द्रियाँ होती हैं। वस्तु-ज्ञान के माध्यम ये इन्द्रियाँ ही हैं। तथापि यही इन्द्रियाँ दुःख का मूल भी है, इनका बन्धन ही जीवबन्धन है। प्रत्येक जीव को अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य एवं अनन्त सुख पाने की क्षमता प्राप्त है। किन्तु, कर्म का बन्धन ही इस उपलब्धि में बाधक है। जीव के कर्म और उसकी कामनाएँ पुद्गल को बाँधती हैं।

जैन दार्शनिक मोक्ष (निर्वाण) को सर्वथा सम्भव घोषित करते हैं। तीर्थङ्करों का जीवन ही एतदर्थ प्रमाण है। वे बन्धन होने के तीन उपायों का निर्देश देते हैं-1. सम्यक् दर्शन, 2. सम्यक् ज्ञान 3. सम्यक् चरित्र । जैन महात्माओं के उपदेश-श्रवण, सम्यक् दर्शन है। उन महात्माओं के उपदेश का बोध, सम्यक् ज्ञान है तथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह का अनुशीलन सम्यक् चरित्र है।

इन्ही सम्यक् त्रय से मोक्ष का मार्ग प्राशस्त होता है।

जैन दार्शनिक ईश्वर-सत्ता में विश्वास नही करते हैं। ईश्वर के स्थान पर वे तीर्थङ्करों को स्वीकारकरते हैं। उनके लिए तीर्थङ्कर ही ईश्वर की तरह सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् है।

प्राणियों पर दया एवं अहिंसा करना जैन मत का विशिष्ट मन्तव्य है। सर्वविचार समादार भी जैनियों का एक विशेषण है। संसार की प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न होती है। कभी कोई वस्तु भावात्मक हो सकती है तो कभी अभावात्मक भी हो सकती है। वे मानते हैं कि किसी विषय का कोई मत एकान्त सत्य नहीं हो सकता। अत: असत्यता के निवारण के लिए विचारों में सतर्क होना अनिवार्य है। इसी कारण वे अपनी उक्तियों में "स्यात्" शब्द का प्रयोग करते हैं।

जैनदर्शन वस्तुवादी, बहुसत्तावादी एवं अनीश्वर वादी है।

बौद्ध-दर्शन

बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध थे। उनके उपदेशों में बौद्ध-दर्शन के तत्त्व प्राप्त होते हैं। महात्मा बुद्ध मनुष्य के रोग, जरा, मृत्यु आदि को देखकर नितान्त पीड़ित हुए और इन दु:खों के कारण को जानने के निमित्त उन्होंने वर्षो तक अध्ययन, तप और चिन्तन किया। अन्तत: बोधिया'ज्ञान प्राप्त होने पर वे निष्कर्ष पर पहुँचे कि - 1• दु:ख है । 2• दु:ख का कारण है। 3•दु:ख का अन्त है।4•दु:ख दूर करने के उपाय हैं। इन चारों को "आर्य-सत्य" कहा गया है। महात्मा बुद्ध को अनुभव हुआ कि दु:ख केवल विशेष परिस्थितियों में ही नही रहते हैं,

अपितु जगत् की सभी जीव सदैव इससे पीड़ित रहते हैं। जो सुखात्मक प्रतीत होते हैं, वस्तुत: वे दु:खात्मक ही होते हैं। महात्मा बुद्ध ने कहा कि संसार की सभी भौतिक या आध्यात्मिक वस्तुएँ अपने किसी कारण से उत्पन्न हुई हैं। एतद् प्रकारेण जगत् की सारी वस्तुएँ अनित्य हैं, सभीपरिवर्तनशील हैं। हमारी मृत्यु का कारण हमारा जन्म है। हमारे जन्म का कारण हमारी तृष्णा है। हमारी तृष्णा ही हमें विषयलोलुप बना देती है, इस विषय लोलुपता का कारण हमारा अज्ञान है। इस तरह अगर हमें ज्ञान हो जाय तो पुनर्जन्म का बंधन विनष्ट हो जाय और दु:खों का अन्त हो जाय। दु:खों के दूर करने के उपाय को "अष्टमार्ग" कहते हैं क्योंकि इसमें आठ साधन दिये गये हैं। 1. साम्यक् दृष्टि 2सम्यक् संकल्प, 3. सम्यक् वाक्, 4. सम्यक् कर्मान्त 5. सम्यक् आजीव, 6. सम्यक् व्यायाम, 7. सम्यक्स्मृति, 8. सम्यक् समाधि। इन आठ साधनों से बुद्धि निर्मल, दृढ़ एवंप्रकाशक होती है।

प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में महात्मा बुद्ध के निम्नोक्त दार्शनिक तथ्य उपलब्ध हैं—1. सभी विषयों के कारण हैं अर्थात् कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो स्वयं-भूत हो।, 2. सभी वस्तुएँ परिवर्तन शील हैं। ज्यों-ज्यों उनके कारणों में परिवर्तन आता जाता है, त्यों त्यों उन वस्तुओं में भी परिवर्तन होता जाता है।, 3. अत: इन परिवर्तनशील धर्मों के अतिरिक्त किसी द्रव्य का अस्तित्व प्रमाणित नहीं है। 4. किन्तु वर्तमान जीवन का क्रम चलता रहता है। वर्तमान जीवन के क्रम के अनुसार आगामी जीवन की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार एक बीज के द्वारा अन्य बीज

की उत्पत्ति होती और यह प्रकिया अनवरत रहती है, उसी प्रकार एक जीवन के कर्म द्वारा दूसरे जीवन की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म का अनवरत प्रवाह बना रहता है।

महात्मा बुद्ध के अनुयायियों ने उनकी शिक्षाओं की दार्शनिक व्याख्या दी। आगे चलकर एक मत वाले अनुयायियों के अनेक सम्प्रदाय बन गये। वे इस प्रकार है - 1. माध्यमिक मत या शून्यवाद। इस मत के अनुसार संसार शून्य है। बाह्य और अन्तर सभी विषम असत् हैं, अतएव इस मत को शून्यवाद कहते हैं। 2. योगाचार मत या विज्ञानवाद। इस मत की मान्यता है कि सभी बाह्य पदार्थ मिथ्या हैं। जो वस्तु बाहरी दीख पड़ती है, वह चित्त की प्रतीति मात्र है। चित्त का विचार चित्त के बिना नही हो सकता। इस मत के अनुसर बाह्य और आभ्यन्तर दोनों सत्य हैं। बाह्य वस्तुएँ यदि असत्य होतीं तो हमें अबाह्य वस्तुओं को देखने के लिए उनकी बाह्य रूप से अपेक्षा न होती अपितु मन अन्त: रूपेण देख लेता। किसी बाह्य वस्तु की सर्वत्रसत्ता नहीं हो सकती। अत: यह सिद्ध है कि मन के अतिरिक्त बाह्य जगत् का अस्तित्व है। चतुर्थ मत है वैभाषिक मत जो बहुत कुछ सौत्रांतिक मत में समता रखता है। दोनों मतों के अनुसार मनोमत प्रतीति एवं बाह्य सत्ता दोनों सत्य हैं, किन्तु किस प्रकार बाह्य पदार्थों का ज्ञान होता है- इसमें दोनों में मतभेद है। वैभाषिकों के अनुसार बाह्य वस्तुओं को ज्ञान हमें प्रत्यक्षत: होता है,

मानसिक चित्रों अथवा प्रतिरूपों के द्वारा अनुमानसे नहीं होता है। जबकि सौत्रान्तिकों का वस्तु ज्ञान बाह्य अनुमान पर अवलम्बित है।

धार्मिक प्रश्नों पर बौद्धमत दो सम्प्रदायों -हीनयान और महायान में विभक्त है। हीनयान- अधिकतर दक्षिण भारत, लंका, ब्रह्मा स्याम आदि में और महायान -मुख्यत: तिब्बत, चीन और जापान में प्रचलित हैं। शून्यवाद और विज्ञानवाद महायान के अन्तर्गत है और सौत्रान्तिक एवं वैभाषिक हीनयान के अन्तर्गत हैं। हीनयान के अनुसार निर्वाण के द्वारा व्यक्तिगत दु:खों की नाश होता है, जब कि महायान के अनुसार निर्वाण सम्पूर्ण प्राणियों के दु:खों के नाश के निमित्त प्रयुक्त किया जा सकता है।

न्याय दर्शन

न्याय दर्शन के संस्थापक महर्षि गौतम हैं। न्याय दर्शन वस्तुवादी दर्शन है। युक्तियों के साहाय्य से इस दर्शन को प्रतिष्ठित किया गया है। न्याय दर्शन चार प्रमाण-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द को मानता है। वस्तुओं के साक्षात् ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं। जिस वस्तु का प्रत्यक्ष होता है उसका संयोग यदि आँख, कान जैसी बाह्य इन्द्रियों से हो तो उसे बाह्य - प्रत्यक्ष कहते हैं। किन्तु यदि केवल मन से संयोग हो तो उसे अन्त:-प्रत्यक्ष कहते हैं। लिङ्ग परामर्श को अनुमान कहते हैं। अनुमान के लिए लिङ्ग अर्थात् साधन अपरिहार्य है। अनुमित वस्तु अर्थात्

साध्य और लिङ्ग में व्याप्ति सम्बन्ध रहता है। साधन एवं साध्य के नियत अर्थात् साहचर्य-सम्बन्ध को व्याप्ति कहते हैं। लिङ्ग (साधन) के तृतीय ज्ञान को परामर्श कहते हैं। अनुमान में कम से कम तीन वाक्य तथा अधिक से अधिक तीन पद होते हैं। इन पदों को पक्ष, साध्य तथा साधन (लिङ्ग) कहते हैं। पक्ष उसे कहते हैं, जिसमे लिङ्ग का अस्तित्व मालूम है और साध्य का अस्तित्व प्रमाणित करना है। साध्य को अनुमित वस्तु तथा साधन को व्याप्ति गमक सम्बन्ध कहते है। जैसे-"यह पर्वत अग्निमान् है क्योंकि यह धूमवान् है। जो धूमवान् है वह अग्निमान है।" यहाँ पर्वत पक्ष है, अग्निसाध्य तथा धूम साधन है।

उपमान में संज्ञा, संज्ञी के सम्बन्ध स्थापन को उपमान कहते हैं। आप्त अर्थात् विश्वसनीय व्यक्तियों की उक्तियों से अज्ञात वस्तुओं के सम्बन्ध में जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे शब्द कहते हैं। नैयायिक इन चार के अतिरिक्त और किसी प्रमाण को नहीं मानते हैं। उनके अनुसार अन्य सभी प्रमाण इन्हीं चार प्रमाणों में समाहित हैं।

न्याय दर्शन के अनुसार आत्मा देह, इन्द्रिय तथा उनके द्वारा ज्ञेय विषय, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष प्रेत्यभाव, फल, दु:ख तथा अपवर्ग प्रमेय हैं। न्याय का लक्ष्य आत्मा को शरीर शरीर, इन्द्रिय तथा विषयों के बन्धन से मुक्त करना है। आत्मा शरीर और मन से भिन्न है। शरीर भौतिक पदार्थों से बना है। मन अणु है, सूक्ष्म, नित्य तथा अविभाज्य। मन आत्मा के लिए एक निमित्त कारण है, क्योंकि आत्मा मन के द्वारा सु:ख, दु:ख आदि का अनुभव करता है। अत: मन को अंतरिन्द्रिय कहते हैं। आत्मा को में चैतन्य का संचार तभी होता है, जब आत्मा का सम्बन्ध किसी वस्तु से इन्द्रियों के माध्यम से होता है। इस प्रकार चैतन्य आत्मा विषय{वस्तु} के सम्पर्क में आकर वस्तु ज्ञान करता है2। मुक्तावस्था में आत्मा से उसके सारे सांसारिक सम्पर्क शून्य हो जाते हैं और वस्तु ज्ञान लुप्त प्राय हो जाता है। मन परमाणु के समान सूक्ष्मतम है, किन्तु आत्मा विभु, अमर तथा नित्य है। आत्मा ही सांसारिक विषयों में आसक्त या अनासक्त होता है। यही विषयों से राग द्वेष करता है। परिणामत: आत्मा को पापाबद्ध या दु:खग्रस्त होना पड़ता है। तत्त्वज्ञान से दु:खों का अन्त हो जाता है और मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस अवस्था को अपवर्ग कहते हैं। किचिंद् दार्शनिकों का मन्तव्य है कि यह अवस्था आनन्दमय होती है, किन्तु नैयायिकों का मानना है कि मुक्त होने पर आत्मा तो चैतन्य ही हो जाता है अत: सुख-दु:ख किसी की अनुभूति नहीं रहती है।

नैयायिक ईश्वर के अस्तित्व के लिए अनेक युक्तियाँ देते हैं। संसार के सभी पदार्थ परमाणुओं से विरचित हैं। यह कार्य मनुष्य की बुद्धि एवं सामर्थ्य से असम्भव है, क्योंकि उसकी क्षमता सीमित है। इस कार्य के लिए असीमित क्षमता, सामर्थ्य वाले कर्ता की आवश्यकता अपरिहार्य है। इस संसार का विनिर्माता निश्चय ही चेतन आत्मा है जो सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ तथा सांसारिक नैतिक व्यवस्था का पोषक है, वही ईश्वर है। ईश्वर ने संसार की सृष्टि अपने निमित्त न करके, अपितु प्राणिमात्र के कल्याण के लिए किया है। मनुष्य स्वकर्मानुसार संसार में सुखों और दु:खों का भोग करता हैं। किन्तु उसके दु:खों का निराकरण ईश्वर की दया एवं मार्ग दर्शन से सम्भव है। मनुष्य तात्विक ज्ञान द्वारा दु:खों से मुक्ति पा सकती है।

वैशेषिक-दर्शन

वैशेषिक-दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद थे। उनका दूसरा नाम उलूक था। न्याय दर्शन एवं वैशेषिक दर्शन में समता दीख पड़ती है। वैशेषिकों की मूल उद्देश्य अपवर्ग प्राप्ति है। वैशेषिक मत से संसार को सभी वस्तुएँ सात पदार्थों में विभक्त हैं। ये पदार्थ है- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव। द्रव्य नौ प्रकार के होते हैं- क्षिति, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा तथा मन। इनमें प्रथम पाँच भौतिक है और उनके गुण क्रमश: चार प्रकार के परमाणुओं से विनिर्मित हैं। ये परमाणु अणु (कण) की अन्तिम अवस्था है।

आकाश, दिक् तथा काल अप्रत्यक्ष हैं जो नित्य तथा विभु हैं। मन परमाणुवत् है, नित्य है, अन्तरिन्द्रिय है। किन्तु यह विभु नहीं है। आत्मा शाश्वत तथा सर्वव्यापी है। यह चैतन्य उद्भव-स्थल है। मन के द्वारा आत्मा की अनुभूति होती है। गुण द्रव्यों के लिए होता है। गुण में गुण नहीं होता है और न ही उसे कर्म होता है। गुण में गुण नही होता है और न ही उसे कर्म होता है। गुण की संख्या 24 है। कर्म गत्यात्मक होता है। गुण के समान यह भी द्रव्यों में प्राप्य है। पाँच प्रकार के कर्म होते हैं- उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण तथा गमन। किसी वर्ग के साधारण धर्म को सामान्य कहते हैं। गायों में एक साधारण धर्म गोत्व है अतः गोत्व को समान्य कहेंगे। साधारण धर्म-सामान्य-नित्य है। नित्य द्रव्यों की पृथकता के मूल कारण को विशेष कहते हैं। इसी विशेष की स्थापना के कारण इस दर्शन को वैशेषिक दर्शन कहते हैं। सामान्यतया वस्तुओं में भिन्नता देखी जा सकती है, किन्तु एक प्रकार के परमाणुओं में भिन्नता लक्षित होने में कठिनाई होती है। यह स्पष्ट है कि प्रत्येक परमाणु में भिन्नता उनकी अपनी विशेषता के कारण अवश्य होती है। परमाणुओं की विशेषताओं को ही विशेष कहते हैं। समवाय नित्य सम्बन्ध को कहते हैं। अवयवी का अवयवों के साथ गुण अथवा कर्म का द्रव्यों के साथ, सामान्य का व्यक्तियों के साथ समवाय का सम्बन्ध होता है। वस्त्र एवं धागों में समवाय का सम्बन्ध होता है। वस्त्र एवं धागों में समवाय का सम्बन्ध

होता है। गति का कर्ता में ॥गायक में॥ समवाय का सम्बन्ध होता है। नहीं रहने को अभाव कहते हैं। "वहाँ घट नही है"-में घट का अभाव लक्षित है। अभाव चार प्रकार-प्रागभाव, ध्वंसाभाव , अत्यन्ताभाव, तथा अन्योन्याभाव। किसी वस्तु की उत्पत्ति के पहले उपादान में जो उसका अभाव होता है उसे प्रागभाव कहते हैं। मिट्टी के ढेर में घट का जो अभाव है। किसी वस्तु के ध्वंस हो जाने पर जो उसका अभाव हो जाता है उसे ध्वंसाभाव कहते हैं। दो वस्तुओं में अतीत, वर्तमान, तथाभविष्य के लिए जो अभाव होता है उसे अत्यन्ताभाव कहते हैं, जैसे, वायु में रूप का अभाव दो वस्तुओं में जो पारस्परिक भेद रहता है, उसे अन्योन्याभाव कहते है। जैसे, घट औरपट दो अलग वस्तुएँ हैं। एक का दूसरे में पूर्णत: अभाव है।

सांसारिक वस्तुओं के निर्माता के रूप में ईश्वर अथवा परमात्मा का अस्तित्व अनुमान द्वारा सिद्ध है। ईश्वर तथा मोक्ष के विषय में वैशेषिक तथा न्याय में पूर्णत: साम्य है।

सांख्य दर्शन

सांख्य दर्शन के संस्थापक महर्षि कपिल थे। सांख्या दो तत्त्वों को स्वीकार करता है। ये दो तत्त्व-पुरूष और प्रकृति हैं। पुरूष चेतन है। चेतना पुरूष का आगन्तुक गुण नहीं है अपितु स्वरूप ही है। पुरूष शरीर, मन, इन्द्रियादि से पूर्णत: भिन्न है। यह नित्य है। यह प्रकृति के कार्यों का अवलोकन कर्ता है। यह

स्वयं कार्य नहीं करता है। यह सर्वथा निर्विकार है। प्रकृति के कार्यों का भोक्ता पुरूष ही है। पुरूष अनेक हैं। प्रत्येक जीव के साथ एक-एक पुरूष है। सांख्य पुरूष की अनेकता पर युक्तियाँ देता है। कुछ मनुष्य सुखी रहते हैं तो कुछ दु:खी। कुछ जन्म लेते हैं तो कुछ मरते हैं। एक मनुष्य के लंगड़े होने पर सभी मनुष्य लंगड़े नही होते हैं। परिणामत: पुरूष एक नहीं, अपितु अनेक हैं।

प्रकृति संसार का मूल कारण है। प्रकृति नित्य किन्तु जड़ है। यह निरन्तर परिवर्तनशील है। इसका मूल उद्देश्य पुरूष ही है। पुरूष को आकर्षित करना इसका लक्ष्य है। सत्त्व, रज, तम, ये प्रकृति के तीन गुण हैं। सत्त्व प्रकाशक, रज गतिशील और कर्म करता है। तम गुरू, अचल एवं आवरणकारी है। सृष्टि की आदि में ये तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं किन्तु सृष्टि काल में इनमें विक्षोभ उत्पन्न होता है और किसी एक गुण की प्रधानता हो जाती है। साधारण अर्थ में इन्हें गुण नही मानना चाहिए। इनकी पृथक् विशिष्टता है। इन्हें इस तरह समझना चाहिए जिस प्रकार कोई रस्सी तिगुनी डोरियों से बनी हुई हो। प्रकृति उसी प्रकार इन तीन मौलिक तत्त्वों से स्थापित है। वस्तुओं को सुखात्मक, दु:खात्मक एवं मोहात्मक देखा जा सकता है। इसे तीन गुणों का अनुमान लगाया जा सकता है। मीठा भोजन किसी का प्रिय खाद्य, किसी का अप्रिय खाद्य तथा किसी के लिए निरपेक्ष खाद्य होता है, वस्तुत: यह दशा त्रयगुण वशात् होती है।

सांख्य दर्शन की एक प्रमुख अवधारणा है सत्कार्यवाद। सत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्ति है। वस्तुत: कारण एवं कार्य में ऐक्य है। सत् तिल (कारणों) सत् तेल "कार्य" को उत्पत्ति होती है। सांख्या परिणामवादी है। प्रकृति का द्वितोय नाम प्रधान है। यह संसार का मूल कारण है, अत: इसके परिणाम सत्कार्य वाद के अनुसार तद्रूप (प्रकृति रूप) होते हैं। इसलिए प्रकृति की सृष्टि सत्त्व रज, तम से आच्छन्न होने से सुखात्मक, दु:खात्मक एवं मोहात्मक होती है।

सांसारिक सृष्टि पुरूष प्रकृति के संयोग से होती है। पुरूष के संयोग काल में प्रकृति के तोनों गुणों की साम्यावस्था भंग होती है, उनमें विक्षोभ होता है। जगत् की सृष्टि इसो क्रम में है। सत्त्व के आधिक्यवशात् प्रकृति से महत् की उत्पत्ति होतो है। महत् के सत्त्व गुण पर जब पुरूष का चैतन्य-प्रकाश पड़ता है, तब महत्‌भी चैतन्य की तरह लगता है एतद् वशात् प्रकृति भी चैतन्यवत् हो जाती है। महत् तत्त्व को बुद्धि भो कहते हैं क्योंकि इसमें चिन्तन को विशिष्टता आ जाती है। चिन्तन की इसी विशिष्टता के कारण बुद्धि "सृष्टि) के लिए मूल तत्त्व है। बुद्धि से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार अभिमान कहा जाता है। इसी अहंकार के संयोग से आत्मा स्वयं को कर्ता मानने लगता है। अहंकार से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन की उत्पत्ति होती है। मन उभयेन्द्रिय है क्योंकि इससे ज्ञान और कर्म दोनो सम्पादित होते हैं। तम कीप्रचुरता वशात् अहंकार से पाँच तन्त-मात्रों-शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध की व्युत्पत्ति होती है। पञ्च तन्मात्रों से

पञ्च महाभूतों-आकाश,वायु,अग्नि,जल तथा पृथ्वी-की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सांख्य में 25 तत्त्व प्राप्त होते हैं। पुरूष के अतिरिक्त अन्य सभी तत्त्व प्रकृति गत है। अत: उनका कारण प्रकृति है। प्रकृति का कोई कारण नहीं है। पुरूष किसी का न कारण और न परिणाम ही है। 558738

पुरूष अविद्यावशात् प्रकृति में अपने को आबद्ध पाता है। जबकि पुरूष निरपेक्ष एवं नित्य है। पुरूष की अविद्या एवं प्रकृति -संयोग (आबन्धन) के कारण जीव स्वयं को दु:खाबद्ध पाता है। किन्तु जब पुरूष में विवेक की उत्पत्ति होती है और उसे प्रकृति से अलग होने का ज्ञान होता है तब उसके दु:खों का अन्त हो जाता है। शरीर, मन, इन्द्रिय आदि के दु:ख उसके अपने नहीं लगते। पुरूष इस निरपेक्षावस्था में संसार का द्रष्टामात्र रह जाता है। इसी अवस्था को "मुक्ति या कैवल्य" कहते हैं। इसे जीवन-मुक्ति भी कहते हैं। इस अवस्था की अवाप्ति के लिए धिर, सतत आध्यात्मिक साधना की आवश्यकता होती है। तब जाकर आत्मज्ञान होता है।

सांख्य ईश्वर के अस्तित्त्व में विश्वास नहीं करता है। संसार की सृष्टि के लिए प्रकृति ही पर्याप्त है। अत: ईश्वर के अस्तित्व की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। सत्कार्यवाद, परिणामवाद ईश्वर के अस्तित्व में बाधक हैं। क्योंकि, जब ईश्वर शाश्वत तथा अपरिवर्तनशील होगा तो उसके परिणाम कार्य (सृष्टि) में अवश्य विद्यमान हो जायेगा। इस प्रकार सृष्टि शाश्वत एवं अपरिवर्तनशील कदाचित् नहीं हो सकती है। सांख्य के भाष्यकार विज्ञान भिक्षु ईश्वर के अस्तित्व

को अन्य रूप में ग्रहण करते है । उनका कथन है कि ईश्वर प्रकृति का द्रष्टामात्र है, स्रष्टा नहीं।

योग- दर्शन

योग-दर्शन के संस्थापक महर्षि पतंजलि हैं। योग दर्शन एवं सांख्य दर्शन में कई प्रसंगों में समता है। सांख्य के प्रमाण एवं तत्त्व योग को भी स्वीकार्य हैं। योग ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करता है, जबकि सांख्य नहीं विश्वास करता है। योग सांख्य के 25 तत्त्वों को ग्रहण करता है। सांख्य मोक्ष प्राप्ति के लिए विवेक ज्ञान को अपरिहार्य मानता है। योग इस तथ्य को स्वीकार तो करता है, किन्तु विवेक ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान की सिद्धि के लिए वह योगाभ्यास को अनिवार्य मानता है। योग चित्तवृत्ति के निरोध को कहते हैं। चित्त की पाँच भूमियाँ-क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरुद्ध हैं। क्षिप्तचित्तवृत्ति में चित्त की चंचलता सांसारिक वस्तुओं के अनुसार रहती है। मूढ़ चित्तवृत्ति में चित्त की चन्चलता मन्द रहती है। इन चित्तवृत्तियों में योगाभ्यास असम्भव रहता है। एकाग्र एवं निरुद्ध चित्तवृत्ति में ही योगाभ्यास असम्भव रहता है। एकाग्र अवस्था में चित्त किसी ध्येय में केन्द्रीभूत रहता है। निरुद्धावस्था में चिन्तन-परम्परा भी विच्छिन्न हो जाती है। योग दो प्रकार का संप्रज्ञातयोग, असंप्रज्ञात-योग होता है। संप्रज्ञात योग में चित्त ध्येय पर पूर्णत: तन्मय रहता है और ध्येय का पूर्ण ज्ञान चित्त में विद्यमान रहता है। किन्तु इस ध्येय विषय का ज्ञान असंप्रज्ञात योग

में लुप्त हो जाता है और चित्त की सारी क्रियाएँ छिन्न हो जाती है।

योगाभ्यास के आठ अंग है, जिन्हें योगांग कहा गया है। ये हैं-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, तथा समाधि। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का अभ्यास करना यम है। शौच, सन्तोष, तप स्वाध्याय, तथा ईश्वर-प्रणिधान का अभ्यास करना नियम है। आनन्दप्रद शारीरिक स्थिति आसन है। नियन्त्रित रूप से स्वास ग्रहण, धारण एवं त्याग प्राणायाम है। इन्द्रियों को विषयों से अलग करना प्रत्याहार है। चित्त को किसी वस्तु पर केन्द्रित करना धारणा है। किसी विषय पर सुदृढ़ एवं अविच्छिन्न चिन्तन ध्यान है। ध्यानशील चित्त को ध्येय वस्तु में तल्लीन स हो जाना समाधि है।

योग दर्शन ईश्वर को स्वीकार करता है। चित्त की एकाग्रता एंव आत्मज्ञान दर्शन के लिए ईश्वर का अस्तित्व आवश्यक है। ईश्वर पूर्ण, शाश्वत, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ एवं सर्व दोष-रहित है। ईश्वर के अस्तित्व के लिए निम्नवत् युक्तियाँ हैं- अनुशासन एवं व्यवस्था के लिए सर्वोच्च कर्ता का होना आवश्यक है। ज्ञान में न्यूनाधिक्य है अत: पूर्ण ज्ञान एवं पूर्ण ज्ञाता का होना अपरिहार्य है। प्रकृति पुरूष के संयोग से सृष्टि तथा संयोग-भंग होने से प्रलय होता है। यह संयोग एवं संयोग भंग की अवस्था स्वभावत: नहीं है, अपितु ईश्वर इसका व्यवस्थापक है, जिससे वह पुरूष के कृत्यों के अनुसार उसके पाप एवं पुण्य के कर्मों का प्रतिफल दे सके।

मीमांसा -दर्शन

मीमांसा दर्शन वेदवादी है और इसके संस्थापक थे महर्षि जैमिनी। इसे पूर्व मीमांसा भी कहते हैं। मीमांसा दर्शन की मान्यता है कि वेद अपौरुषेय हैं; वेद असंदिग्ध रूपेण प्रामाणिक हैं तथा वेद नित्य हैं। वेद के कर्मकाण्डों को युक्ति पूर्वक प्रतिपादित करना मीमांसा का प्रमुख उद्देश्य है। मीमांसा में प्रमाणों का सविस्तार वर्णन है, जिसका प्रमुख लक्ष्य है कि यह सिद्ध हो सके कि सभी ज्ञान स्वत: प्रमाण हैं। वस्तुत: एतद् प्रकारेण यह सिद्ध होता है कि वेद स्वत: प्रामाणिक हैं। ज्ञानोत्पत्ति पर्याप्त सामग्री पर ही सम्भव है। किन्तु सबसे आवश्यक है मन में ज्ञान के प्रति विश्वास का होना। प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द प्रमाणों से उत्पन्न ज्ञान के प्रति हमारी बलवती निष्ठा ही ज्ञान के प्रति संदेह को दूर करती है। वेद से जो ज्ञान प्राप्त होता है उसमें हमारा विश्वास रहता है। संदेह की स्थिति में मीमांसा युक्तिपूर्वक वैदिक ज्ञान को प्रतिष्ठित करती है।

वेद में धर्म एवं अधर्म का निराकरण दिया गया है। विहित कर्मों का पालन एवं निषिद्ध कर्मों का त्याग धर्म कहलाता है। वेद विहित कर्मों का पालन निष्ठा पूर्वक एवं निष्काम भाव से करना चाहिए। वस्तुत: वेद-निष्पादित कर्मों को स्वकर्तव्य-भाव से करना चाहिए। इस विधि के परिपालन से पूर्वार्जित कर्मों का नाश होता है और देहावसान पर मुक्ति की प्राप्ति होती है। प्राचीन मीमांसा

का मन्तव्य है कि स्वर्ग या विशुद्ध सुख की प्राप्ति ही मोक्ष है किन्तु परवर्ती काल में मोक्ष का तात्पर्य जन्म नाश या दुःखों का अन्त माना जाने लगा।

मीमांसा आत्मा की निरन्तरता में विश्वास करती है। यदि आत्मा का अन्त अथवा उसकोमृत्यु सम्भव होगा तो जगत् में अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी। आत्मा की मृत्यु पर स्वर्ग-प्राप्ति की कामना का विचार निरर्थक सिद्ध होगा। धर्माचारण का कोई सार्थक तात्पर्य ही न होगा। मीमांसक चार्वाकों के आत्मा की अनित्यता के सिद्धान्त का खण्डन करते हैं। मीमांसक आत्मा के स्वरूप-लक्षण चैतन्य को अस्वीकार करते है। उनका मन्तव्य है कि चैतन्य का प्रादुर्भाव शरीर और आत्मा के संयोग से होता है। मुक्त आत्मा में चैतन्य नही रहता है।

मीमांसा दर्शन की एक शाखा के प्रवर्तक प्रभाकर थे। उन्होंने पाँच प्रमाणों प्रत्यक्ष,अनुमान, उपमान,शब्द और अर्थापत्ति को प्रतिष्ठित किया है। न्यायदर्शन के प्रमाणों- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द से सम्बन्धित युक्तियों को मीमांसा भी मानती है। अर्थापत्ति दर्शन के पक्ष में मीमांसादर्शन की युक्ति भिन्नप्रकारेण है। उपमान की युक्ति में भी थोड़ी सी भिन्नता मीमांसा में व्याख्यात है। अर्थापत्ति ज्ञान मेंअनुपलब्ध सत्ता का अनुमान लगाया जाता है, जैसे, यदि कोई मनुष्य दिन में भोजन नही करता हो और मोटा होता जाता हो तो अर्थापत्ति से जान सकते है कि वह व्यक्ति रात मे अवश्य भोजन करता है।

मीमांसा दर्शन की दूसरी शाखा के प्रवर्तक कुमारिल भट्ट थे। उन्होंने पाँच प्रमाणों के अतिरिक्त छठें प्रमाण- अनुपलब्धि को भी माना है। यदि किसी घर में घुसने पर तथा चारों ओर देखने पर यदि कोई व्यक्ति कहे कि इस घर में वस्त्र नहीं है तो वस्त्राभाव का ज्ञान प्रत्यक्ष से न होकर बल्कि अनुपलब्ध प्रमाण से होता है। मीमांसा आत्मा के अस्तित्व को यद्यपि स्वीकार कर लेती है किन्तु जगत्स्रष्टा-ईश्वर को नही मानती है जगत् अनादि और अनन्त है। सांसारिक वस्तुओं का जन्म आत्मा के पूर्वार्जित कर्मों के अनुसार भौतिक पदार्थों से होता है। मीमांसा कर्म-व्यवस्था को "अपूर्व" कहतो है। यज्ञादि कर्म करने से व्यक्ति को जो शक्ति प्राप्त होती है, उसे ही अपूर्व कहते हैं। अपूर्व के अधार पर व्यक्ति को स्वकृत कर्मों का फल भविष्य में प्राप्त होता है।

वेदान्त दर्शन

वेदान्त दर्शन में उपनिषदों के दार्शनिक तत्त्वों की व्याख्या की गयी है उपनिषदों में वैदिक विचार-धारा का एक विकसित रूप है। परवर्तीकाल में उपनिषदों के पर सूत्र एवं भाष्य लिखे गये। भाष्यों में शंकर एवं रामानुज के भाष्य अधिक लोकप्रिय हुए। उपनिषदों के ये वाक्य- "सर्वं खलु ब्रह्म" "नेह नानाऽस्ति किञ्चन" ब्रह्म एवं जगत् को अवधारणा को प्रतिष्ठित करते हैं कि आत्मा अर्थात् ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है। संसार का नानात्व असत्य है। ब्रह्मअनन्त ज्ञान एवं अनन्त आनन्द से सम्पन्न है।

शंकर ने उपनिषदों में लक्षित दार्शनिक विसंगतियों का निराकरण किया है और समुचित व्याख्या प्रस्तुत की है। ईश्वर (ब्रह्मा) जगत् का स्रष्टा है, ब्रह्मा जगत् में व्याप्त है, जगत् अनित्य है, जगत् में एक मात्र ब्रह्म है, आदि सभी की विसंगतियों के निराकरण में शंकर ने स्पष्ट किया है कि उपनिषदों में विशुद्ध अद्वैतवाद की शिक्षा दी गयी है और संसार की सृष्टि ब्रह्म का मात्र एक इन्द्रजाल ही है। पारमार्थिक सत्ता एक ही है और जगत् इन्द्रजाल की तरह मिथ्या है। उपर्युक्त तथ्य के पक्ष में शंकर और युक्तियाँ देते हैं। वे माया एवं अविद्या की परिकल्पना करते है। वे कहते हैं कभी-कभी रस्सी साँप के रूप में दीख पड़ती है। ऐसा अनुभव भ्रम कहा जाता है इस भ्रान्ति में रस्सी एक अधिष्ठान है जिस पर साँप रूप का अध्यास या आरोप किया गया है। यहाँ अध्यस्त साँप सत्य नहीं है। वस्तुत: अज्ञान के कारण अधिष्ठान वस्तु का केवल आवरण ही नही होता है अपितु विक्षेप भी होता इस आवरण एवं विक्षेप शक्ति का दृष्टान्त जादूगर की उस जादूगरी में देखा जा सकता है जिसमें वह एक मुद्रा को कई मुद्रा में बदल देता है। वस्तुत: यह स्वरूप ब्रह्म और उसकी माया में देखा जा सकता है। ब्रह्म अपनी माया शक्ति से जगत् को नाना रूप बनाता है जिसे हम अपने अज्ञान के कारण समझ नही पाते है। इस प्रकार शंकर सिद्ध करते हैं कि माया और अज्ञान एक ही है जो वास्तविक रूप को आवरणित कर लेते है। उनको विक्षेप शक्ति के कारण नाना रूप जगत् दिखाई पड़ता है।

शंकर ब्रह्म एवं जगत् के सम्बन्ध में दो दृष्टियों को प्रतिपादित करते हैं, जिससे भिन्न-भिन्न विचारवादियों के लिए विषय अवगमनीय हो जाय। प्रथम दृष्टि है- व्यावहारिक दृष्टि एवं द्वितीय दृष्टि है- पारमार्थिक दृष्टि। व्यावहारिक दृष्टि उन साधारण जनों के लिए है जो संसार को सत्य मानते हैं। सत्य संसार का कोई कर्ता, रक्षक एवं संहारक है जो सर्वज्ञ सर्वशक्तिसम्पन्न, अनादि और अमर हैं। वस्तुतः वह सगुण ईश्वर है जिसके अनेक गुण हैं। शंकर व्यावहारिक दृष्टि के हेतु सगुण ब्रह्म को अवधारित करते हैं और आत्मा को शरीर बद्ध सत्ता मानते हैं। पारमार्थिक दृष्टि बुद्धि वादियों के निमित्त है जो मानते हैं कि ब्रह्म एक मात्र सत्य है, जगत् मिथ्या है, जगत् ब्रह्म का एक माया रूप है। जगत् के मिथ्यात्व के कारण ब्रह्म जगत् का कर्ता नहीं है, उसमें कोई गुण नहीं है अर्थात् ब्रह्म निर्गुण है शरीर भ्रान्ति मूलक है। आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नही है। पारमार्थिक दृष्टि की प्राप्ति अविद्या-नाश पर ही संभव है। अविद्या - नाश के निमित्त व्यक्ति को मन और इन्द्रिय का संयम, भोग्य वस्तुओं के प्रति विरक्ति, जगत् की अनित्यता का ज्ञान एवं मुमुक्षुत्व अर्थात् मुक्ति के लिए प्रबल इच्छा का अनुशीलन करना चाहिए गुरु द्वारा निर्दिष्ट "तत्त्वमसि" का आत्ममनन "अहं ब्रह्मासि" के रूप में आत्म-सात् करने पर साक्षात् ज्ञान एवं मुक्ति मिलती है। इस अवस्था में आकर व्यक्ति जगत् के असत्य को स्वीकार करता है। शरीर अनित्य है। आत्मा बंधन रहित है, वह संसार में रहकर भी अनासक्त रहता है। इस प्रकार मुक्त आत्मा ब्रह्म के आनन्द स्वरूप को प्राप्त करता है।

उपनिषदों की व्याख्या रामानुज भिन्न प्रकार से करते हैं। वे ईश्वर को सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् मानते हैं। ईश्वर सगुण है और अच्छे गुणों का वह आकर है। उचित या अचेतन प्रकृति एवं चित् या चेतन आत्मा ईश्वर के द्वारा उत्पन्न हैं। ईश्वर जगत् की सृष्टि मकड़े द्वारा बनाये गये जाले की भाँति करता है। आत्मा अणु है,वह ईश्वर का एक अंश है, उसक स्वरूप चिन्मय है। कर्मानुसार प्रत्येक आत्मा को शरीर धारण करना पड़ता है। अज्ञान के कारण आत्मा जगत् को सत्य समझता है और उसमें आसक्त रहता है। शरीर उसे प्रिय रहतो है। इस प्रकार कर्माबद्ध होकर वह पुन: पुन: जन्मग्रहणकरता । वेदान्त श्रवण एवं अनुशीलन से ज्ञान की प्राप्ति होती है और संसार के मिथ्यात्व का ज्ञान होता है। उसे ज्ञात होता है कि वह ईश्वर का एक अंश है, जिसका शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह ईश्वर पर निर्भर करता है। अनासक्त भाव से वेदविहित कर्मों के करने से संचित कर्मशक्ति नष्ट हो जाती है और अनन्त ज्ञान की प्राप्ति होती है। उसे ज्ञात होता है कि ईश्वर प्रेम एवं भक्ति के योग्य है। ईश्वर भक्तों पर प्रसन्न होता है और उसके प्रसन्न होने पर आत्मा का जगत् बंधन विनष्ट हो सकता है।

रामानुज के अनुसार संार में ईश्वर कोएक मात्र सत्ता है संसार अनित्य है। ईश्वर नित्य एवं विभु है। ईश्वर ~~की की एक~~ के अन्तर्गत अनेक रचनाएँ है संसार की सृष्टि सत्य है। आत्मा विभु ईश्वर में समाविष्ट नही हो सकता है क्योंकि आत्मा अणु है उसकी ईश्वर के अन्तर्गत सत्ता है, रामानुज के इस

दर्शन को विशुद्ध अद्वैत नहीं कह सकते है। यह विशिष्टाद्वैत है, क्योंकि सर्वव्यापी ईश्वर को स्वतन्त्रसत्ता आत्मा की सत्ताओं से विशिष्टतया संयुक्त है।

अन्ततः हम देखते हैं कि चार्वाक को छोड़कर सभी दर्शन आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। आत्मा के जन्म-जन्मान्तर का भ्रमण कर्म के बन्धन-वशात् होता है। कर्म के बन्धन के नाश को मुक्ति कहते है। चार्वाक् पारलौकिक सत्ता में विश्वास नहीं करता है उसके लिए यह भौतिक देह ही आत्मा है। जैन, बौद्ध, सांख्य, मीमांसा स्पष्टतः ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते हैं। ये कर्म की शक्ति को सृष्टि का कारण निरूपित करते हैं। वस्तुतः ज्ञान और विद्या सभी दर्शनों के लिए मोक्ष प्राप्ति का साधन है। मूल बिन्दु पर सभी दर्शनों की चिन्तन धारा समान ही है।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

संस्कृत काव्य की दार्शनिकता की ओर प्रवृत्ति

जीवन, जिसे कवि अविभक्त रूप से जी रहा हो, जिसके साथ समवेत रूप से समाज जी रहा हो, फिर भी वह कवि को चेतना के लिए रहस्य पूर्ण बना रहा हो, तो क्यों न वह कवि के काव्य-लोक की सर्जना में एक वैचारिक झंझा को प्रत्युद्भूत कर देगा ? हम पाते हैं कि कवि की कल्पना जीवन के रहस्य को समझने के लिए कवि के चैन्तनिक क्षितिज में भ्रमण करती हुई मिलती है। कवि की कल्पना चाहे किसी प्रकार के विषय के क्षितिज से उड़ान भरती हो किन्तु पाठक अवश्य पाता है कि उसकी कल्पना जीवन के आकाश में किसी चिरन्तन आश्रय एवं पर्यवसान की आस्था में विचरण करती हुई जीवन की रहस्यमय व्यापकता को समझना चाहती है। हम संस्कृत-काव्य-सर्जना की धारा में निमज्जन के उपरान्त यह नितान्त रूप से पाते हैं कि संस्कृत कवि एक आस्तिक प्राणी होता है व उसके लिए जीवन आनन्द स्वरूप, किन्तु रहस्यपूर्ण है। उसके लिए जीवन धाराबद्ध और नैतिक है, जिसका क्रम जन्मान्तरों तक व्याप्त है। संसार में विकटता तो है, किन्तु पर्यवसान में सुख है, आदि। उसकी कल्पना के परों के उड़ान जीवन के ओर-छोर को जानने की चेष्टा करते हैं, किन्तु उससे जीवन की चिरन्तन शक्ति में ही आस्था करके ही सन्तोष करना पड़ता है, क्योंकि जीवन के ओर-छोर तक अर्थात् ईश्वर तक कल्पना से नहीं पहुँचा जा सकता है। वस्तुतः संस्कृत-काव्य में दार्शनिक चैन्तनिक बिन्दु

के प्रवेश के पीछे प्राचीन भारतीय समाज का परिवेश और दार्शनिक लोक-चेतना की अभीप्सा कारण है।

संस्कृत कवियों के ज्ञान-विज्ञान का कारण वेद मूलक पठन-पाठन था। जिसके कारण कवियों के ज्ञान कोष में वेद, उपनिषद्, पुराणों के दर्शन एवं रहस्य का प्रवेश करना स्वाभाविक था। उन कवियों ने जिन आख्यान या आख्यायिकाओं को काव्य का विषय बनाया वे सभी वेद, पुराण, स्मृति आदि से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्बद्ध थे। यह स्पष्ट है कि वेद, पुराण, स्मृति आदि ग्रन्थों में दार्शनिक तत्त्वों का मन्जुल समन्वय है परिणामत: उनको मस्तिष्कमन्जूषा में दार्शनिकता की छाप पड़ना स्वाभाविक था। संस्कृत-साहित्य के कवि प्रकाण्ड विद्वान् रहते रहे हैं। उन्होंने अपनी उत्कृष्ट विद्वता के निमित्त वेद, उपनिषद्, पुराण, स्मृति, ज्योतिष, आयुर्वेद, धर्मशास्त्र आदि का गहन अध्ययन किया। उनका विचार था कि उत्कृष्ट काव्य-लेखन के लिए वेदादि का अध्ययन अपरिहार्य है। उनकी इस प्रकाण्ड विद्वता का स्वाभाविक झलक भारवि के पूर्ववर्ती कवियों में स्पष्ट रूप से प्राप्त है।

संस्कृत-साहित्य के कवि आस्तिक रहे हैं। उन्हें ईश्वर को सत्ता में अटूट विश्वास रहा है। वे धार्मिक आचरण एवम् अनुशीलन पर बल देते रहे हैं। इसी कारण उनके काव्यों का लेखन धर्म और ईश्वर में आस्था के साथ किया गया है। वे अपने सफल मनोरथ की ओर अग्रसर होने की वन्दना करते हैं। काव्य-शास्त्र के माप-दण्डों ने काव्य में देव-स्तुति का प्रावधान कर दार्शनिक बिन्दुओं का

प्रवेश कराया है। काव्यशास्त्र का प्रावधान है कि काव्य का पर्यवसान सुखात्मक होना चाहिए। काव्य का लक्ष्य धर्म की विजय हो, काव्य का नायक उद्‌दात्त चेता हो, काव्य का मार्ग-दर्शन कल्याण कारी हो। वस्तुत: सम्पूर्ण काव्य-शास्त्रीय प्रावधान कवि को जीवन चिन्तन के एक दार्शनिक पृष्ठ भूमि पर खड़ा कर देते हैं। और कवि को एक आस्तिक परिवेश में लिखने के लिए नियुक्त कर देते हैं।

भारत का प्राचीन समाज वैदिक कर्मकाण्डों एवं रीतिरिवाजों से सन्नद्व था। क्योंकि कवि सामाजिक प्राणी होता है। अत: उसे वैदिक कर्मकाण्डों एवं रीति रिवाअजों के परिवेश को आधार बनाकर काव्य की सर्जना करनी पड़ती थी। अत: उनके काव्य में वैदिक छवि का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। संस्कृत काव्य में वैदिक यज्ञ-याग की निष्ठा और उसके वर्णन का प्रवेश इन्हीं वैदिक कर्म-काण्डों के प्रभाववश हो सका है। प्राचीन भारतीय समाज की सांस्कृतिक वैचारिक चेतना ईश्वर-आस्थोन्मुखी थी। अत: कवियों के वर्ण्यविषय में ईश्वर -निष्ठा का प्रवेश हो सका है। भारतीय समाज में जन्मान्तर-परम्परा की अवधारणा अटूट रूप से व्याप्त रही है। उसे इस तत्त्व में सदैव आस्था रही है कि दु:खों का पर्यवसान सुखों में होता है। रात के बाद दिन अवश्य आता है। सुखों-दु:खों का प्रकम चलता रहता है। जीवन निकृष्ट नहीं है अपितु उसका सार्थक उपयोग है। संसार का सुखोपभोग ही सब कुछ नहीं है। दूसरी पारलौकिक सत्ता भी है। परलोक -सुख सर्वोत्तम सुख है। पाप का परिणाम नर्क और पुण्य का परिणाम स्वर्ग

होता है। जीव अपने कर्मों का फल अवश्य भोगता है। ईश्वर सर्वोच्च न्यायकर्ता है, वह समुचित न्याय अवश्य करता है, इत्यादि दार्शनिक अवधारणायें प्राचीन भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना के प्राण तत्त्व थीं। ऐसे समाज से मानसिक ऊर्जा प्राप्त करने वाला प्राचीन संस्कृत-कवि दार्शनिक चेतना से क्यों न प्रभावित होता। इसीलिए हम देखते हैं कि संस्कृत के कवियों वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, अश्वघोष, बाणभट्ट, भारवि आदि के काव्य में लोक-चेतना का प्रभाव नितान्त रूप से व्याप्त है। उन्हें ईश्वर में विश्वास है और वे धर्म एवं नैतिकता को प्रतिष्ठित करते हैं। वे सुखान्त काव्य को प्रश्रय देते हैं, वे पुण्य-पाप में विश्वास करते हैं आदि। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की मानसिकता अपने परिवेश के अनुरूप दार्शनिकता की ओर प्रवृत्त थी और साथ ही साथ समाज में समादृत भी थी। आगे यह अध्ययन का विषय बनाता है कि यह दार्शनिकता की प्रवृत्ति किस सीमा से जाग्रत हुई और किस प्रकार बढ़ती हुई गहन रूप धारण कर ली। हमने पिछले अध्याय "महाकाव्यों के मध्य बृहत्त्रयी का विशिष्ट स्वरूप" में स्पष्ट कर लिया है कि भारतीय कवियों ने काव्य सर्जना के लिए विशेष रूप से दो शैलियों -सुकुमार लेखन की शैली, आलंकारिक शैली का उपयोग किया गया है। ये दोनों शैलियाँ भी क्रम से काव्यक्षेत्र में अवतरित हुई हैं, पहले सुकुमार शैली, फिर आलङ्कारिक शैली। सुकुमार लेखन के पक्षधर कवियों-वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि ने रस और स्वाभाविकता के पोषण के लिए दार्शनिक बिन्दुओं को भी स्वाभाविक

रूप से ही प्रयुक्त किया है, उनको बहुलता पर जोर नहीं दिया, जबकि आलङ्कारिक शैली के कवि भारवि ,भट्टि, माघ,श्रीहर्ष, आदि ने अपने बहुज्ञताज्ञापन और पाण्डित्य प्रदर्शन की ~~अत्यु~~ आतुरता में दार्शनिक तत्त्वों को बलपूर्वक काव्य में प्रवेश कराया है। सुकुमार लेखन-शैली के दार्शनिक तत्त्व के समावेश धारा-प्रवाह के सहयोगी ही बनते रहे हैं, जबकि आलङ्कारिक शैली के दार्शनिक तत्त्व धारा-प्रवाह भाग को दुरूह और बाधित करते रहे। परिणामत: जिस सौन्दर्य -बोध को कराने की कवि की ईप्सा रही उससे पाठक वञ्चित रहता रहा है। उसे ऐसा लगता रहा है कि जैसे वह काव्य-लोक में दर्शन का पाठ ही पढ़ने बैठा हो। ~~सुकुमार शैली में दर्शन का पाठ ही पढ़ने बैठा हो~~। सुकुमार शैली में दार्शनिक तत्त्व अति सहज रूप में प्रविष्ट कराये गये हैं, जबकि आलंकारिक शैली में इन तत्त्वों को असामान्य रूप से प्रयुक्त किया गया है।

आदि कवि वाल्मीकि के काव्य के नायक पुरुषोत्तम राम हैं। अत: धर्म एवं जीवन-दर्शन के सामान्य विचार का प्रस्फुटन उनके काव्य में समग्र रूप से उपलब्ध है। उन्हें जन्म और मरण, लोक और परलोक, जन्म और जन्मान्तर आदि पर लिखने को पूर्ण अवसर मिला है। तदापि हम वाल्मीकि में परवर्ती कवियों का दार्शनिकता मात्र पाण्डित्य नहीं पाते हैं, फिर भी उन्हें अनेक दार्शनिक विषयों की समान्य जानकारी थी। किष्किन्धा काण्ड में राम ~~अ~~ हनुमान को तीनों वेदों और व्याकरण का पण्डित बतलाते हैं। व्यासकृत महाभारत पौराणिक आख्यानों

से भरा पड़ा है अत: दार्शनिक वर्ण्य विषय खुलकर व्याख्यात हुए है।भगवत्गीता विदलोपाख्यान,युधिष्ठिर की शान्तनीतियों आदि में दार्शनिकता की स्पष्ट प्रतिफलन है।

यद्यपि भास मूलत: नाटककार थे,तदपि वे एक अच्छे काव्य रचनाकार भी है। उनकी कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है,वे सांगोपाड्ग वेद,माहेश्वर, योगशास्त्र, मेधातिथि के न्याय शास्त्र से परिचित थे।

अश्वघोष ने अपने वर्ण्य-विषय अर्थात् कथानक को इस प्रकार का चुना है कि उन्हें दार्शनिक पाण्डित्य को व्यक्त करने का अच्छा अवसर मिल गया है। बुद्धचरितम् और सौन्दरनन्द को कथानक भगवान् बुद्ध के जीवन के क्रिया कलापों तक पहुँचता है। अत: उनके काव्य में बौद्ध-दर्शन के चिन्तन,मनन के बिन्दु स्पष्ट रूप से प्राप्त होते हैं। अश्वघोष लिखते हैं- जन्म और मृत्यु का क्षय करके या तो वह §बुद्ध§ शीघ्र ही घर आयेगा या प्रयत्नशील और असफल होकर मृत्यु को प्राप्त होगा।[1] जरा-मरण का विनाश करने की इच्छा से वन में रहने का निश्चय याद रखते हुए उस §बुद्ध§ ने नगर में प्रवेश किया।[2] बुद्ध जी ने अपने पिता से कहा "मोक्ष के लिए परिव्राजक होना चहता हूँ।[3] इस,पकार हम देखते हैं कि अश्वघोष कथानक के अनुरूप

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 6/52 §बुद्धचरितम् §

2. श्लोक संख्या 5/23 § बुद्धचरितम्§

3. श्लोक संख्या 5/28 §बुद्धचरितम्§

दार्शनिक तत्त्वों का स्पष्ट उल्लेख करते हैं। चार्वाक दर्शन का विशद विवेचन बुद्ध-चरितम् में प्राप्त है।[1] सौन्दरनन्द में भी बौद्ध दर्शन सम्मत निर्वाण का उद्धरण प्राप्त है।[2] अश्वघोष को उपनिषद् के ज्ञान का साक्ष्य सौन्दरनन्द में प्राप्त है। अश्वघोष सौन्दरनन्द में श्वेताश्वर उपनिषद् के दु:ख की मीमांसा को स्पष्ट करते हैं।[3] इस प्रकार हम देखते हैं अश्वघोष प्रथम कवि हैं जिन्होंने दार्शनिक तत्त्वों को कथानक के अनुरूप बहुलता से प्रयुक्त किया है, किन्तु ज्ञातव्य है कि वे स्वाभाविकता तथा रस प्रस्रवण का हनन कहीं भी नहीं करते हैं। उनके काव्य में कहीं भी आलङ्कारिकता का प्रभाव और दुरूहता का प्रवेश नहीं दिखलायी पड़ता है। वे बहुज्ञताज्ञापन के लोलुप नहीं लगते हैं।

कालिदास, अश्वघोष के उपरान्त सुकुमार लेखन के कवि के रूप में संस्कृत-काव्य लेखन के रंगमंच पर अवतरित होते हैं। यह सत्य है कि कालिदास दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित थे, परन्तु उन्होंने कहीं भी काव्य को दर्शन के भार से दुरूह एवं बोझिल नहीं बनाया है। उन्होंने रस एवं स्वाभाविकता की मर्यादा का सदैव पालन किया। उनके काव्य में दर्शन की जो भी झलक आती है वह नितान्त स्वा-

---

1• श्लोक संख्या - 9/54 - 67 (बुद्ध चरितम्)

2• श्लोक संख्या - 16/28,29 (सौन्दरनन्द)

3• श्लोक संख्या - 16/17 (सौन्दरनन्द)

भाविक रूप से निरूपित होती है और पाठक को हृदयाह्लादक ही बन जाता है। जहाँ भी आवश्यकता आ पड़ा है वहाँ पर कालिदास अपनेदार्शनिक पाण्डित्य का प्रदर्शन कर डालते हैं। निम्न देव स्तुति में ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण देखा जा सकता है। हे भगवान्! सृष्टि के पहले एक रूप धारण करने वाले, सृष्टि -प्रवृत्ति-काल में क्रम से सत्त्व, रजस्, तमस् गुणों को अधिष्ठित कर ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिमूर्तिरूप उपाधि धारण करने वाले आप को अनेक प्रणाम। हे प्रजापति ! आप अग्नि आदि पितारों के पिता है, इन्द्रादि देवों के भी देव हैं। मायाबल पर पुरुष से भी परे हैं और जगत् की सृष्टि करने वाले मरीचि आदि प्रजापतियों के भी सृष्टिकर्ता है।[1] पहले संसार को सृष्टि करते हुए फिरसंसार का संहार करने वाले, इस प्रकार तीनप्रहारों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश में अपने को विभक्त करने वाले तुमको नमस्कर।[2] कालिदास स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं कि ब्रह्मा सृष्टि का निमित्त कारण है।[3] ब्रह्म स्वयंम्भूत है।[4] परब्रह्म विकारहीन है।[5] साङ्ख्य का गुणत्रय विवेचन,[6] मीमांसा का यज्ञानुष्ठान[7], सगुण उपासना[8], परलोक विचार[9] आदि कालिदास को कृतियों में सुलभ है। इसप्रकार हम देखते हैं कि कालिदास अपनी कृतियों में दार्शनिक तत्त्वों काप्रयोग यत्र-तत्र करते रहे हैं।

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 2/4,14 "कुमारसम्भवम्"
2. श्लोक संख्या - 10/16,27 "रघुंवंशम्"
3. श्लोक संख्या - 2/5,6 "कुमारसम्भवम्"
4. श्लोक संख्या - 2/10 "कुमारसम्भवम्"
5. श्लोकसंख्या-2/10"कु0संभव
6. वही -10/16 "रघुवंश"
7. वही -4/46,3/44,1/26 "रघुवंशम्"
8. वही -10/7,60"रघुवंश"

मध्य काल में पाण्डित्य-प्रदर्शन की उग्र भावना ने काव्य की नैसर्गिकता को दबाकर कृत्रिम रूप प्रदान कर दिया । इस समय के काव्य सामन्ती विलासिता के आदर्श बन गये। इस परम्परा के कवियों में मुख्य रूप से भारवि, भट्टि, माघ, मङ्खक, श्रीहर्ष, रत्नाकर, भर्तृहरि, राजशेखर आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। अन्य ग्रन्थकार भी दार्शनिक लेखन में प्रवीण थे जैसे, विशाखदत्त, बुद्धघोष, शिवस्वामी हरिश्चन्द्र आदि। बुद्धघोष की पद्यचूड़ामणि, शिवस्वामिन् की कप्फणाभ्युदय, हरिश्चन्द्र की धर्मशर्माभ्युदय, विशाखदत्त और भवभूति की कृतियाँ दार्शनिक छवि से अलङ्कृत हैं।

बाण भट्ट ने वेद-वेदाङ्गों का सम्यक् अध्ययन किया था। हर्षचरित में न्याय की प्रमाण-गोष्ठी[1], कादम्बरी में मन की चञ्चलता[2], जैन दर्शन का अहिंसा सिद्धान्त[3], बौद्ध का सर्वास्तिवाद[4], आदि का बाणभट्ट की कृतियों में स्पष्ट उल्लेख है। विशाखदत्त ने उपनिषद् और न्याय दर्शन का विशद अध्ययन किया था।[5]

---

1. श्लोक संख्या - 3/38 (हर्षचरितम्)
2. अनुच्छेद पृष्ठ 203 (कादम्बरी)
3. अनुच्छेद पृष्ठ - 102 (कादम्बरी)
4. अनुच्छेद पृष्ट - 102 (कादम्बरी)
5. श्लोक संख्या - 5/10 (मुद्राराक्षस)

भवभूति मीमांसा, न्याय , वेद, उपनिषद् के ज्ञाता थे।[1] भर्तृहरि वेदान्त में पारङ्गत थे। उन्होंने वैराग्य शतक लिखा । राजशेखर साङ्ख्य , योग, वैशेषिक, लोकायत, बौद्ध, अर्हत्, मीमांसा, वेदान्त आदि के तत्त्वों के मर्मज्ञ थे। उनकी दार्शनिकता की झलक काव्य मीमांसा में प्राप्त होती है।[2] संस्कृत में प्रतीकात्मक रूपक तो पूरी तरह दर्शन की भित्ति पर लिखे गये हैं जिनमें पात्र चेतन प्राणी या मनुष्य नहीं अपितु दार्शनिक भाव-पदार्थ हैं।

अन्ततः हम देखते हैं कि बृहत्त्रयी के कवि दर्शन के पण्डित थे, जिसका प्रयोग उन्होंने अपनी कृतियों में बहुलता से किया है। अथ, संस्कृत कवियों को तुलना में बृहत्त्रयी के ये कवि अपने महाकाव्यों में दार्शनिक तत्त्वों के सन्निवेश में किसी से पीछे नहीं रहे, यद्यपि ये दार्शनिक तत्त्वों से विधिवत् परिचित थे ।भारवि, माघ, श्रीहर्ष ने दार्शनिक तत्त्वों को उत्तरोत्तर रूप से अधिक प्रयुक्त किया है। श्री हर्ष ने तो अपने ग्रन्थों को दर्शन का आकर ग्रन्थ ही बना डाला है।

---

1. श्लोक संख्या -1/8, 3/47, 2/92, 6/6 "उत्तररामचरितम्"
2. अनुच्छेद पृष्ठ - 35-41 (काव्य मीमांसा)

0 0 0 0 0 0 0
0 0 0 0 0
0 0 0
0

तृतीयोऽध्यायः

किरातार्जुनीयम् महाकाव्य में दार्शनिक तत्त्व
(भूमिका)

संस्कृत-महाकाव्यों की लेखन परम्परा और अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के निर्देशों के आधार पर आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के लक्षणों का निर्धारण किया है। उन्होंने आदिकवि वाल्मीकि, कालिदास, अश्वघोष, भरवि, श्रीहर्ष, माघ आदि महाकवियों की कृतियों का अध्ययन किया और स्पष्ट किया कि महाकवियों का वर्ण्य-विषय अमुक अनुबन्धों से सन्नद्ध होगा। विश्वनाथ ने निर्धारित किया कि- महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए। महाकाव्य का आरम्भ आशीर्वाद, नमस्कार अथवा वस्तु के निर्देश से होना चाहिए। महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा इतिहासातिरिक्त हो सकता है। कथानक का उद्देश्य चतुर्वर्ग-फल-प्राप्ति होना चाहिए। कथानक का नायक चतुर और उदात्त हो। नगर, समुद्र, पर्वत, नदी, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उद्यान, जलक्रीड़ा, मधुपान, उत्सव, संयोग, वियोग का वर्णन होना चाहिए। युद्ध, मन्त्रणा, दूतप्रेषणादि से चरितनायकों का उदय दिखाया जाना चाहिए। महाकाव्य अलंकारों से सज्जित हो, उसका कथानक संक्षिप्त न हो। रसभाव, कर्णप्रिय छन्द, सन्धियोजना, लोकरंजक वृत्तांत आदि महाकाव्य में होना चाहिए। वस्तुत: उपर्युक्त तथ्यों का सम्मिश्रण वाल्मीकि, कालिदास, अश्वघोष, भारवि आदि की कृतियों में पूर्णतया प्राप्त है और विश्वनाथ ने इसे पूर्णतया महाकाव्य के लक्षणों में परिगणित किया है। परन्तु विश्वनाथ ने पाण्डित्य-प्रदर्शन को महाकाव्य के लक्षण के रूप में नहीं स्वीकार किया है, जबकि इन महाकवियों के महाकाव्यों में यत्र-तत्र दार्शनिक तत

का प्रयोग प्राप्त है। मध्यकाल में जब भारविने सुकुमार शैली के स्थान पर अति आलंकारिक शैली का प्रयोग किया, तो उन्होंने महाकाव्य-लेखन-परम्परा में पाण्डित्य-प्रदर्शन को भी मानो महाकाव्य-लेखन-परम्परा के लक्षण के रूप में स्थान दिया। उनकी कृति "किरातार्जुनीयम्" में पाण्डित्य-प्रदर्शन के निमित्त दार्शनिक तत्त्वों का प्रचुर प्रयोग है। उल्लेखनीय है कि अनुवर्ती महाकवि माघ और श्रीहर्ष ने भी दार्शनिक तत्त्वों के प्रयोग पर विशेष बल दिया है। वस्तुतः भारवि और उनके अनुवर्ती महाकवियों माघ एवं श्रीहर्ष के पाण्डित्य-प्रदर्शन को विशिष्ट रूचि के कारण दार्शनिक तत्त्व महाकाव्य के लक्षण के रूप में "सिद्धान्तोऽनुमिषति व्यवहारः" के न्याय से स्वीकार किया जा सकता है। एतद्प्रकारेण किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् और नैषधीयचरितम् महाकाव्यों में दार्शनिक तत्त्वों के अध्ययन एवं तत्समीक्षा का अच्छा विषय प्राप्त है।

भारवि ने दार्शनिक तत्त्वों का प्रयोग कई रूपों में काव्य की धारा में अवतरित किया है। कहीं-कहीं पर इन्होंने दार्शनिक तत्त्वों को सीधे लिख डाला है तो कहीं-कहीं पर अलंकारों के सम्प्रयोग से युक्त रूप में प्रयुक्त किया है। कहीं पर अवसरानुकूल उपदेशाभिकथन रूपमें प्रयुक्त किया है तो कहीं पर ईश वन्दना, प्रशस्ति में उन्हें प्रयुक्त किया है। कहीं-कहीं पर तो सूक्ष्म रूप में संकेतित कर दिया है और कहीं पर मात्र दार्शनिक सिद्धान्त का वातावरण सा रूप वर्ण्य विषय में पैदा किया है।

भारवि के काव्य में हम अधोलिखित दार्शनिक तत्त्वों का अवलोकन कर सकते हैं-

सांख्य -दर्शन

सत्त्व, रजस्, तमस् गुणों का वर्णन

सांख्य दर्शन में वर्णित है कि सत्त्व, रजस्, तमस्गुण परस्पर विरोधी हैं और सहयोगी भी। वे एक साथ सर्वदा अविच्छिन्न युक्त रहते हैं, उनमें एक भी गुण बिना दूसरे की सहायता के कार्य नहीं कर सकता है। सृष्टि के पूर्व तीनों गुण साम्यवस्था में रहते हैं अर्थात् वे अस्फुट रूप से अव्यक्त पिण्ड के रूप में रहते हैं। यही गुणों की साम्यावस्था सांख्य की "प्रकृति" है। जब उनमें से एक के प्रबल हो जाने पर दूसरे गुणों का सहयोग होता है तब सृष्टि या परिणाम होता है। इन तीनों गुणों की समानुकूलता प्रकृति के विकास का कारण है।[1] इस दार्शनिक तथ्य का सम्प्रयोग भारवि के निम्नलिखित प्रसंग में देखा जा सकता है। भारवि लिखते हैं कि दुर्योधन अनासक्त भाव से त्रिवर्ग-धर्म, अर्थ, काम का सेवन करता है। ये त्रिवर्ग परस्पर में संघर्ष को नहीं प्राप्त करते हैं, प्रत्युत एक दूसरे के सहयोग से दुर्योधन के अभ्युदय में सहयोग करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये परस्पर मित्र बन गये हैं।[2] भारवि ने यद्यपि स्पष्टतः सांख्य के उपर्युक्त सिद्धान्त को उद्धृत नहीं किया गया है, किन्तु उनके द्वारा वर्णन में सांख्य के उपर्युक्त सिद्धान्त की समता लायी गयी है। त्रिवर्ग में - धर्म-सत्त्व गुण सम्पन्न है क्योंकि उसमें लघुता (हल्कापन), प्रकाशकता एवं

1- अन्योऽन्याभिभवाश्रयजनन मिथुन वृत्तयश्च गुणाः। (सांख्यकारिका 1/12)

2- श्लोक संख्या 1/10 (किरात०)

इष्टता (आनन्दरूपता) पायी जाती है। अर्थ रजोगुणप्रधान है, क्योंकि अर्थ में रजोगुण की विशिष्टताएँ व्याप्त हैं। अर्थ शारीरिक और मानसिक रूप से धारक के लिए असुरक्षा के कारण कष्टकारी होता है। अर्थ मादक एवं व्यसनपूर्ण होता है और मन को चंचल बनाता है। काम तमोगुण प्रधान होता है। कामातिरेका बुद्धि जड़ अन्तत: अवसादपूर्ण होती है, किन्तु वे दर्शाते हैं कि इन तीनों गुणों के विपरीत स्वभाव सम्पन्न होने पर भी दुर्योधन उनको परस्पर सहयोगात्मक बनाकर अपनी प्रगति (अभ्युदय) कर रहा है। दुर्योधन प्रकृति का प्रतिरूप माना जा सकता है जिसमें पि परिणाम (सृष्टि जनक) कार्य हो रहे हैं। जब वह धर्म करता है तब उस समय अर्थ और काम उसके मार्ग में अवरोधक नहीं होते हैं अर्थात् वे सहकारी भाव से आ जाते हैं और उसकी धर्मजनक सत्त्वात्मक सृष्टि सफल हो जाती है। इसी प्रकार दूसरे गुण भी सफल होते हैं। प्रकृति के प्रतिरूप दुर्योधन की प्रगति गुणों के सहकारी भाव के कारण सफल है।

इस प्रकार का सांख्य सिद्धान्त द्वादश सर्ग के पन्चम श्लोक में देखा जा सकता है। वहाँ पर कवि ने लिखा है कि "सत्त्व गुणाधृति रजस्तथी न हत: स्म तस्य हतशक्तिपेलवे"।[1] रजोगुण और तमो गुण ये दोनों क्षीणी शक्ति होने के कारण उनके महान् सत्त्व को भी नष्ट न कर सके अर्थात् अर्जुन की तपश्चर्या और अधिक ऊर्जस्विनी हो गयी क्योंकि रजोगुण ने उसके कार्य में उत्साह को न तो कम किया और न ही तमोगुण के आलस्य का आधान किया। वस्तुत: दोनों ने

- - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या -12/5 "किरात0"

उसके सत्त्व गुण के विकास में सहयोग ही प्रदान किया।

सांख्यदर्शन में सत्त्व गुण की व्याख्या इस प्रकार की गयी है-सत्त्वगुण प्रकाश स्वरूप होता है, वह निर्मल, श्वेत वर्ण होता है, वह ऊर्ध्वगामी होता है। तथा उत्साही होता है। सांख्य के इस गुण का निर्धारण एवं तद्व्याख्या का अवतरण 17/48 श्लोक में किया गया है। भारवि लिखते हैं कि भगवान् शंकर शस्त्राशस्त्र प्रहार से सत्त्वगुण में स्थित तथा तपस्या एवं पराक्रम द्वारा प्राप्त प्रताप से युक्त अर्जुन को निर्मल आकाश में स्थित सूर्य को विश्वकर्मा की तरह छीलने लगे।[1] अर्जुन की तपस्या सत्त्वगुण प्रधान है, इसलिए अर्जुन में पराक्रम का सम्प्रवेश होसका है। परक्रम उत्साह स्वभाव के कारण सत्त्वगुणसम्पन्न है। तपस्या ऊर्ध्वगामिनी स्वभाव की होती है, वह नैर्मल्य प्रदान करने के कारण श्वेत वर्ण होती है।

इस महाकाव्य में सत्त्वगुण का निरूपण भी मिलता है। इन्द्र अर्जुन को उपदेश देते हैं कि "चित्तवानसि कल्याणी सत्त्वां नोतल्पास्थिता" तुम्हारा मन शुद्ध है जो तुममें मंगलमयी बुद्धि का विकास हुआ है।[2] सत्त्वगुण प्रधान होने पर मन का स्वरूप शुद्धात्मक हो उठता है, बुद्धि निर्मल तथा प्रकाशक हो जाती है, उसके कार्य ऊर्ध्वगामी होते हैं।

---

1. श्लोक संख्या- 17/48 "किरात"
2. श्लोक संख्या -11/14 "किरात0"

बुद्धि का वर्णन

सांख्य में बुद्धि की व्याख्या दी गयी है कि बुद्धि का स्वाभाविक धर्म है स्वतः अपने को तथा दूसरी वस्तुओं को प्रकाशित करना। यद्यपि रजस् और तमस् की अपेक्षा सत्त्व की अधिकता ही बुद्धि में रहती है तदपि उसके परिणाम में न्यूनाधिक्य रहता है। जब बुद्धि में सत्त्व की अधिकता रहती है तब उसमें सात्त्विक बुद्धि के फल होते हैं- धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य। परन्तु जब तमस् का आधिक्य रहता है तब तामसिक बुद्धि से अधर्म, अज्ञान, आसक्ति एवं अशक्ति की वृद्धि होती है। सांख्य एवं वेदान्त दर्शन में वर्णन है कि बुद्धि आत्मसाक्षात्कार का प्रमुख साधन है, किन्तु बुद्धि पर अहंकारादि का आवेष्टन न हो। प्रस्तुत दार्शनिक तत्त्व का सम्मिश्रण भारवि ने दर्पण से बुद्धि की उपमा द्वारा युधिष्ठिर के अभिकथन में प्रयुक्त किया है। युधिष्ठिर का कथन है "जिस प्रकार मलिनता से मुक्त (निर्मल) लोह काष्ठादि सामग्रियों से निर्मित चित्ताकर्षक और मंगलकारी दर्पण में रूप का प्रतिबिम्ब स्वच्छ दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार उन्हें (युधिष्ठिर को) वार्तालाप में भीमसेन की बुद्धि लगी।[1] भीमसेन की बुद्धि सत्त्वगुण सम्पन्न होने के कारण मलिनता से रहित है और मंगलकारी है। उसकी बुद्धि इतनी निर्मल हो चुकी है कि दर्पण की भाँति स्वकीय रूप को देख सकता है। अर्थात् आत्माभीष्ट का चिन्तन कर सकता है। बुद्धि में चैतनिक स्वभाव सत्त्वगुणाधिक्यवशात् सम्भव होता है।

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. अपवर्जितविप्लवे शुचौ हृदयग्राहिणि मङ्गलास्पदे ।
विमला तव विस्तरे गिरां मतिरादर्श इवाभिदृश्यते ।। "किरा02/27"

भारवि ने दर्शाया है कि "जिस तरह सूर्य उदय होने के लिए,प्रकाशमान सुमेरु के शिखरों को पीछे छोड़ देता है फिर क्रमशः अन्धकार उन्हें व्याप्त कर लेता है ठीक उसी प्रकार अर्जुन अभ्युदय के लिए अनेक विध बुद्धि चातुर्य से प्रसन्न रहने वाले अपने चारों भाइयों से जिस समय अलग होने लगे उस समय दुःख के द्वारा उत्पन्न होने वाले शोक ने धीरे-धीरे इन्हें घेर लिया।[1] वस्तुतः इस संसार की त्रिगुणात्मक सत्ता है। तीन गुणों सत्त्व,रजस् और तमस्-गुणों का नैरन्तर्य एवं अन्योनाश्रित प्रवाह भी है। हर्ष एवं विषाद का क्रम शाश्वत है। इसी क्रम में जगत् के सारे क्रिया-कलाप नियन्त्रित हैं।भारवि की यह अन्वेषक बुद्धि अकाट्य एवं दर्शन विषया है कि अर्जुन के सत्त्वगुणोत्साह से भरित अन्तःकरण तमोगुणाबद्ध दुःख प्रकटित होने लगा । यहाँ पर सांख्य दर्शन के त्रिगुणाबद्ध विधान का सम्पुट उपलब्ध है, किन्तु बुद्धिसर्वोत्कृष्ट है जो तमोगुण की बाधकता को समाप्त करती है और ज्ञानप्राप्ति के योग्य बना देती है। चारों भाइयों का बुद्धि चातुर्य इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । बुद्धि ही आत्मोन्नति (अभ्युदय) का साधन है। बुद्धि जब सत्त्वगुणसम्पन्न होती है,तब वह प्रकाशक हो जाने के करण ज्ञान एवं आनन्द का माध्यम बनती है,वस्तुतः चारों पाण्डुपुत्रों का बुद्धि चातुर्य सत्त्वगुण सम्पन्न होने के कारण प्रसन्नता का जनक हो गया है।

- - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 3/32 "किरात0"

अहङ्कार का निरूपण

बुद्धि का "मैं" और "मेरा" यह अभिमान का भाव ही अहंकार है। इसी अहङ्कार का वशवर्ती होकर मनुष्य मिथ्याभ्रम में पड़कर अपने को कर्ता (काम-करने वाला) कामी (इच्छा करने वाला) और स्वामी (वस्तुओं का अधिकारी समझने लगता है। सर्वप्रथम इन्द्रियाँ विषयों का प्रत्यक्ष-ज्ञान करती हैं और मन उन पर विचार करने लगता है। अन्ततः विचार में उसे आत्मसात् करता है कि यह मेरा है और मेरे लिए है। यही अहंकार सांसारिक क्रिया-कलापों की जड़ हो जाता है मनुष्य राग-द्वेष, लोभ माया आदि का शिकार हो जाता है, सांसारिक बन्धन में पूर्णतः आबद्ध हो जाता है आत्मसाक्षात्कार की दिशा से पराङ्मुख हो जाता है। इसीलिए कहा गया है कि आत्म-साक्षात्कार के अभिमुख होने के लिए अहङ्कार का परित्याग तथा करुणा, मुदिता, मैत्री, उपेक्षा जैसे भावों को मन में उद्भूत किया जाना आवश्यक है।

भारवि परम दार्शनिक थे। उन्हें सांसारिक बंधन की जड़ अहंकार एवम् उसके निराकरण का अच्छा ज्ञान था। वे अहङ्कार से पृथक् रहने के लिए मैत्री, करुणा, मुदिता आदि भावों को उद्भूत करना महत्वपूर्ण समझते हैं। इन भावों के उद्भूत हो जाने पर व्यक्ति को सांसारिक बंधन पतनगामी न बनाकर ऊर्ध्वगामी बनाते हैं। इसीलिए जो सुयोधन ने अपनी (राज्यकीय) उन्नति के लिए अहंकार का परित्याग का प्रदर्शन करता है अपने कर्मचारियों के साथ मैत्री भाव बढ़ाता है

मित्रों का उदारतापूर्वक आदर करता है; कुटुम्बियों को साक्षात् राज्याधिकारी की भाँति आदर देता है और मुदिता भाव व्यक्त करता है।[1]

वस्तुत: भारवि का प्रदर्शन है कि चाहे सांसारिक उन्नति की अभीप्सा हो या आध्यात्मिक उन्नति की अभीप्सा, व्यक्ति को सुयोधन की भाँति अंहकार का परित्याग कर अपने सामाजिक (सांसारिक) सम्बन्धों में मैत्री, मुदिता, करूणा, उपेक्षा आदि भावों का परिपालन करना चाहिए। इस प्रकार उसके सांसारिक अथवा आध्यात्मिक लक्ष्य सुसाध्य हो सकते हैं, उसे राग-द्वेष, लोभ-माया जैसे विकार ग्रस्त नहीं कर सकते हैं और सात्विक गुणों का मन में वास होने पर बुद्धि ऊर्ध्वगामी होती है।

इन्द्रिय-निरूपण

मन, इन्द्रिय चन्चल स्वभाव के होते हैं। वे भोगेच्छा से विषयों की ओर आकर्षित होते हैं। कार्य-साधना में ये बाधक होते हैं अत: लक्ष्य - प्राप्ति के निमित्त इनका निग्रह आवश्यक बताया गया है। भारवि लिखते हैं कि "चिरकाल तक सम्पत्तियों का वशीकरण कहाँ और उन्मार्गी घोड़ों की भाँति दुष्ट इन्द्रियों को अपने वश में करना कहाँ ? क्योंकि सम्पत्तियाँ शरत्कालीन मेघ की तरह

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सखीनिव प्रतियुजोऽनुजीविन: समानमानान्सुदश्च बन्धुभि: ।
स सन्ततं दर्शयते गतस्मय: कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ।।

"किरात0 1/10"

चन्चल और अनेक छिद्रों से पूर्ण है। चन्चलेन्द्रिय पुरूषों के द्वारा उनकी रक्षा होना सामर्थ्य से बाहर है।[1] सम्पत्तियाँ विषय-वासना रूपा है और विषय-वासना के संसर्ग में इन्द्रियों की आवश्यकता सुनिश्चित होती है। अनियन्त्रित इन्द्रियाँ प्रतिगामी घोड़ों की भाँति कष्ट रूपा होती है। अनियन्त्रित इन्द्रियाँ प्रतिगामी घोड़ो की भाँति कष्ट रूपा होती है। लक्ष्य साधना में वे साधक का सहयोग नही करती हैं, अपितु विघ्न-बाधायें ही उत्पन्न करती हैं। लौकिक धन वैभव स्थायी नही होते हैं तथा यदि क्षणमात्र स्थायी हुए तो उनके विकार -दोष दर्शित होने लगते हैं। भारवि स्पष्ट करना चाहते हैं जिस प्रकार शरत्कालीन मेघों से वर्षा की कोई आशा नही की जा सकती है उसी प्रकार विषयों से सुख- साधन की आशा करना व्यर्थ है। भारवि आगे लिखते हैं कि उसने "युधिष्ठिर" ने धैर्य के कारण जल की राशि समुद्र को जीत लिया। फिर वेगवान् मन में असामयिक क्षोभ उत्पन्न करने से उसे बढ़ने का अवसर क्यों प्रदान कर रहे हैं।[2] इन्द्रियों को वश में करना कोई खिलवाड़ नहीं है जैसा कि योगी साधकों का अभिज्ञान है। किन्तु कार्य-साधना सम्पन्न करनी ही होती है अत: इन्द्रियों का क्रमिक निग्रह करना होता है इस तथ्य को भारवि अच्छी तरह स्पष्ट कर देना चाहते हैं। वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि मन में अतिशय

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 2/39 (किरात०)

2. श्लोक संख्या- 2/40 (किरात०)

स्खलन की सम्भावना होती है क्योंकि मन प्रभूत चंचल होता है, अत: कार्य साधना की प्राप्ति से पूर्व मन प्रभूत चंचलता में शिथिल कदापि नहीं छोड़ना चाहिए। भारवि मन-निग्रह के परिणाम पर प्रकाश डालते हैं कि मन-निग्रह से दु:साध्य लक्ष्य को सिद्ध किया जा सकता है। जिस तरह से धैर्य द्वारा युधिष्ठिर ने प्रबल समुद्र को वश में कर लिया था। वे आगे प्रकाश डालते हैं कि इन्द्रिय निग्रह मात्र शास्त्र ज्ञान से सम्भव नहीं है, अपितु उस ज्ञान का अनुशीलन अपरिहार्य है। शास्त्रज्ञ को अनुशीलनार्थ वेगवान् मन में उत्पन्न काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद अहंकार को वशवर्ती करना होता है।[1] अन्यथा सांसारिक धन-वैभव का आकर्षण उनके शास्त्र-ज्ञान को सफल नहीं होने देता है। अर्जुन को इन्दकील पर्वतपर तपस्या के लिए विदा करते समय द्रौपदी भी उन्हें आत्म-संयम एवं अप्रमाद का पाठ पढ़ाती है।[2]

भारवि का कथन है कि तप: साधना में इन्द्रिय निग्रह आवश्यक है। जब इन्द्रिय निग्रह रहता है, तब सात्त्विक उत्प्रेरणाओं का विकास मन में होता है। आत्म-ओज प्रकट होने लगता है। वस्तुत: आत्म-साक्षात्कार के मार्ग की प्रशस्ति के लिए तप: साधना अपरिहार्य है। कवि प्रकारान्तर से अर्जुन की तप:-साधना से इस तथ्य की पुष्टि करना चाहता है।

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 2/41 "किरात0"
2. "मा गाश्चिरायैकचर: प्रमादं वसन्नसम्बाधशिवेऽपि देशे।"

"किरात0-3"

प्रकृति-पुरूष की अवधारणा

साङ्ख्य दर्शन में पुरूष(आत्मा) को निर्गुण एवं निराकार व्यक्त किया गया है। वह सुख-दु:ख से परे है। वह संसार के बंधनों से मुक्त है, किन्तु वही विशिष्ट आत्मा अज्ञान वश संसार के बन्धनों में पड़कर सगुण एवं साकार हो जाता है, अर्थात् प्रकृति के सम्पर्क में आकर वह पुरूष संसार को अपना समझने लगता है और विषय-विकारों के सम्पर्क के कारण सुखी-(दु:खी होने का अनुभव करता है। इसी दार्शनिक तत्त्व को भारवि अपने विषय में समाहित करते हैं। वे लिखते हैं कि जो पुरूष गुणों को प्राप्त करता है और तदनन्तर उसे यों हो नष्ट कर डालता है ऐसे पुरूष की अपेक्षा निर्गुणी पुरूष कुछ अच्छा होता है।[1] वस्तुत: कवि संकेत करना चाहता है कि प्रकृति के सम्पर्क के कारण पुरूष का बन्धनयुक्त होना तथा बन्धन से विमुक्त होने की चेष्टा न करना पुरूष के लिए सुन्दर बात नहीं है। जो पुरूष प्रकृति के सम्पर्क में न आकर निर्गुण रहा वह तो सर्वथा श्रेष्ठ है।

पुरूष चैतन्य स्वरूप है। प्रकृति दर्शनार्थ(स्वयं के देखे जाने के लिए) पुरूष का आश्रय लेती है। प्रकृति जड़ है, किन्तु पुरूष के सम्पर्क वश वह चैतन्यवत् हो उठती है। पुरूष के अति सानिध्य के कारण प्रकृति में सत्त्वगुण का प्राबल्य एवं तेजस्विता होती है। इस तथ्य को दृष्टि मे रखकर भारवि लिखते हैं कि भगवान् शंकर शस्त्राशस्त्र प्रवर से सत्त्व-गुण में स्थित तथा तपस्या और पराक्रम

---

1. श्लोक संख्या- 15/15 (किरात0)

के द्वारा प्राप्त प्रताप से युक्त अर्जुन को, निर्मल आकाश में स्थित सूर्य को विश्वकर्मा की भाँति छीलने लगे।[1] द्रष्टव्य है कि भगवान् शंकर के अवेश सान्निध्य के कारण अर्जुन में प्रखर ओज और शौर्य का प्रदुर्भाव हो गया। अर्जुन अत्यधिक क्रियाशील हो गया है। वस्तुत: भगवान् शंकर पुरूष"आत्मा" के रूप में तथा अर्जुन प्रकृति के रूप में ग्राहीतव्य हैं। तदैव विश्वकर्मा पुरूष और सूर्य प्रकृति के रूप में परिकल्पित किये जा सकते हैं। कवि का स्पष्ट रूपेण संकेत है कि अर्जुन एवं सूर्य की कार्यशीलता एवं चैतन्यता स्वस्फूर्त नहीं हैं। अपितु अभीष्ट शंकर एवं विश्वकर्मा के सान्निध्य वश है। कवि की दार्शनिक प्रयुक्ति को पुष्टि इस तथ्य से पूर्ण रूपेण हो जाती है कि अर्जुन एवं सूर्य में प्रकट गुण सत्त्व गुण है न तमो एवं राजो गुण। क्योंकि पुरूष के सान्निध्य से प्रकृति में सत्त्वगुण ही विकसित होता है।

भगवान् शंकर एवम् अर्जुन के मध्य विवाद का कारण-भूत सूकर की स्थिति को महाकवि भारवि ने संसार के बन्धन रूप जन्म-मरण को भाँति वर्णित की है। वे भगवान् शंकर को पुरूष (आत्मा) के रूप में तथा अर्जुन को प्रकृति के रूप में ग्रहण करते हैं। सांसारिक बन्धनों के उच्छेदक भगवान् शंकर और अर्जुन दोनों का युद्ध में सन्नद्ध होना, प्रकृति और पुरूष के सांसारिक बन्धन से विमुक्त होने के

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या -17/48 (किरात0)

लिए, एकाकार होने की भाँति है। कवि इस तथ्य को व्याकरणशास्त्र की भाषा में समझाता है । वे भगवान् शंकर को प्रकृति ﴾धातु आदि﴿-पुरूष- के रूप में,अर्जुन को प्रत्यय तथा सूकर को अनुबन्ध के रूप में स्थापित करते हैं।[1] जिस प्रकार व्याकरण शास्त्र के अनुसार प्रकृति और प्रत्य के सम्मिलन ﴾योग﴿ तथा प्रत्यय में उपस्थित अनुबन्ध के लोप होने पर एक सफल अर्थ को बोध होता है ,उसी प्रकार सांसारिक बंधन रूप सूकर के विनाशोपरान्त अर्जुन को शिव की कृपा की प्राप्ति अर्थात् प्रकृति को पुरूष के दर्शनोपरान्त कैवल्य प्राप्त हो सकता है। यहाँ पर सूकर की नियति विनाशार्थ है न कि स्थित्यर्थ है। वस्तुत: सांसारिक बंधन भी क्षण-भंगुर और आशाश्वत हैं।

परिणामवाद

सांख्य दर्शन में परिणामवादा का वर्णन प्राप्त है। परिणामवाद की युक्ति में कार्य को देखकर कारण का आभास हो जाता है।[2] भारवि लिखते हैं कि अर्जुन किरतवेषधारी शंकर में किसी परामानव का आभास करता है, क्योंकि उस विशिष्ट किरात में चमत्कापूर्ण अनुष्ठान है। कवि इस दार्शनिक युक्ति को अपनी

- - - - - - - - - - - - - -

1• श्लोक संख्या - 13/19 ﴾किरात0﴿

2• कारणाभावाच्च सत्कार्यम् "सांख्य कारिका-1/9"

भाषा में -सूक्ति के रूप में - लिखता है कि "कतव्यानुष्ठान गुप्त वस्तु के प्रकाशन में समर्थ होता है।"[1] वस्तुत: कवि कार्य के विशिष्ट अभिज्ञान से कारण का अनुमान लगा लेता है।[2]

तत्व-ज्ञान से जीवनमुक्ति का निदर्शन

तत्व - ज्ञान से जीवनमुक्ति की प्राप्ति होती है। सांख्यदर्शन की इस दार्शनिक अवधारणा को परिचय भारवि को विधिवत् प्राप्त है। वे स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि इन्द्र की अप्सराओं को तत्व-ज्ञान का मर्म अच्छी प्रकार से ज्ञात है। जन्म -मरण से छुटकारापाने के लिए काम, क्रोध, मोह, मदादि से पाराङ्मुख मुनियों का तत्वज्ञान जो रजोगुण का विनाशक तथा जल रूप है(अन्त: शान्ति का कारण है) उसे अप्सराओं से सम्पूर्ण नेत्र रूपी अन्जलि से पान कर चुकी है। वस्तुत: कवि व्यन्जित करता है कि तत्वज्ञन के उपरान्त जगत् की बाधाएँ और उसके आकर्षण साधक के लिए नगण्य होते हैं।[3]

- - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 16/19 "किरात"

2. श्लोक संख्या - 16/21 "किरात"

3. श्लोक संख्या 6/41 "किरात"

रजोगुण और तमोगुण तत्वज्ञान के बाधक हैं। इस तथ्य की ओर कवि संकेत करता है और उल्लेख करता है कि अर्थ और काम अवगुणों की जड़ हैं, जो तत्वज्ञान के लुटेरे हैं। वस्तुत: तत्त्वज्ञान की प्राप्ति सत्त्व गुण के अनुशीलन से ही हो सकती है। अर्जुन की तपश्चर्या सत्त्व गुणार्जन के निमित्त ही है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि भारवि सांख्य दर्शन के तत्वों को, किरात0 में अति सुन्दर ढंग से प्रयुक्त करते हैं। वे बुद्धि, मन, अहंकार, गुणत्रय, इन्द्रिय परिणामवाद, प्रकृति का सम्प्रयोग काव्य की धारा में यास्तर ढंग से करते हैं। हम कह सकते हैं कि भारवि सांख्य दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे अपनी विद्वता का प्रदर्शन अपने काव्य-लोक में अति सुन्दर ढंग से करते हैं।

वेदान्त दर्शन

माया-मतिभ्रम का विवेचन

वेदान्त दर्शन को स्थापना में माया सिद्धान्त का विशिष्ट स्थान है। माया ईश्वर की शक्ति है। माया के आवरण के कारण व्यक्ति को वास्तविकता का ज्ञान नहीं हो पाता है। वास्तविक ज्ञान के स्थान पर अन्य वस्तु का भ्रम होता है। दूसरी उद्भासित वस्तु सर्वथा मिथ्या एवम् असत्य होती है। यह माया अथवा मतिभ्रम उसी प्रकार होता है जिस प्रकार कोई बाजीगर जादू का खेल दिखाकर एक ही सिक्के को अनेकों सा दिखा देता है। भारवि इस दार्शनिक तत्त्व का प्रयोग करते हैं। किरातवेषधारी शंकर और उनकी सेना पर अर्जुन अपने सारे युद्ध-कौशल का प्रयोग करते हैं, किन्तु वे पूर्णत: निष्फल रहते हैं। अन्तत: अर्जुन को

किरात और स्वयम् अपने पर भी भ्रम हो जाता है। उसे युद्ध की सारी घटना माया पूर्ण लग रही है। वह अपनी तर्क-बुद्धि से निर्णय करता है कि वह अपनी तर्क बुद्धि से निर्णय करता है कि वह जिस किरात को देख रहा है वह कोई सामान्य किरात नहीं है अपितु किरात-रूप में छपा कोई देवता ही है। वस्तुत: गुप्त देवता ही माया एवं मति भ्रम की उद्भावना है। माया की शक्तियाँ आवरण और आक्षेप से वास्तविकता में अन्य रूप की कल्पना प्रकट है। माया अचिर एवं मिथ्या होती है इस ओर भारवि का संकेत द्रष्टव्य है। अर्जुन प्रतर्क करता है कि कर्तव्यानुष्ठान गुप्त वस्तु का प्रकाशन कर देता है। उसे यह पूर्ण विश्वास है कि आवरण में क्षिप्त रूप अवश्यमेव लक्षित होगा।[1]

पञ्च महाभूतों का प्रयोग

वेदान्त दर्शन की जगत्-सृष्टि में पञ्चमहाभूतों की परिकल्पना है। ब्रह्म से प्रथमत: पन्च महाभूत-पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश-आविर्भूत होते हैं। ईश्वर इन पञ्चभूतों को पञ्चीकरण विधि से प्रयुक्त कर जगत् को सृष्टि विविध रूपों में करता है। इन्द्रकील पर्वत पर तपस्यारत अर्जुन की उपलब्धियों की सूचना इन्द्रकील-वनवासी इन्द्र को निम्न रूप से देते हैं। वे कहते हैं- पन्च महाभूत उस अर्जुन के दास

---

1. श्लोक संख्या - 16/18 "किरात0"

हो गये हैं। पवन देव अनुकूल हो कर उसके लिए सुखकर हो गये हैं।भूमि हरे-भरे तृणों से आच्छादित हो गयी है। आकाश बिना इच्छा के ही सुखकर जल-वृष्टि करता है। अर्जुन ने अपनी गुण-सम्पत्ति से पृथ्वी जल, तेज, वायु, आकाश, इन पञ्च महाभूतों को अनुकूल बना लिया है। भारवि बहुत ही सुन्दर ढंग से दार्शनिक तथ्य (ईश्वर ही जगत् का संचालक है) की व्यञ्जना करते हैं। अर्जुन ने पञ्च महाभूतों को नियन्त्रित करके सृष्टि का संचालन हस्तगत कर लिया है, जबकि यह क्रिया केवल ईश्वर के वश में ही है।

सृष्टि -रचना का निरूपण

वेदान्त -दर्शन का विवेच्य विषय है कि इस सृष्टि का क्रम चौदह भुवनों में प्राप्त है और इन भुवनों की जन्मदात्री एक परम शक्ति है। ब्रह्मा के सभी भुवन उसकी दृष्टि के अन्तर्गत संचालित और नियन्त्रित हैं। सारे भुवन उस परम शक्ति से परिव्याप्त है। इस दार्शनिक तथ्य को भारवि ने उत्प्रेक्षा के द्वारा स्पष्ट किया है। भगवान् शंकर हिमालय के उच्च शिखर पर आसीन होकर चौदहों भुवनों को जीतने वाले तेज से पृथ्वी, समुद्र, आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओं से युक्त सम्पूर्ण विश्व को उदरस्थ बनाते हुए के सदृश दृष्टिगोचर हो रहे थे।[2] यहाँ पर परम

---

1. मरुत: शिवा नव तृणा जगती विमलं नभो रजसि वृष्टिरपाम् ।
   गुण सम्पदा नुगुणतां गमित: कुरुतेऽस्य भक्तिमिव भूतगण: ।।
   "किरात0-6/33"
2. स्थितमुन्नते तुहिनशैलशिरसि भुवनातिवर्तिना ।
   साद्रिजलधिजलवाह पथं सदिगश्नुवानमिव विश्वमोजसा।।
   "किरात0 12/21"

शक्ति के रूप में भगवान् शंकर को निरूपित किया गया है। भगवान् शंकर द्वारा सम्पूर्ण विश्व को उदरस्थ करने से तात्पर्य है कि ईश्वर द्वारा सम्पूर्ण जगत् परिव्याप्त है। भगवान् शंकर के उच्च शिखर पर आसीन होने से लक्षित है कि संसार का कर्ता-हर्ता ईश्वर परम शक्ति से संयुक्त है और उससे ऊपर किसी प्रकार की शक्ति नहीं है। वह अपने तेज अर्थात् मायाशक्ति से पर्वत, समुद्र, आकाश आदि की रचना करता है।

ब्रह्म का विचार

अद्वैत वेदान्त दर्शन में ब्रह्म को दो रूपों में निरूपित कियागया है। प्रथम-सगुण ब्रह्म, द्वितीय-निर्गुण ब्रह्म। सगुण ब्रह्म तटस्थ-लक्षण-सम्पन्न होता है। जबकि निर्गुण ब्रह्म स्वरूप-लक्षण- सम्पन्न होता है। सगुण ब्रह्म ही जगत् की उपाधियों से संयुक्त होता है और वह सविकारी होता है। निर्गुण ब्रह्म में किसी प्रकार का विकार नहीं होता है। जगत्कर्ता, जगतसंहारक उसके तटस्थ लक्षण मात्र हैं और केवल व्यावहारिक दृष्टि से सत्य हैं। जिस प्रकार हम रंगमंच के पात्र को नट के अतिरिक्त अन्य दृष्टिकोण से भी देख सकते हैं और उस स्थिति में वह नट न रहकर एक सामान्य व्यक्ति रहता है, उसी प्रकार जगत् के सभी विशेषण जब सामान्य व्यक्ति की भाँति उस ब्रह्म से हट जाते हैं तो वही ब्रह्म का निर्गुण और वास्तविक रूप होता है। इस ब्रह्म की अवधारणा को भारवि काव्य की धारा में प्रकारान्तर से प्रकट करने की चेष्टा करते हैं। अर्जुन के साथ युद्ध ने भगवान् शंकर की आकृति में विकार गत परिवर्तन दीख रहा है, तदपि अर्जुन के प्रति उन्हें कोई क्रोध नहीं है।

परम पुरूष में विकार कहाँ ? केवल आकार मात्र में यह विषमता है।[1]

यहाँ पर भारवि ने भगवान् शंकर में ब्रह्म के रूपों का दार्शनिक पक्ष भासित कराया है। शंकर भगवान् का शरीर सगुण ब्रह्म के रूप में द्रष्टव्य है। उनके शरीर में सांसारिक विकार परिलक्षित हैं। यह उनका सांसारिक रूप भक्तों की उपासना का माध्यम है। भगवान् शंकर के इस व्यावहारिक रूप में जगत् की उपाधि आरोपित है। ब्रह्म का निर्गुण रूप उपाधि से रहित है, उसमें किसी प्रकार का विकार सम्भव नहीं है। शंकर भगवान् का क्रोधित न होना ही परब्रह्म के निर्गुण पक्ष को स्पष्ट करता है।

ब्रह्म और जीव में केवल माया का भेद है। माया के आवरण के क विच्छेदोपरान्त ब्रह्म और जीव में कोई अन्तर नही रह जाता है। ब्रह्म और जीव एकाकार हो जाते हैं यह स्पष्ट नहीं रह जाता है कि यह जीव है और यह ब्रह्म रूप है। जीव का सतत लक्ष्य रहता है कि उसे जगत्-बन्धन से मुक्ति मिले और ब्रह्म से एकाकार हो। इस दार्शनिक बिन्दु का समावेश भारवि ने अर्जुन और भगवान् शंकर के एकीकरण द्वारा किया है। मल्लयुद्ध के समय यह निर्णय करना बड़ा कठिन

---

1. श्लोक संख्या- 17/23 {किरात0}

था कि यह भगवान् शंकर हैं अथवा अर्जुन । नीचे तपस्वी अर्जुन हैं अथवा चन्द्रशेखर शंकर ? एक-दूसरे के ऊपर स्थित होने पर यह भी पता नहीं चलता था कि यह किरीटी है अथवा अजन्मा ?[1] अर्जुन की तपश्चर्या एवं मल्लयुद्ध एक योगी या भक्त के उस साधन(साधना) को निरूपित करते हैं, जिसके सहारे भक्त ईश्वरप्राप्ति (मोक्ष-प्राप्ति) की चेष्टा करता है। अर्जुन और भगवान् शंकर के सांसारिक शरीर के अभि-ज्ञान का लोप निर्दिष्ट करता है-जीव और परमात्मा के अन्तरकारक मिथ्या जग-तावरण का लोप और फलत: उनका एकाकार होना।

ब्रह्म का स्वरूप-लक्षण बुद्धि एवं मन से परे है, अत: उसे -"नेति -नेति" कहा गया है। निर्गुण ब्रह्म अनिर्वचनीय है। जबकि सगुणब्रह्म जगत् का कर्ता एवंसंहारक है, वह ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर अवस्थित है। महाकवि भारवि ब्रह्म के स्वरूप लक्षण का निरूपण हिमालय पर्वत के माध्यम से अति सुन्दर ढंग से करते हैं। हिमालय के दुस्तर आभ्यन्तर तत्त्व का वर्णन दुरूह पुराणों की सहायता से थोड़ा बहुत किया जाता है। दिगन्त व्यापी इस पर्वत को, जिसमें बहुत से घने-घने जंगल हैं और जो परम पुरूष के सदृश्य अज्ञेय है, केवल ब्रह्मा ही जानते हैं।[2]

- - - - - - - - - - - -

1• श्लोक संख्या 18/9 "किरात०"

2• श्लोक संख्या 5/18 "किरात०"

यहाँ स्पष्ट है कि परब्रह्म (परमपुरुष) का स्वरूप हिमालय की तरह अपारगम्य है। पर ब्रह्म के तत्वों का ज्ञान ब्रह्मा ही जान सकते हैं अर्थात् वह जीव की क्षमता से परे हैं। उसकी तो मात्र अनुभूति की जा सकती है। ब्रह्म दिगन्त व्यापी एवं दुस्तर आभ्यान्तर तत्वों वाला है। दुरूह पुराणों से ब्रह्म के सोपाधिक रूप का थोड़ा बहुत परिज्ञान किया जा सकता है।

दर्शन शास्त्र में कमल की कल्पना आनन्द,ज्ञान,ज्योति आदि के प्रस्फुटन के केन्द्र के रूप में की गयी है। परिकल्पना है कि उन सरोज में ईश-ज्योति का आभास प्राप्त होता है और फलत: आनन्द की अनुभूति होती है। जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में सूर्य की उपस्थिति का आभास होता है, जिस प्रकार खुले कमलपर सूर्य की किरणों के पड़ने से उसमें कान्ति का संचार होता है,उसी प्रकार ईश्वर का आभास होता है- आनन्द की प्राप्ति होती है। इस दार्शनिक पृष्ठभूमि में कवि लिखता है कि जैसे दिन के प्रथम भाग में भगवान् भास्कर के विम्ब से निकल कर दीप्ति विकसित कमलों का आश्रय ग्रहण करती है,वैसे ही अग्नि की चिनगारियों के सुख समान अत्यन्त प्रकाशमान विद्या ने महर्षि व्यास के मुख से निकलकर अर्जुन के मुख का आश्रय ग्रहण किया।[1] यहाँ पर भास्कर (सूर्य) को ब्रह्मवत् लिया जा सकता है और कमल को "चित्तवत्" लिया जा सकता है। दीप्ति द्वारा कमल का आश्रय ग्रहण करना ईश्वर-ज्ञान की प्राप्ति के समान है। महर्षि व्यास से अर्जुन को प्रकाशमान विद्या की प्राप्ति ब्रह्म-बोध के सदृश है।

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोकसंख्या - 3/25 "किरात0"

ईश्वर अवाक्षुष है उसका दर्शन इन भौतिक नेत्रों से नहीं किया जा सकता है। वह केवल ज्ञान के द्वारा समझा जा सकता है और उसकी अनुभूति की जा सकती है। इस दार्शनिक तत्त्व को कवि भगवान् शंकर की विशेषता के ज्ञापन में निरूपित करता है। वह लिखता है भगवान् शंकर त्रिलोचन "त्रिलोकदर्शी" तो हैं किन्तु वे स्वयं अवाक्षुष (ज्ञान के विषय) है। उनके बाण-प्रक्षेप सारपूर्ण हैं अर्थात् उनके कार्य ब गूढ़ एवं मानवीयेतर हैं।[1]

जीव का निरूपण

अद्वैत वेदान्त में जीव को ब्रह्म के अंशावतार के रूप में व्यक्त किया गया है। जीव ब्रह्मरूप हो उठता है, यदि उसके माया जन्य शारीरिक आवरण को हटा दिया जाय। वस्तुत: यह दार्शनिक तथ्य भारवि के इस कथन में स्पष्ट लक्षित होता है कि यह तपस्वी और कृष्ण ये दोनों प्रभु हैं। ब्रह्मा की प्रार्थना से असुरों का विनाश कर प्राणी मात्र की रक्षा के लिए भूमि पर अवतीर्ण होकर मनुष्य के रूप में रहते हैं। वस्तुत: ये दोनों व्यक्ति नर और नारायण के अवतार हैं।[2] यहाँ व्यक्त होता है कि हर प्राणी में ब्रह्म का अंश व्याप्त है। नर और नारायण ब्रह्म के विविध सोपाधिक रूप है।

- -

1· घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं ससारबाणोऽयुगलोचनस्य ।
घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं ससार बाणोऽयुगलोचनस्य ।।"किरात0 15/5

2· श्लोक संख्या - 12/35 "किरात0"

आत्म-साक्षात्कार का सम्प्रयोग

ब्रह्म -ज्ञान एवम् आत्म -साक्षात्कार की आवश्यक भूमियों का निरू-पण भारवि को काव्य की धार में प्राप्त है। वे स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि जन्म और जरा रहित पवित्र और सर्वोत्तम ब्रह्म धाम को चाहने वालों के लिए ब्र पवित्र और सर्वोत्तम ब्रह्म-धाम को चाहने वालों के लिए अज्ञान निर्वतक शास्त्र को तरह इस हिमालय से संसार के बन्धन से मुक्त हो जाने को सद्बुद्धि उत्पन्न होती है। जैसे शास्त्र के अध्ययन से बुद्धि का झुकाव मोक्ष को तरफ हो जाता है, उसी प्रकार इस पर निवास मात्र से बुद्धि सन्मार्ग का अवलम्बन करती है।[1] भारवि उल्लेख करते हैं कि ब्रह्म जन्म और मृत्यु से परे है;वह परम पुनीत और परमधाम है। उसकी प्राप्ति ही जीव का परम लक्ष्य है। संसार के बन्धन से मुक्ति पाने अथवा मोक्ष-प्राप्ति के लिए अज्ञान का नाश अत्यावश्यक है। अज्ञान का नाश शास्त्रानुसशीलन से ही सम्भव है। शास्त्राध्ययन से बुद्धि निर्मल होती है। बुद्धि के निर्मल होने पर जीव के आत्म-साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त होता है। बुद्धि में जब तक अहङ्कारादि विकारों का आवेष्टन बना रहता है, तब तक बुद्धि की निर्मलता सम्भव नही रहती है। संसार को निस्सारता एवं नश्वरता के बोध को

- - - - - - - - - - - - - - - -

1• बीतजन्मजरसं परं शुचि ब्रह्मण: पदमुपैतुमिच्छताम् ।
आगमादिव तमोपहादित: सम्भवन्ति मतयो भवच्छिद: ।।
"किरात0 5/22"

भारवि सद्बुद्धि शब्द के प्रयोग से व्यक्त करते हैं। दर्शनशास्त्र में निर्दिष्ट है कि आत्म ज्ञान का साधन है-काम,क्रोध,अहंकार आदि वृत्तियों का दमन,श्रवण,मनन एवं निदिध्यासन। वस्तुत: इसी तत्त्वज्ञान की ओर संकेत भारवि उपर्युक्त ढंग से करना चाहते हैं।

वेदान्त दर्शन में प्रतिबिम्बवाद की अवधारणा है। जिस प्रकार दर्पण या जल में सूर्य या चन्द्रमा विभिन्न रूपों में भासित होता है,उसी प्रकार अविद्या आवेष्टित अन्त:करण में ब्रह्म विविध रूपों में भासित होता है। इस प्रतिबिम्बवाद की सांकेतिक समता भारवि एक उदाहरण में देते हैं। वे लिखते हैं जिस तरह अशेरी मलिनता से युक्त, लौह काष्ठादि सामग्रियों से सुनिर्मित,चित्ताकर्षक और मंगल कारी दर्पण में रूप का प्रतिबिम्ब स्वच्छ दिखाई पड़ता है उसी तरह प्रमाणयुक्त सुन्दरशब्दयोजना युक्त प्रिय और हितकर वाक्प्रपन्च में सुबुद्धि स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होती है।[1] भारवि ने दर्पण को जिन विशेषताओं को प्रयुक्त किया है वे सभी अन्त:करण की उस स्थिति के लिए आवश्यक होती हैं जिसमें ब्रह्म का स्पष्ट एवं प्रकट सा आभास होता है। रूप का स्वच्छ प्रतिबिम्ब के रूप में उतरने पर दर्पण के मंगलकारी होने से कवि का संकेत है कि अविद्यामुक्त निर्मल अन्त:करण में ब्रह्म के आभासा से अन्त:करण में आनन्द और शान्ति का अनुभव होता है। लौह-काष्ठादि से सुनिर्मित दर्पण से संकेत है कि अन्त:करण के अविद्यानाश के लिए तप,मनन,निदिध्यासन की आवश्यकता होती है।

---

1. श्लोक संख्या- 2/26 "किरात0"

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारवि वेदान्त के मूर्धन्य ज्ञाता थे। वे वेदान्तदर्शन के ज्ञान को किरात में विधिवत् प्रयोग करते हैं। वे माया-मतिभ्रम की परिकल्पना, पञ्च महाभूतों की अवधारणा, सृष्टि-रचना, ब्रह्म-विचार, आत्मसाक्षात्कार आदि दार्शनिक तत्त्वों को स्पष्ट रूप से काव्य की धारा में सम्प्रयुक्त करते हैं।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

योगदर्शन

चित्तवृत्तियों का निदर्शन

योगदर्शन में चित्तवृत्तियों की अवधारणा व चित्तवृत्तियाँ विविध प्रकार की होती हैं। चित्तवृत्ति की सुस्थिति ही आत्मज्ञान अथवा समाधि का मार्ग प्रशस्त करती है। भारवि चित्तवृत्त्यों के दार्शनिक परिज्ञान को दर्शाते हैं कि "विचित्ररूपा: खलु चित्तवृत्तय:।" चित्तवृत्तियाँ अद्भुत प्रकार की होती हैं।[1] द्रौपदी युधिष्ठिर पर कटाक्ष करती है कि आप की भी एक चित्तवृत्ति है जिस पर विपत्ति, क्लेशों का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा व वस्तुत: वह शान्त और सुस्थिर हो गयी है। ऐसी शान्त एवं सुस्थिर चित्तवृत्ति का दार्शनिक नामक एकाग्रचित्तवृत्ति किया जाता है।

मन अति चञ्चल और अस्थिर होता है। इस स्थिति को चित्तभूमि की क्षिप्तावस्था कहते हैं। मन की अवस्था को भारवि अर्जुन के बाण की गतिमत्ता से निरूपित करते हैं। वे लिखते हैं कि अर्जुन का बाण गाण्डीव से कब छूटा और कब लक्ष्य का संधान किया, लक्षित नहीं हुआ। वे बाण की तीव्रता की उत्प्रेक्षा मन की तीव्रता से करते हैं। जिस प्रकार मन को एक विषय अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान (विषय) पर पहुँचने में क्षणभर भी समय नहीं लगता है उसी प्रकार उसके

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या- 1/37 "किरात0"

बाण के संधान में क्षणभर भी समय नहीं लगता है।[1]

भारवि की काव्य-सर्जना में योग-दर्शन की निद्रा चित्तवृत्ति का सम्प्रयोग द्रष्टव्य है। भारवि सुषुप्तावस्था का वर्णन करते हैं। अर्जुन के प्रस्वापन अस्त्र केप्रयोग से प्रमथगण घोर निद्रा में विलीन हो गये और उनकी भौतिक ज्ञान भंग हो गया।[2] यहाँ स्पष्ट है किवे प्रमथगण निद्रा चित्तवृत्ति के पाश में आबद्ध हो गये।परिणामत: वे जड़ीभूत हो गये।

साधक के लिए चित्तवृत्तियों काअध्ययन एवं ज्ञान आवश्यक होता है। चित्तवृत्त्यों के अनुकूल रहने पर साधक को समाधि के अनुवर्ती चरणों की साधना में सहायता मिलती है। परिणामत: साधक को लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। भारवि ने प्रस्तुत दार्शनिक अवधारणा को बाण-संधान में चित्तवृत्त्यों के सामीप्य और उनकी अनुकूलता सुखकारी होती है। इससे उत्साह में वृद्धि होती है।[3]

भारवि जीवन के गम्भीर एवं शान्त स्थल की विवेचना में दार्शनिकता का वातावरण बनाते हैं। वे लिखते हैं शरद् ऋतु में पृथ्वी एवं नदियाँ

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या- 13/25 "किरात."

2. श्लोक संख्या- 16/27 "किरात."

3. श्लोक संख्या - 6/17 "किरात."

अनौद्धत्यपूर्ण हो जाती है, उनमें शान्ति एवं स्थिरता लक्षित होती है। पावस ऋतु की कुटिलता के स्थान पर शान्त वृत्तियों का प्रादुर्भाव होता है। जब मनुष्य के मन में जीवन की अस्थिरता में विश्वास और जीवन के औद्धत्यबद्ध कार्यों से विरक्ति हो जाती है, तब वह शान्त-रूप होकर मन की पङ्किलता एवं कुटिलता से विमुक्त हो उठता है।[1]

योग-साधना-पद्धति का विवेचन

योग शास्त्र का प्रतिपादन है कि योग द्वारा समाधि की ओर बढ़ने के निमित्त व्यक्ति को अपनी चित्तवृत्तियों का नियमन करना चाहिए। चित्तवृत्तियों को नियमित करने के पश्चात् सांसारिक क्लेश, दु:खादि से व्यक्ति मुक्त हो उठता है। अवरोधक तत्त्व उसकी साधना और तपश्चर्या में चित्तात्मक उद्धरण नहीं भरते हैं। इस तथ्य को भारवि इस प्रकार दिखाते हैं- इन्द्रनील पर्वत पर योगशास्त्रानुकूल चित्तवृत्तियों का नियमन करके अर्जुन ने दुष्कर तपश्चर्या में कुछ भी खेद अनुभूत नहीं किया, क्योंकि वह मनस्वी है और उसकी चित्तवृत्तियों में उद्वेगों का अभाव हो गया है।[2]

भारवि तपोवृत्ति के अनुकरणीय आचार-विचार की व्याख्या करते हैं। वे लिखते हैं कि तपस्वी को मृगचर्म और वल्कल धारण करना चाहिए।[3] उसका

---

1. उपैति स्पस्यं परिणामरम्यता नदीरनौद्धत्यमपङ्कता मही ।
   नवैर्गुणैः संप्रति संस्तवास्थिरं तिरोहितं प्रेम घनागमश्रियः ।।
   "किरात०–4/22"
2. श्लोक संख्या – 6/19 "किरात"
3. श्लोक संख्या – 11/15 "किरात"

व्यवहार शान्ति-प्रिय होना चाहिए। उसकी बुद्धि अहिंसा-परक होनी चाहिए । मुक्ति के अभिलाषी को शरीर के विषय में निस्पृह होना चाहिए। किसी प्राणी से द्रोह -बुद्धि नहीं रखनी चाहिए। यहाँ पर भारवि की दार्शनिकता पूर्णत: लक्षित है। वे स्पष्ट करते हैं कि सांसारिक उपलब्धि सर्वथा अस्थिर है। अत: सांसारिकता की उपलब्धि के निमित्त किसी प्रकार का भी कार्य-व्यापार परित्याज्य है। वस्तुत: सांसारिक व्यापारों में मानसिक प्रविष्टि मन की स्थिरता को भङ्ग करती है, ~~जिससे प्रविष्टि मन की स्थिरता को भङ्ग करत~~ है, जिससे योगाचरण में परि-बाधा का सर्जन होता है। यहाँ तक कि स्वशरीर में भी किसी प्रकार की अनुरक्ति नहीं चाहिए। स्वशरीर-विषयक चिन्तन, सांसारिकता को ओर उन्मुख करता है। अपने प्रति राग और फलत: दूसरों के प्रति द्रोह का सर्जन होता है। योगी को मोक्ष-प्राप्ति के लिए इन विचारों का अनुशीलन अपरिहार्य है।

योग-विद्या का ज्ञान

भारवि ने योग-विद्या के माहात्म्य, स्वरूप और उससे सम्बद्ध आवश्यक विषयों को अपनी लेखन-धारा में समर्पित करने का सफल प्रयास किया है। वे अपनी लेखन-विषय ग्राह्यता को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि जिससे वह भासित हो जाय

- - - - - - - - - - - - - -

1: श्लोक संख्या - 11/16 "किरात0"

कि वे विषय - प्रयुक्ति में सांख्य के सिद्धान्तों से अभिप्रेरित हैं अथवा योग के सिद्धान्तों से अभिप्रेरित हैं। ~~अथवा योग के सिद्धान्तों से~~। यहाँ वे दार्शनिक सिद्धान्त के महत्त्व में सिद्धियों को विशिष्ट स्थान पर रखते हैं, वहाँ यह संकेतित हो उठता है कि वे ~~दार्शनिक सिद्धान्त कव्यावहारिक हो उठता है कि वे~~ दार्शनिक सिद्धान्त के व्यावहारिक पक्ष पर ही बल दे रहे हैं और योग-मार्ग की अवधारणा को संस्थापित करना चाहते हैं। वस्तुतः इस व्यवस्था की स्थापना वे अपनी सूक्ष्म दार्शनिक बुद्धि से करते हैं। व्यास जी अर्जुन को ऐसी विद्या को देने की अपेक्षा करते हैं जिसकी सिद्धियाँ उत्तरोत्तर उन्नतिदायिनी हैं। वे लिखते हैं कि उस विशिष्ट विद्या के द्वारा महामहिमशाली देवताओं की पूजा की जाती है। उसका परा-क्रम अतुल है तथा उससे पाण्डवों की प्रकर्षता में वृद्धि होगी।[1] भारवि यहाँ पर योग-विद्या के माहात्म्य को निरूपित करते हैं। वे अणिमा, लघिमा जैसी सिद्धियों की ओर संकेत करते ही हैं, साथ ही साथ "देवता-आराधना" शब्द द्वारा परम पुरुष भगवान् शंकर के साक्षात्कार की ओर भी संकेत करते हैं, जिस शंकर भगवान् की प्रसन्नता पर ऐच्छिक लाभ (पाशुपतास्त्र की प्राप्ति) सम्भव है। भौतिक तथा अभौतिक उपलब्धि सम्भव है। भौतिक तथा अभौतिक उपलब्धि विशिष्टतया योग-मार्ग से सम्भव है, यह विशिष्टतया योग तथ्य यहाँ स्पष्ट हो जाता है। और यही भारवि का अभिप्रेत दार्शनिक विषय है। व्यास जी योग-विद्या के लिए अर्जुन

- - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 3/23 (किरात0)

को ही "दायुं प्रदानोचित" माना है, क्योंकि योग-दर्शन कर्म की कठोर साधना के योग्य अर्जुन ही हैं। वे ही उग्र तपोवृत्ति में सफल हो सकते हैं। वे अर्जुन चौबीस तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर चमत्कृत हो गये और उनकी आँखें बहु दिनों के बाद खुली हुई की भाँति हो गयीं।[1] योग दर्शन में चौबीस तत्त्व एवं अष्टांग-साधन प्रमुख अवधारणायें हैं, जिनका ज्ञान अर्जुन को सहजता से हो जाता है।

यम-नियम का निरूपण

योग के अष्टांग-साधनों में यम-नियम की बलवती भूमिका व्याख्यात है। नियम विधान में आत्म शुद्धि के लिए तप (सर्दी-गर्मी सहने की शक्ति, कठिन व्रत का पालन करना आदि) शौच आदि की आवश्यकता पड़ती है। तप के परिपक्व होने पर बाह्य क्रियाओं का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। अर्जुन ने स्वलक्ष्य सिद्धि के निमित्त कठोर तपश्चर्या की। परिणामतः उस तपस्वी का मन उस वन-प्रदेश में अत्यन्त समीप के फलों पर जो परिपक्व होने से सुन्दर सुगन्ध से सने हुए थे तथा शीतल स्वच्छ जल पर भी चलायमान न हुआ।[2] यहाँ स्पष्ट है कि अर्जुन को सफल विरागि-भाव की प्राप्ति उसके यम-नियम के सेवन के परिणाम स्वरूप हुआ।

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. योगं च तं योग्यतमाय तस्मै तपः प्रभावाद्वितार सद्यः ।
   येनास्य तत्त्वेषु कृतेऽवभासे समुन्मिमीलेव चिराय चक्षुः ।।
   "किरात 3/26"

2. श्लोक संख्या 12/4 "किरात0"

समाधि का निरूपण

योग दर्शन में समाधि का वर्णन है। जब समाधिस्थ साधक के हृदय-कमल पर परमशक्ति (ईश्वर) का ज्ञान-प्रकाश-पुञ्ज पड़ता है, तब साधक को ज्ञान का बोध होता है और आनन्द की प्राप्ति होती है। इस विचार-मन्थन की समरूपता भारवि इस प्रकार प्रयुक्त करते हैं। प्रमथगणों के नेत्र-कमल तेजोराशि के प्रभाव से खुल गये, क्योंकि भगवान् शंकर की द्युति ने सर्वत्र प्रसरित होकर अन्धकारमयी घोर निद्रा को विच्छिन्न कर दिया। तेजोराशि प्रभातकालीन सन्ध्या-प्रसरण के सदृश सुखकर है। नेत्रकमलों के खुल जाने पर और प्रमथों के जाग जाने पर वे जड़ता से उद्बोधन को प्राप्त हो गये।[1]

योगी की स्थिति का वर्णन

एक योगी सांसारिकता से पूर्णत: अनासक्त रहता है। किन्तु यह योग-वृत्ति एक कटु साधना के उपरान्त ही प्राप्त होती है। योगस्थ स्थितिशान्तिदायिनी होती है। विविध विघ्नशालिनी विषय-वासना की अभिरुचि दमित बनी रहती है। योग-साधना के द्वारा अर्जुन के निष्कण्टक शान्ति सुखोपभोग में पच्चीसों

- - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 16/33 "किरात0"

तत्त्वों के अवधारण रूप गुण के द्वारा उसकी बुद्धि को काम-क्रोध दोषों से दूर कर दिया।[1] अर्जुन ने तपश्चर्या द्वारा एक योगी की वृत्ति को प्राप्त कर लिया। वह बाह्य जगत् की सुक्रियाओं से निरपेक्ष रहता है। इन्द्र का कथन है कि मुमुक्षु सदैव क्षमाशील होता है।[2] तपस्वियों का यह अनिवार्य गुण है। हिंसादि अवगुण योगी के स्वभाव के प्रतिकूल होते हैं, क्योंकि वे अर्थ और काम के मूल हैं जो तत्त्व ज्ञान के साक्षात् लुटेरे हैं।[3]

योगियों के बाह्य जगत् के कार्य-व्यापार में सहिष्णुता का समावेश रहता है। योगी सत्त्वगुण सम्पन्न होता है और रजोगुण से विमुक्त रहता है। वह दया-दाक्षिण्यादि गुणों से जीवों को अपने वश में कर लेता है।[4] वस्तुत: उपर्युक्त सभी उच्च स्तरीय गुण एक योगी के स्वभाव को निरूपित करते हैं, जिनका बहुविध परिचय कवि भारवि के काव्य में उपलब्ध है।

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 6/21 "किरात0"
2. श्लोक संख्या 11/18 "किरात0"
3. श्लोक संख्या 11/20 "किरात0"
4. श्लोक संख्या 6/24 "किरात0"

योग से जन्म-मुक्ति का उल्लेख

यह जगत् दु:ख रूप है। सारा जीव-जगत् दु:ख बन्धन में आबद्ध है। इस दु:ख बन्धन से निवृत्त होना 'मोक्ष' या 'मुक्ति' है। इस मुक्ति का उत्कृष्ट साधन योग-दर्शनिकों ने योग-साधना बतलाया है। इस तथ्य को भारवि पूर्णत: स्पष्ट करने की चेष्टा करते हैं। वे इन्द्र देव के माध्यम से तर्क प्रस्तुत करते हैं कि जगत निस्सार और बन्धनस्वरूप है। यह जगत् निरर्थक है क्योंकि प्राणी सर्वथा जन्म-जनित एवं स्वरूपगत दु:खों से ऊबा रहता है। इसीलिए यह संसार हेय है। अन्तत: वे स्पष्टीकरण देते हैं कि इस कष्टकारी स्थिति का निराकरण योग साधना है।[1] यहाँ पर अर्जुन को जगत् को वस्तुस्थिति का संज्ञान कराया गया है और उसकी लौकिक सम्प्राप्तिगत अभिचेष्टाओं को निरुत्साहित करने का प्रयत्न किया गया है। मुक्ति-साधना के परिप्रेक्ष्य में अर्जुन को इन्द्र उपदेश देते हैं- तुम मुक्ति के अभिलाषी हो, शरीर के विषय में तुम्हें निस्पृह होना स्वाभाविक है। ऐसी दशा में तुम्हें किसी प्राणी से द्रोह-बुद्धि नहीं रखनी चाहिए। अत: यह महान् तूणीर और भीषण धनुष धारण करना तुम्हारी शक्ति का समर्थन नहीं करता है।[2] तपस्वी तो केवल मृगचर्म एवं वल्कल धारण करते हैं।[3]

---

1. श्लोक संख्या 11/13 "किरात०"
2. प्रतिलो: किं च ते मुक्तिं नि:स्पृहस्य कलेवरे।
   "किरात 11/16"
3. श्लोक संख्या -11/15 "किरात०"

योग दर्शन सांख्य दर्शन के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देता है। वह गुणत्रयादिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देता है। वह गुणत्रयादिक सिद्धान्तों को योग-साधना में सहायतार्थ प्रयुक्त करता है। योग की अवधारणा है कि योग बल से ही मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है। इस समन्वयकारी रूप को भारवि स्पष्ट करते हैं कि अर्जुन एक तपस्वी और योगी है। जन्म-मरण से मुक्ति उसके लिए दूर नहीं है, क्योंकि उसने रजोगुण और तमोगुण पर विजय प्राप्त कर ली है। वह योग-साधना से सर्वाभिलषित वस्तु प्राप्त कर सकता है।[1] वनेचर इस तथ्य को इस प्रकार से स्पष्ट करता है कि योगी महात्माओं ने योग शक्ति से जन्म-मरण को जीत लिया है।[2] वे जगत् के बन्धन से मुक्त हो गये हैं।

योग-सिद्धि का वर्णन

कवि ने तपश्चर्या एवं योग वर्णन के साथ काव्य की कल्पना का समुचित प्रयोग किया है जिससे उसे थोड़ा सिद्धि के निरूपण का प्रभूत अवसर मिलता है। कवि योग-सिद्धि से सम्बन्धित ज्ञान को पूरी काव्य-धारा में अंकित करने की चेष्टा करता है। अपनी काव्य-कल्पना के द्वारा अणिमा, लघिमा, प्राकाम्य आदि सिद्धियों को भारवि बहुत ही सुन्दर ढंग से निरूपित करते हैं। अर्जुन के

---

1. श्लोक संख्या 13/40 "किरात0"
2. श्लोक संख्या 13/43 "किरात0"

युद्धगत हस्त-कौशल को देखकर किरातवाहिनी सेना अनेक प्रकार के संशय रूप झूले में झूलने लगी। क्या वह तपस्वी अपने तपोबल से अलक्ष्य अनेक शरीर निर्माण बाण प्रक्षेप कर रहा है ? अथवा हम लोगों का ही बाण इसकी माया से प्रतिकूल होकर हम लोगों पर प्रहार तो नहीं कर रहा है ? योग की प्राकाम्य-सिद्धि द्वारा योगी इच्छित-कार्य निष्पादित कर लेता है। इसी इच्छित कार्य की सम्भावना अर्जुन पर की जा रही है। अर्जुन की योग-साधना की परिणति इस रूप में दर्शनीय है। योग की प्रबलता इतनी उच्च हो उठी है कि जिस समय वह श्वास का अवरोध करके समाधिस्थ हो जाता है, उस समय दिशाओं के साथ स्तब्ध वायु और ग्रह, नक्षत्रों से मुक्त व्योम प्रसुप्त सा हो जाता है। योग-साधना के क्रमिक विकासमें अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। जिसके साहाय्य से अलौकिक कार्य का सम्पादन सम्भव हो जाता है। वस्तुत: अर्जुन का तप एवं योग इतना बढ़ गया है कि दिशायें वायु,आकाश आदि उसके मनोकूल हो उठे हैं।[1]

तप के प्रभाव में अर्जुन को पुष्प मन्जरी वृक्षों से स्वत: उपलब्ध हो उठती है, तृणों से सुख-शयन स्थल बिना मांगे मिल जाता है वस्तुत: यह समुप-लब्धता योग की सिद्धियों में परिगणित होती है।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 12/28 "किरात"

2. श्लोक संख्या 6/27 "किरात"

इस प्रकार देखते हैं कि किरात में योग-दर्शन के तत्त्वों के प्रयोग के लिए बहुत अधिक अवसर प्राप्त हुए हैं। भारवि अनेक कोणों से काव्यात्मक भङ्गिमा में योग दर्शन के तत्त्वों का प्रयोग करते हैं। वे चित्तवृत्तियों की अवधारणा, योग-साधना-पद्धति, योग-विद्या का ज्ञान, लाभ, यम-नियम, समाधि, अष्टसिद्धि, जगन्मुक्ति आदि योग दर्शन के दार्शनिक बिन्दुओं को किरात में प्रयुक्त करते हैं। भारवि योग दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित थे, यह तथ्य सर्वथा सिद्ध हो जाता है।

0 0 0 0 0

0 0 0

0

मीमांसा- दर्शन

वैदिक-यज्ञानुष्ठान का निरूपण

मीमांसा वैदिक-यज्ञानुष्ठान पर बल देती है। उसका विश्वास है कि विधि पूर्वक कृत यज्ञ व्यर्थ नहीं जाता है। उसका फल-संचय अपूर्व शक्ति द्वारा होता रहता है। उचित समय पर उसके फल की प्राप्ति अवश्य होती है। इस अपूर्व-शक्ति का परिचय कवि भारवि को प्राप्त है। वे व्यक्त करते हैं कि सुयोधन शत्रु को पराजित करने के लिए यज्ञ में हव्यादि प्रदान द्वारा अग्नि देव को प्रसन्न करता है। वह अपने शत्रु युधिष्ठिरादि की प्रबलता से अवगत है, किन्तु वह आशाबद्ध है कि यज्ञानुष्ठान से संचित फल द्वारा शत्रु को पराजित कर सकता है। उसे विश्वासहै कि यज्ञानुष्ठान से संचित फल अपूर्व शक्ति द्वारा उचित समय पर सम्यक्प्रकारेण प्राप्त होगा। इसलिए वह अखिन्नमनहोकर हवन करता हुआ अग्निदेव को प्रसन्न करता है।[1] वस्तुत: भारवि अपूर्व शक्ति का उल्लेख नहीं करते हैं किन्तु सुयोधन का विषम परिस्थिति में अखिन्न रहना तथा आशाबद्ध रहना, संकेत करता है कि सुयोधन को यज्ञानुष्ठान की अपूर्वशक्ति पर विश्वास है।

---

1. "मखेष्वखिन्नोऽनुमत: पुरोधसा धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम्"

"किरात-1/22"

भारवि वैदिक यज्ञानुष्ठान-विधि से पूर्णतः परिचित हैं। यज्ञानुष्ठान के उद्देश्य का सम्यक् ज्ञान उन्हें विदित है। यज्ञ में देव-स्तुति एवम् आमन्त्रण तथा पशु-बलि अभीप्सित लाभ के लिए किया जाता है। मीमांसा दर्शन में वर्णित है कि शुभ-लाभ के लिए यज्ञ में पशु-बलि दी जाती है जिससे अभीष्ट देवता को प्रसन्न किया जा सके और यज्ञीय पशुबलि की जाती के इस आशय की ज्ञान भारवि की काव्य-धारा में प्राप्त होता है।[1]

यज्ञानुष्ठान व्यक्ति को पाप से मुक्त एवं पवित्र करता है। यज्ञानुष्ठान से व्यक्ति की रक्षा संसार में होती है। इस दार्शनिक तत्त्व को दृष्टि में रखकर भारवि लिखते हैं- संसार की रक्षा करने में समर्थ, संसार को अपवित्रता से शुद्धकरने वाली गायें अपने बछड़ों के साथ गोष्ठ के समीप खड़ी थीं। उनका झुण्ड ऋक्, युज और सामादि मन्त्रों से युक्त हव्यादि प्रक्षेप रूप आहुति की तरह अपनी पूर्ण शोभा को प्राप्त होता है।" यहाँ व्यंजित है कि आहुति भी गाय जैसी वस्तु (प्राणी) के समान पवित्र करने की क्षमता से युक्त है। जिस प्रकार गायें दुग्ध देने और कृषि कार्य में सहयोग द्वारा संसार का पालन और रक्षा करती हैं, उसी प्रकार आहुति भी विविध प्रसवों द्वारा संसार का पालन और रक्षा करती है।[2] भारवि स्पष्ट

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 14/38 "किरात॰"

2. श्लोक संख्या - 4/32 "किरात॰"

रूप से उल्लेख करते हैं कि यज्ञानुष्ठान अवगुणों, दोषों, पापों, का शमन कर देता है। वे लिखते हैं- जिस प्रकार महाव यज्ञ में विधि-विधान न्यूनतारूप दोष को प्रायश्चित्त के द्वारा शमन कर देते हैं उसी प्रकार परम तेजस्वी विनीताकुमारों के द्वारा सर्पास्त्र समूह शमन को प्राप्त हो गया।[1]

वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा

वेद पवित्र है क्योंकि उसकी ऋचायें पवित्र एवं अघमर्षण हैं। ऋचाओं की पवित्रता एवं शक्तिमत्ता से सम्पन्न यज्ञानुष्ठान इष्ट का लाभ-प्रदाता होता है। इस दार्शनिक तत्त्व का प्रतिपादन भारवि उपमालङ्कार द्वारा करते हैं-अर्जुन का विजयसाधक वह बाण शंकर भगवान् के शर से विद्ध प्रतिपक्षी को उस प्रकार से पुनः भेदने में सफल रहा, जिस प्रकार से पुरुष का व्यापार विधिवाक्य से प्रतिपादित यज्ञ को साधन करने में समर्थ रहता है।[2] यहाँ पर विधि-वाक्य का तात्पर्य वेद की ऋचाओं से है। वैदिक सूक्तों का अध्ययन श्रेष्ठ द्विजों के अध्यापन से ही सम्भव हो सकता है। द्विज गुरु से विधिवत् पढ़ा हुआ शास्त्र (सूक्त), व्यक्ति को शक्ति प्रदान करता है। इसलिए भारवि लिखते हैं कि श्रेष्ठ द्विज से पढ़ा हुआ शास्त्राभ्यास

---

1. श्लोक संख्या 16/48 "किरात."
2. श्लोक संख्या 16/48 "किरात."

शरीर की शोभा को बढ़ाता है।[1] भारवि आगे लिखते हैं कि वस्तुतः शास्त्रज्ञान ही व्यक्ति के कर्तव्याकर्तव्य विषयों का निर्णायक सिद्ध होता है। वेदाध्ययन व्यक्ति की समस्त लौकिक-पारलौकिक समस्याओं का समाधान करता है।[2] यहाँ वेद की प्रतिष्ठा का अंकन किया गया है।

मीमांसा वेदविहित कर्तव्य के पालन को मनुष्य का धर्म निर्धारित करती है। इस धर्म के पालन से मनुष्य का लोक और परलोक सुधरता है। इस सनातन धर्म में वह अपूर्व शक्ति होती है, जो उसके कर्तव्य का प्रतिफलन समुचित समय पर उपलब्ध करा देती है। भारवि इस सनातन धर्म पर लिखते हैं- युधिष्ठिर ब्राह्मणों के भोजनोपरान्त भोजन करके पुष्टशरीर हो जाते हैं।[3] यहाँ पर सनातन धर्म का सम्प्रयोग है। आगे भारवि द्रौपदी के शब्दों में कहते हैं- यदि आप (युधिष्ठिर) पराक्रमहीन होकर चिरकाल तक क्षमा को ही सुख का साधन समझते हैं तो जटाधारी बन कर अग्नि में हवन कीजिए।[4] यहाँ द्रौपदी के प्रस्तुत वक्तव्य में वैदिक कृत्यों का स्पष्ट उल्लेख है।

- - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 2/32 "किरात."
2. श्लोक संख्या =2/33,34"किरात."
3. श्लोक संख्या - 1/38 "किरात."
4. श्लोक संख्या - 1/44 "किरात."

अन्ततः हम कह सकते हैं कि भारवि मीमांसा दर्शन के तत्त्वों में पारङ्गत है। उन्हें जहाँ भी मीमांसा दर्शन के तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती है वहाँ पर वे बहुत ही कुशलता पूर्वक उन्हें प्रयुक्त करते है। मीमांसा दर्शन के तत्त्वों के प्रयोग से किरात महाकाव्य अधिक चारुतर हो गया है। उनके काव्य में वैदिक यज्ञानुष्ठान-लाभ, योग- की प्रतिष्ठा की विवेचना, सनातन-धर्म के कर्म-काण्ड वर्णन आदि की संप्रयुक्ति बहुत ही सहज ढंग से की गयी है।

0 0 0
0

न्याय दर्शन

प्रमाण का विवेचन

न्याय दर्शन में तर्क-वितर्क का निरूपण है। इसमें तथ्य को सिद्ध करने के लिए युक्तियों का प्रयोग किया जाता है। न्याय-दर्शन के प्रमाण-सिद्धान्त के प्रकाश में भारवि लिखते हैं- तुम अर्जुन जिन युक्तियों का उदाहरण दिया है वे सब पुरुषार्थ का आलम्बन करती हैं और तर्क से जिन युक्तियों को सिद्ध किया है, वह नीति-विरुद्ध नहीं है। कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो इस विचार से सहमत न होगा।[1] यहाँ पर तर्क, युक्ति-सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या प्राप्त है। अतः भारवि का कथन है- जिस प्रकार से पृथ्वी को जीतने का अभिलाषी और कर्तव्यानुष्ठान में उत्साही पुरुष की बुद्धि कर्म-निष्पादन भाव में लगती है और फिर वहाँ से पराङ्मुख हो जाती है अर्थात उसकी बुद्धि और मन सङ्कल्प नहीं कर पाते हैं, उसी प्रकार अर्जुन का हाथ वेग के साथ निषङ्ग तक गमनागमन करता था और संघृष्ट होता था।[2] यहाँ पर तर्क-वितर्क की अवधारणा लक्षित है। यहाँ पर मन की चञ्चलता एवं उसकी अस्थिर प्रकृति का निरूपण प्राप्त है।

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 2/28 "किरात."
2. श्लोक संख्या -17/38 "किरात."

ईश्वर की अवधारणा

भारवि अर्जुन द्वारा शंकर भगवान् की स्तुति में ईश्वर की अवधारणा को व्यक्त करते हैं। वे लिखते हैं-ईश्वर(शङ्कर) परम दयालु है, वे भक्ति-सुलभ है, उसकी शरण में जाने पर जन्म मृत्यु के बंधन टूट जाते हैं।[1] उसकी शरण में जाने पर अनिष्ट की निवृत्ति तथा इष्ट में प्रवृत्ति होती है।[2] ईश्वर निःस्वार्थ भाव से भक्तों की सहायता करता है।[3] ईश्वर परम तीर्थ है, वह मोक्ष का स्थान है।[4] ईश्वर साक्षी मात्र है, वह कर्मों का फल निष्पक्ष रूप से प्रदान करता है।[5] कुछ व्यक्ति ज्ञानयोग के द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार करते हैं। विवेकी पुरुष ज्ञानदृष्टि से तत्त्वों को देखकर और कर्मों का अनुष्ठान कर निर्विघ्न पद को प्राप्त करता है।[6] व्यास बाल्मीकि आदि मुनि केवल अपने योग की महिमा से स्मृति,पुराणादि के द्वारा लोगों का उपकार करते हैं, किन्तु अचिन्त्य महिमा वाले आप (ईश्वर) शरणागतों के पाप और पुण्य रूपी कर्म के दुर्भेद कर्मों को नष्ट कर देते हैं।[7] यहाँ पर स्पष्ट है

---

1. श्लोक संख्या -18/22 "किरात॰"
2. श्लोक संख्या - 18/23 "किरात॰"
3. श्लोक संख्या -18/24 "किरात॰"
4. श्लोक संख्या -18/25 "किरात॰"
5. श्लोक संख्या -18/26 "किरात॰"
6. श्लोक संख्या - 18/28 "किरात॰"
7. श्लोक संख्या - 18/29 "किरात॰"

कि जब तक जीवात्मा के शुभ और अशुभ कर्मो की सत्ता रहती है, तब तक मुक्ति प्राप्त नहीं होती है। शुभ और अशुभ कर्मो का नाश तभी होता है जब ईश्वर-साक्षात्कार होता है। ईश्वर अपनी माया से शरीर को धारण करता है। यह शरीर-धारण -कर्म वह लोक-कल्याण के लिए करता है। ईश्वर अजन्मा होकर भी माया से जन्म लेता है।[1] ईश्वर निर्गुण और निर्विकार है। उसे कामवासना सन्तप्त नही कर सकते हैं।[2] ईश्वर सांसारिक प्राणियों की भाँति जरा, जन्म, मरण से संयुक्त नही है, अर्थात् वह सर्वदा इनसेपरे है।[3] भारवि लिखते हैं- हे देव ! चराचर प्राणियों के संहार कारी आप ही हैं। आप से समस्त प्राणी जीवित हैं। आप योगियों के कर्म और उनके उपभोग दोनों के निवर्तक हैं। आप पन्च महाभूतों के कारण परमाणु के भी कारण हैं।[4]

इन स्पष्ट उक्तियों के अतिरिक्त भारवि अग्निमूर्ति और व्योम मूर्ति की स्तुति में ईश्वर के स्वरूप को निरूपित करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारवि न्याय दर्शन के तत्त्वों के ज्ञाता थे। उस ज्ञान का प्रयोग युक्ति प्रमाणऔर ईश्वर स्वरूप के वर्णन के द्वारा करते हैं।

- - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 18/30,33 "किरात॰"
2. श्लोक संख्या - 18/31"किरात॰"
3. श्लोक संख्या - 18/34"किरात"
4. त्वमन्तकः स्थावरजङ्गमानां त्वया जगत्प्राणिति देव विश्वम् ।
   त्वं योगिनां हेतुफले रुणत्सि त्वं कारणं कारणकारणानाम् ।।

"किरात॰18/35"

बौद्ध-दर्शन

बौद्ध दर्शन में दु:खवाद का निरूपण है। वे दु:खों का कारण एक लम्बी गवेषण के द्वारा अज्ञान(अविद्या) को ठहराते हैं। भारवि इस दु:खवाद पर लिखते हैं- जन्म-धारण करने वाले प्राणी सर्वदा विपत्तियों से ऊबे रहते हैं। अन्त में मृत्यु अवश्यम्भावी है, अत: यह संसार हेय है। जो सज्जन लोग हैं वे मुक्ति -प्राप्तिके लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं।[1] बौद्ध चार आर्य सत्यों-दु:ख,दु:ख समुदाय,दु:ख निरोध तथा दु:ख निरोधिनी प्रतिपदा को विवचन करते हैं। वे मानते हैं कि दु:ख जरा-मरण के कारण है। इसका निरूपण भारवि उपर्युक्त कथन में करते हैं।जरा-मरण जाति के कारण है। जाति,भाव,उपादानतृष्णा,वेदना,स्पर्श,षडायतन,नामरूप, विज्ञान संस्कार और अविद्या कारणों द्वारा क्रमरूप से आबद्ध है। वस्तुत: इन्हें ही भव-चक्र कहते हैं। तृष्णा,वेदना स्पर्श दु:खकारणों की ओर संकेत पूर्वक भारवि लिखते हैं- युवावस्था की शोभा शरत्काल के मेघ की तरह चन्चल है, शब्दादि जो तत्-तत् इन्द्रियों के विषय हैं वेउसी काल तक ही रम्य प्रतीत होते हैं। वस्तुत: वे अन्तिम अवस्था में सन्तापकारी होती हैं।[2] यहाँ स्पष्ट है कि इन्द्रियाँ तृष्णा-वेदना की जड़ है,क्षणिक सुख"स्पर्श-कारण" जन्म होने से दु:ख के मूल हैं।

- - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 17/13 "किरात."
2. श्लोक संख्या - 11/12 "किरात."

इस प्रकार हमें प्राप्त होता है कि भारवि बौद्धों के आर्य-सत्य तथा दु:खवाद से प्रभावित थे और उन्होंने तत्त्वों को अपने काव्य में स्थान दिया। यद्यपि वे वैदिक सनातन धर्म के तत्त्वों को अपने काव्य में अधिक प्रयोग करते हैं।

निष्कर्ष :-

भरवि के पूरे महाकाव्य में भक्ति उपासना के उद्धरण भी प्राप्त होते हैं।[1] जिसमें देव-स्तुति लौकिक-पारलौकिक ईष्ट-लाभ के लिए की गयी है। वस्तुत: ईश्वर भक्ति एक सहज मार्ग है जो ईश्वर साक्षात्कार के लिए प्रवृत्त होता है। इसलिए सभी ईश्वरवादी दर्शनों में भक्ति उपासना का प्रकरण वैष्णव एवं शैव सम्प्रदाय के ईश्वर-चिन्तन परम्परा में प्राप्त होता है। वे ईश्वर को सगुण एवं साकार रूप में स्वीकार कर लेते हैं। इस रूप से वे निर्गुण एवं निराकार ईश्वर को सहज प्राप्ति कर सकते हैं ऐसी उनकी मान्यता है। अन्तत: कहा जा सकता है कि भारवि शैव थे। शिव उपासना की विस्तृत विवेचना भी यत्र-तत्र प्राप्त होती है।[2] इनके सम्पूर्ण महाकाव्य में इष्ट-लाभ (दिव्य पाशुपतास्त्र-लाभ) के लिए नायक, अर्जुन का कार्य व्यापार भगवान् भगवान् शङ्कर के साक्षात्कारके निमित्त ही होता है। वस्तुत: भारवि काश्मीरी शैव-सम्प्रदाय के दर्शन के तत्त्वों पर बल नहीं देते हैं, वे भगवान् शङ्कर को ईश्वर के रूप में महाकाव्य में प्रकट करते हैं। उनके सम्पूर्ण महाकाव्यमें आस्तिक दर्शन के तत्त्व विशद रूप से मिलते हैं, उनमें भी वेदान्त, साङ्ख्य, मीमांसा एवं न्याय दर्शन के तत्त्व अधिक प्रयुक्त हुए हैं।

---

1. श्लोक संख्या -4/38, 15/18, 12/33, 18/27, 32, 36 "किरात"
2. " " -2/5, 13/5, 18/9 "किरात"

वतुर्थोऽध्याय:

चतुर्थ अध्याय

शिशुपाल वधम् महाकाव्य में दार्शनिक तत्त्व

(भूमिका)

महाकवि माघ ने भारवि की काव्य-स्पर्धा में शिशुपालवध की रचना की है। इसलिए उन्होंने चित्रण शैली, अलङ्कार-निवेश, शब्द-विन्यास, अर्थगौरव, पद-लालित्य आदि काव्य-तत्त्वों पर सुन्दर काव्य-लेखन प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। इन आवश्यक काव्य-गुणों के अतिरिक्त उन्होंने दार्शनिक तत्त्वों को भी काव्य सौन्दर्य-विधायक-तत्त्व के रूप में शिशुपालवध में स्थान प्रदान किया है। वस्तुत: वे दार्शनिक तत्त्वों को काव्य-धारा में बलात् प्रक्षिपित करते हैं। कहीं-कहीं पर ये दार्शनिक तत्त्व काव्य की शोभा के प्रस्फुटन में सहायक हो गये हैं तो कहीं-कहीं पर बाधक है। दार्शनिक तत्त्व विविध शैलियों में प्रयुक्त हैं। कहीं पर दार्शनिक तत्त्वों को सीधे और सपाट रूप में अवतरित किया गया है, तो कहीं पर लक्षणा और व्यञ्जना के माध्यम से निर्दिष्ट किया गया है। कहीं-कहीं पर उपमा उत्प्रेक्षा, श्लेष, विरोधाभास आदि अलङ्कारों के द्वारा भी व्यक्त किया गया है। शिशुपालवध में लगभग सभी दार्शनिक तत्त्वों का मञ्जुल समावेश किया गया है, जिनका अध्ययन हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत करते हैं-

ब्रह्म की अवधारणा को और स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के निमित्त माघ श्रीकृष्ण की अन्य विशेषताओं को लिखते हैं। अपने इस लेखन-प्रयास में वे, ब्रह्म को त्रिकालदर्शी एवं त्रिलोकव्यापी व्यक्तकरते हैं। माघ श्रीकृष्ण भगवान् की विशेषता इस प्रकार स्पष्ट करते हैं- मधुसूदन (श्रीकृष्ण भगवान्) के उदर में तीनों भुवन स्थित हैं। ऐसे श्रीकृष्ण के नेत्र के समक्ष शत्रु की सेना की विशालता क्या चीज है। उन्होंने क्षणमात्र में शत्रुसेना को देखकरउसका परिणाम ज्ञात कर लिया।[1] वस्तुत: शत्रुसेना को देखकर और उसके परिणामको जान लेने से व्यञ्जित है कि भगवान् (ब्रह्म) को भूत, वर्तमान, भविष्य का पूर्ण ज्ञान होता है। उसकी दिव्य दृष्टि में तीनों कालों के दृश्य एवं उनकी परिणति क्षण मात्र मेंप्राप्त हो जाते हैं। एतद् प्राकरणे माघ लक्षित करते हैं कि ब्रह्म की नित्य एवं शाश्वत सत्ता है। ब्रह्म की सर्वव्यापी सत्ता को निरूपित करने के निमित्त कवि श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में लिखता है कि वे ऐसे उदर वाले हैं जिनमें चारो समुद्र समाहित हैं। उनके शरीर की सन्धियों में समस्त नदियाँ विलीन हैं तथा वे तीनों धामों वाले हैं।[2] कवि कहना चाहता है कि भूर्भुव: स्व: या सत्त्व, रजस्, तमस्, रूप तीनों धाम श्रीकृष्ण रूप ब्रह्म में व्याप्त है। इसी स्थल पर श्रीकृष्ण के केशों से मेघ श्रेणियों के निकलने से ब्रह्म से जगत् की उद्भावना व्यञ्जित होती है।

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 17/47 "शिशु0"

2. श्लोक संख्या 20/66 "शिशु0"

वेदान्त-दर्शन

सर्वव्यापी ब्रह्म का निरूपण

महाकवि माघ ने शिशुपालवधम् महाकाव्य में श्रीकृष्ण को ईश्वर के रूप ल में स्थापित किया है। उनका मन्तव्य है कि श्रीकृष्ण संसार के नियन्ता हैं, वे संसार के कर्ता और अ हर्ता हैं, वे ही संसार की सर्वोच्च सत्ता हैं। वे निरूपित करते हैं कि श्रीकृष्ण ईश्वर के रूप में अवस्थित हैं। प्रत्येक जीव श्रीकृष्ण का अंश है

माघ द्वारा व्याख्यात श्रीकृष्ण की अलौकिक विशेषता वेदान्त दर्शन के दार्शनिक विषय से अभिप्रेरित है। वेदान्त दर्शन में ब्रह्म की परिकल्पना संसार की सर्वोच्च सत्ता के रूप में व्यक्त है। ब्रह्म सर्वव्यापी है, ब्रह्म का प्रकाश सभी प्राणियों में परिव्याप्त है और उसी ब्रह्म के प्रकाश से सभी प्राणी जीवन्त हैं। यह सम्पूर्ण संसार ब्रह्म की उद्भावना का रूप होता है और अन्ततः वह उसी ब्रह्म में विलुप्त हो जाता है। माघ इसी दार्शनिक तथ्य को दृष्टि में रखकर लिखते हैं कि दैत्यों दानवों को पराभूत करने वाले श्रीकृष्ण भगवान् को केवल मानव मात्र न जानो, क्योंकि ये जनसमूहातिशायी एवं प्रत्येक जन में स्थित परमात्मा के अंश हैं।[1] माघ स्पष्ट करना चाहते हैं कि एक परमात्मा (ब्रह्म) सर्वत्र व्याप्त है। वह सभी जीव में समाहित है।

---

1. मर्त्यमात्रमवदीधरभवान् मैनमानमितदैत्यदानवम् ।
   अंश एष जनतातिवर्तिनो वेधसः प्रतिजनं कृतस्थितेः ।।

"शिशुपाल0-14/59"

अजर - अमर ब्रह्म का विवेचन

ब्रह्म अजर और अमर है। उसका न तो जन्म होता है और न तो नाश हो । वह जगत् का निमित्त कारण है और जगत् का क्षयकर्ता भी। इस दार्शनिक तथ्य के परिज्ञान को माघ बहुत ही सहजरूप से काव्य की धारा में समाहित करते हैं। भीष्म पितामह श्रीकृष्ण भगवान् को नमस्कार करते हैं- प्राणियों के कारण तत्त्व तथा नाश-हेतु को धारण करते हुए, स्वयं जन्म एवं नाश से रहित, सर्वदा पाताल लोक में अवस्थित होकर पृथ्वी को धारण करते हुए तथापि ब्रह्मा से भी अमर रहते हुए श्रीकृष्ण भगवान् को नमस्कार हो।[1] श्रीकृष्ण भगवान् के पाताल लोक में अवस्थित होने से कवि लक्षित करता है कि श्रीकृष्ण रूप "परब्रह्म" भौतिक दृष्टि के लिए अपारगम्य है। "श्रीकृष्ण पृथ्वी को धारण किये हुए हैं, से कवि लक्षित करता है कि परब्रह्म संसार में व्याप्त है तथा संसार का कारण स्वरूप भी है, तदापि वह संसार से अज्ञात जैसा है। श्रीकृष्ण ब्रह्मा से भी अमर हैं अर्थात् ब्रह्म सर्वोच्च सत्ता है। इस कथन में यह व्यञ्जना भी प्रकट है कि ब्रह्म से केवल जगत् की उद्भावना होती है न कि उससे सत्य जगत् की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मा के सम्प्रयोग द्वारा कवि उपर्युक्त व्यञ्जना कैसे सफल संकेत करता है। एतदत्र कवि ब्रह्म के पूर्ण स्वरूप का निरूपण देता है। जिसमें ब्रह्म की शक्तिमत्ता में व्यञ्जना भी सुलभ है।

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 14/65 "शिशु"

माघ ब्रह्म के स्वरूप और उसके अजर-अमर होने का स्पष्ट उल्लेख करते हैं वे लिखते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान् अज(अनादि),अजर, रजोगुणरहित, तेजस्वी, शत्रुओं की हिंसा से बल को प्राप्त करने वाले हैं।[1]

ब्रह्म का आदिपुरूष रूप

समस्त सृष्टि की रचना के पूर्व ब्रह्म ही था और समस्त सृष्टि का विस्तार उसी ब्रह्म से हुआ है। प्रलय के बाद केवल ब्रह्म हीबचता है। इस दार्शनिक तथ्य को माघ श्रीकृष्ण के आदिपुरूष रूप के विवेचन में व्यक्त करते हैं। वे लिखते हैं कि "समस्त लोकों से नमस्कृत भी पुराण पुरूष श्रीकृष्ण भगवान् ने अपनी श्रेष्ठता को बढ़ाते हुए प्रथमतः युधिष्ठिर को प्रणाम किया।[2] श्रीकृष्ण तीनों लोकों से नमस्कृत हैं, क्योंकि तीनो लोकों की सृष्टि उन्हीं से हुई है फलतः वे आदिपुरूष के रूप में परिगणित हैं। वस्तुतः यहाँ ब्रह्म के सगुण पक्ष का निरूपण प्राप्त है।

ब्रह्म के आदि पुरूष-स्वरूप के निरूपण में कवि आगे लिखता है कि आदि पुरूष उन श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्घ्य आदि पूजा सामग्रियों से पूज्य उन नारद जी की विधि पूर्वक पूजा की। वस्तुतः यह उनकी महत्ता है।[3] यहाँ पर कवि श्रीकृष्ण को ब्रह्म के आदि पुरूष के रूप में व्यक्त करता है

---

1. "राजराजी रूरोजाजेरजिरेऽजोऽजरोऽरजाः" शिशुपालवधम्-19/102

2. "वपुषा पुराणं पुरूषः पुरःक्षितौ परिपुन्ज्यानपृहंहारवीष्टना"
"शिशु0 13/8"

3. "तमर्घ्यमर्घ्यादिकमादिपुरूषः सपर्यया साधु स पर्यपूजत् "
"शिशु0 1/14"

ब्रह्म का आदिरूप क्या है और यह आदि रूप क्यों है, इस दार्शनिक तत्त्व का परिज्ञान माघ को विधिवत् प्राप्त है। वे इस तथ्य की स्पष्ट विवेचना करते हैं। भीष्म पितामह श्रीकृष्ण भगवान् के ईश्वरीय स्वरूप तथा उनका मनुष्य देह से सम्बन्ध होने का कारण कहते हैं-

तत्त्वदर्शी लोग श्रीकृष्ण भगवान् को सर्वज्ञ, आदि होने पर भी भूभार को दूर करने से प्राणियोंको अनुगृहीत करने की इच्छा से मनुष्य के शरीर को प्राप्त कर ~~प्रारब्ध कर्म के वश से मानव शरीर को प्राप्त कर~~ प्रारब्ध कर्म के वश से मानव-शरीर को नहीं प्राप्त किये हुए अतएव अविद्या, अहङ्कार राग, द्वेष और अभिनिवेश रूप पाँच क्लेशों एवं पुण्य-पाप रूप दो कर्मों के फल को न भोगने वाले ईश्वर संज्ञक पुरुष- विशेष परम पुरुष या पुराण पुरुष या आदि पुरुषकहते हैं।[1] यहाँ कवि स्पष्ट करता है कि ब्रह्म का आदि रूप स्वतन्त्र है वह ब्रह्म का आदि रूप स्वतन्त्र है वह ब्रह्म के माया जन्य भौतिक कृत्यों से सर्वथा असम्बद्ध है। भौतिक विकार ब्रह्म के आदिरूप पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डालते हैं। योग सूत्र में भी इसी आशय को निरूपित किया गया है।[2]

---

1. सर्वं वेदिनमनादिमास्थितं देहिना मनुजिघृक्षया वपुः ।
   क्लेशकर्मफलवर्जितं पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः ॥
   "शिशु0 14/62"

2. " योग सूत्रे-क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः"।

मायावी ब्रह्म का निरूपण

अपनी काव्य-सर्जना में महाकवि माघ ने औपनिषदिक ब्रह्म के ज्ञान का सुन्दर परिचय दिया है। वे स्पष्ट रूप से मायावी, अजन्मा ब्रह्मा का निरूपण श्रीकृष्ण के पक्ष में करते हैं- जिन श्रीकृष्ण भगवान् को लोग सत्य आचरण युक्त होने पर मायावी (शक्तिरूपिणी माया से युक्त), सर्वलोक पितामह होने से संसार में वृद्ध होने पर योग निद्रा में सोये हुए बालमुकुन्द रूप हैं। अजन्मा होने पर भी जन्म धारण काने वाले हैं। यद्यपि सुन्दर शरीर होने पर पुराण-पुरुष है।[1] यहाँ पर कवि ने परस्पर विरोधी गुणों का प्रयोग किया है, जिसका समाहार श्रीकृष्ण की मायाशक्ति से किया जा सकता है। वस्तुत: उपनिषदों में भी ब्रह्म के परस्पर विरोधी गुण दर्शाये गये हैं, किन्तु उसका समाधान ब्रह्म को माया-शक्ति के द्वारा वेदान्त दर्शन ने किया है। इसी मायाशक्ति की ओर संकेत कवि करता है और विरोधी गुणों का समाहार देता है। अपनी मायाशक्ति से ब्रह्म पुराण पुरुष होने के साथ नित्य नूतन है। अजन्मा होने पर वह माया-शरीर को प्रकट करता है। ब्रह्म के हर विरोधी गुण आभास मात्र हैं न कि वास्तविक।

- - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 14/70 (शिशु0)

आगे माघ वेदान्त के मायावाद को इस प्रकार लिखते हैं- अद्भुत संसार=सृष्टि रूपी माया किये हुए, संसार के नाश के समय में योग निद्रा ग्रहण करने वाले श्रीकृष्ण पर माया के द्वारा विजय चाहते हुए शिशुपाल ने स्वापन अस्त्र चलाया।[1] यहाँ पर माघ जी "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" की अवधारणा की ओर संकेत करते हैं। यह संसार मायाजनित है, जो भ्रमात्मक और अवास्तविक है, किन्तु व्यवहार में संसार सत्य और वास्तविक लगता है। वस्तुत: इसी आशय की ओर संकेत करने के निमित्त कवि "अद्भुत" विशेषण का प्रयोग करता है। संसार का स्वरूप अद्भुत है अर्थात् देखने में तो वह सत्य एवं वास्तविक लगता है किन्तु सारत: मिथ्या और भ्रामक है। इस दार्शनिक आशय के और स्पष्टीकरण के लिए कवि प्रलय-कालीन स्थिति को निरूपित करता है प्रलय-काल में माया की सृष्टि ब्रह्म में विलीन हो जाती है और मात्र अक्षुब्ध ब्रह्म की सत्ता व्याप्त रहती है। इसीलिए कवि श्रीकृष्ण को संसार के नाश के समय योग निद्रा में अवस्थित रूप में व्यक्त करता है।

कर्ता और हर्ता ईश्वर की व्याख्या

वेदान्त दर्शन में ईश्वर परब्रह्म का औपाधिक रूप है, वह संसार का कर्ता और हर्ता है। उसका दूसरा स्वरूप सगुण ब्रह्म के रूप में व्यक्त किया गया है। उस ब्रह्म की इच्छा से संसार की स्थिति का निर्धारण होता है। इस दार्शनिक तत्त्व का परिचय माघ को प्राप्त है। वे अपनी काव्य धारा में इस तथ्य को विशद् रूप से रखते हैं।

---

1. शिशुपाल० - 20/36

वे व्याकरणात्मक पद्धति में लिखते हैं-सृज,संहृ और शास् धातुओं का प्रयोग श्रीकृष्ण भगवान् के लिए कर्तृवाचक में ही ■ किया जासकता है, कर्मवाच्य में नहीं। तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण भगवान् सर्जक, संहारक, और शासक के रूप में जगत् में अवस्थित है, उनका न तो कोई सर्जक,संहारक और न ही कोई शासक ही है। वे एक मात्र परम शक्ति हैं। इसके विपरीत स्तु धातु कर्मवाचक के रूप में श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त हो सकता क्योंकि श्रीकृष्ण सबके लिए स्तुत्य हैं। वे किसी की सतुति नहीं करते हैं।[1] कवि जगत्-वन्दनीय के रूप में श्रीकृष्ण को व्यक्त कर सगुण ब्रह्म के रूप में ईश्वर की अवधारणा को निरूपित करता है। सगुण ब्रह्म {ईश्वर} ही जगत्-व्यवस्थापक हो सकता है,अत: श्रीकृष्ण जगत् के कर्त्ता और हर्ता के रूप में निरूपित हैं। इसी दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में माघ सोपाधिक ब्रह्म {ईश्वर} के रूप में विष्णु भगवान् को कल्पित करते हैं ।

इसी दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में माघ सोपाधिक विष्णु भगवान् संसार के स्रष्टा के साथ-साथ जगत् विनाशक भी हैं।सर्वशक्तिसम्पन्न होने के कारण वे ही प्रलय के सम्पादक होते हैं। उपमालंकार के द्वारा वे लिखते हैं कि सम्पूर्ण ताराओं के समूह को संसार के समान शीघ्र नष्ट कर सर्वाधिक महिमा वाला यह सूर्य एकाकी श्रीविष्णु की भाँति रात्रि रूपी कल्प बीत जाने पर आकाश रूपी क्षीर सागर में सो रहा है।[2]

- - - - - - - - - - - -

1. केवलं दधति कर्तृवाचिन: प्रत्ययानिह न जातु कर्मणि ।
धातव: सृजति संहृशास्तय: स्तौतिरत्र विरोतकारक: ।।

"शिशु0-14/66"

2. शिशुपालवधम् 11/66

वस्तुत: कवि व्यक्त करना चाहता है कि प्रलय काल में एक मात्र (ब्रह्म) ईश्वर सत्ता में रहता है और इस प्रलय का स्रष्टा स्वयं ईश्वर ही रहता है। जो (ब्रह्म) ईश्वर की कर्ता-शक्ति का अभिसूचक है।

कवि ईश्वर की कर्ता एवं हर्ता-शक्ति का स्पष्ट उल्लेख करता है । वे ईश्वर के त्रैगुण्य से सम्पन्न होने तथा उसके संसार-संचालन-सम्बन्धी कार्यों का निरूपण इस प्रकार से करते हैं। ये श्रीकृष्ण भगवान् रजोगुण का आश्रय लेकर संसार की रचना करते हुए ब्रह्मा हैं, सत्त्व गुण का आश्रय कर संसार का पालन करते हैं विष्णु हैं। तमोगुण का आश्रय कर संसार का संहार करते हुए शिव कहलाते हैं। अत: सत्त्व, रजस्, तमो रूप तीन गुणों से ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप त्रैविध्य को धारण करते हैं अर्थात् सत्त्वादि गुणत्रय से भिन्न ब्रह्माआदि की तीनों मूर्तियाँ इन्हीं की है।

ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का उल्लेख

माघ का काव्य-विषय श्रीकृष्णपरक है। श्रीकृष्ण आराध्य देव हैं। इसीलिए माघ को ईश्वर की शक्तिमत्ता के प्रतिपादन का अच्छा अवसर प्राप्त होता है। ईश्वर की व्यवस्था और अनुशासन को कवि श्रीकृष्ण भगवान् के पक्ष में लिखता है कि कल्पान्त में क्षुब्ध होता हुआ समुद्र भूतल को जल से आप्लावित करके मर्यादाहीन हो जाता है जब कि श्रीकृष्ण भगवान् ने यात्रा पथ पर अपरिमित सैनिकों

---

1. पद्म भूरिति सृजन्जगद्रज: सत्त्वमच्युत इतिस्थितं नयन् ।
संहर-हर इति श्रितस्तमस्त्रेधमेष भजति त्रिभिर्गुणै: ।।

"शिशुपालo-14/61"

से भूतल को आक्रान्त करते हुए भी अव्यवस्था नहीं की अर्थात् वे मर्यादाहीन नहीं हुए।[1] वस्तुत: माघ का कथन है कि श्रीकृष्ण असीम शक्ति से सम्पन्न हैं, वे सर्वशक्तिमान् हैं। उनकी शक्ति से सम्पन्न सांसारिक व्यवस्था के निमित्त ही प्रयुक्त होती है। कवि "अपरमित सैनिकों" शब्दों के प्रयोग से ईश्वर की अपरमित शक्ति (सर्वशक्तिमत्ता) को लक्षित करना चाहता है। ईश्वर मर्यादाहीन नहीं है अर्थात् उसके विधान का उलङ्घन असम्भव है- उसकी नीतियाँ मर्यादा पूर्ण होती हैं।

माघ श्रीकृष्ण भगवान् की अपरिमित सैन्य शक्ति का निरूपण करते हैं। वह सैन्य शक्ति भौतिक दृष्टि से अलक्ष्य तथा लौकिक व्यवहृति एवं चिन्तन से परे है। माघ श्रीकृष्ण की सैन्य-शक्ति से ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता की व्याख्या देना चाहते हैं। वस्तुत: इस दार्शनिक विशिष्टता का स्पष्ट उल्लेख कवि नहीं करता है, अपितु वह इसकी व्यञ्जना मात्र करता है। वे लिखते हैं कि बड़े पूज्य गुरुजनों का उलङ्घन लोकाचार से अनुचित माना जाता है, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने उपयुक्त लोकाचार के बिना अपनी सैनिक यात्रा की।[2] यहाँ स्पष्ट है कि ईश्वर सर्वशक्ति सम्पन्न है, उसे भौतिक बाधायें (गुरुजनादि के शिष्टाचार) परिबाधित नहींकर सकती हैं। किन्तु कवि की व्यंजना द्रष्टव्य है कि बड़े गुरुजन (चतुर लोग) भी ईश्वरीय गतिविधिको समझ नहीं सकते हैं। इस दिशा में चतुर जनों के लौकिक

- - - - - - - - - - - - - -

1. शिशुपाल0 12/36

2. शिशुपाल0 12/56 "

प्रयास असफल रहते हैं।

ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के पक्ष में माघ भाग्य (विधाता) की उत्कृष्टता को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। सारा संसार विधिसे नियन्त्रित है। लौकिक कार्यों के प्रयास विधि से नियन्त्रित है। लौकिक कार्यों के प्रयास विधि के सामने असफल रह जाते हैं। वस्तुत: (ईश्वर) विधि एक सर्वोच्च सत्ता है इसीलिए कवि लिखता है कि विधि के प्रतिकूल हो जाने पर कार्य केसारे प्रयास निष्फल हो जाते हैं।[1]

माघ स्वयं दार्शनिक प्रतिपादन करते हैं कि सारा संसार सर्वोच्च सत्ता के नियन्त्रण में प्रतिबद्ध है। संसार का क्रम उस सर्वोच्च सत्ता के संचालन में संचालित है। संसार में स.सर्वत्र एक अनुशासनादेश है। जिसमें उत्थान-पतन,जीवन-मरण एक अनिवार्य पक्ष है। कभी-कभी यही ईश्वरीय नियन्त्रण और अनुशासन भौतिक बुद्धि से अगम्य हो जाते हैं और सांसारिक प्रक्रम और परिणाम विचित्र और समझ से परे हो जाते हैं। हम इसी स्थिति को दुर्दैव की परिणति के रूप में संज्ञापित करते हैं। इसीलिए कवि लिखता है कि दुर्दैव का पिरणाम विचित्र ही होता है,क्योंकि एक ओर कुमुदवन श्रीहीन होता है तो दूसरी ओर कमल समूह शोभायुक्त होता है। एक ओर उल्लू प्रसन्न होता है तो दूसरी ओर चकवा अप्रसन्न। सूर्य उदय हो रहा है तो चन्द्रमा अस्त हो रहा है।[2]

---

1. "प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ, विफलत्वमेति बहुरनाधनता।" शिशु09/6"

2. श्लोक संख्या 11/64 "शिशुपाल"

अज्ञानादि से परे ईश्वर का सम्प्रयोग

वेदान्त दर्शन में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन है कि ईश्वर अज्ञान, अन्धकार, मोह, मायादि के बन्धन से परे है। उसे अज्ञानादि आबद्ध नहीं करसकते हैं। संसार के विषय-वासना, गुणत्रय, कर्मादि ईश्वर को बाधित नहीं कर सकते हैं। इस ईश्वर-गत दार्शनिक विशिष्टता को माघ ने श्रीकृष्ण भगवान् की प्रशस्ति में एतद् प्रकारेण प्रयुक्त किया है। क्षीर-सागर में सोने वाले भी, उस समस्त सेना के निद्रित होने पर अपनी सेना रूपी समुद्र के बीच में स्थित तथा तीनों लोकों के रक्षण रूप कार्य मे लगें हुए परम पुरूष श्रीकृष्ण भगवान् ही उन सोये हुए लोगोंमें जाग रहे थे। सबके अन्धकार {मोह} को नष्ट करने वाले प्रकाशस्वरूप उसमें भी कार्य व्यग्र श्रीकृष्ण भगवान् को निद्रित न होना उचित ही था।[1] यहाँ माघ जी संकेत करते हैं कि ईश्वर तीनों लोकों का कर्ता एवं सम्भरक है। उसे अज्ञान, अविद्या, मोह मायादि आच्छन्न नहीं कर सकते हैं, यद्यपि लोकत्रय इससे बाधित होता है। ईश्वर चिर प्रकाश {ज्ञान} सम्पन्न है। प्रलय-काल में ईश्वर {ब्रह्म} की एक मात्र सत्ता होती है। उस समय सारा जगत सुप्त सेना की भाँति प्रलयलीन हो जाता है।

---

1. श्लोक संख्या 20/36 "शिशु0"

निराकार ईश्वर का विवेचन

माघ प्रकारात्मक लेखन-विधि से दार्शनिक तत्त्व को उद्धृत करते हैं। शिशुपाल श्रीकृष्ण को कहता है कि हे अवगुण(दुर्गुणों से युक्त कृष्ण) तुम्हारा यह शरीर सम्पूर्ण दोषों से व्याप्त एवं सब गुणों से हीन है।तब तुम तीन गुणों (सत्त्व, रजस्,तमस्) को छोड़ने का व्यर्थ प्रयास करते हो। श्री कृष्ण भगवान् सत्त्व,रजस्-तमस् गुणों से अयुक्त हैं। अत: वे सांसारिक बन्धनों से विरक्त हैं। वस्तुत: कवि श्रीकृष्ण भगवान् के निर्गुण अर्थात गुणत्रयातीत होने का प्रकारान्तर से समर्थन करता है। यहाँ पर श्रीकृष्ण "ईश्वर" के निराकर होने का स्पष्टीकरण प्राप्त है।

अवाङ्मनोगम्य ईश्वर का निरूपण

शिशुपाल का दूत श्रीकृष्ण को अपमानित करने के निमित्त दुर्गुणात्मक शब्दों का प्रयोग करता है। किन्तु पक्षान्तर में माघ ने श्रीकृष्ण भगवान् की प्रशस्ति की है। इस प्रशस्ति में माघ ने श्रीकृष्ण भगवान् के अवाङ्मनोगम्य ईश्वरीय स्वरूप को स्पष्ट किया है। माघ जी लिखते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान् अनिश्चित रूप विशेष वाले हैं, जिनके रूप को न तो वचन से कहा जासकता है और न तो ध्यानादि करके जाना जा सकता है। श्रीकृष्ण भगवान् काला रूप वाले राम है। वे हीन तथा उत्तम सबका

---

1. श्लोक संख्या - 15/32 "शिशु0"

गमन करते हैं। अत: वे विश्वरूप होने से सर्वत्र विद्यमान है।[1] वेदान्त दर्शन में ईश्वरगत अवधारणा है कि ईश्वर के स्वरूप को भौतिक नेत्रों से नही देखा जा कसता है।योगी लोगो ने ध्यानादि से ज्ञात ईश्वरी स्वरूप को "नेति-नेति" व्यक्त किया है । ईश्वर की सत्ता परमाणुओं तक व्याप्त है किन्तु वह सत्ता सर्वथा अगम्य है।वस्तुत: इसी दार्शनिक तत्त्व से प्रेरित होकर माघ श्रीकृष्ण भगवान् के स्वरूप कौं वर्णन करते हैं।

ज्ञान - अज्ञान का विवेचन

ज्ञान-अज्ञान का विशद विवेचन करना दर्शन का ज्वलन्त विषय है। सभी भारतीय दर्शनों में अज्ञान को ही जन्म और मृत्यु का कारण स्थापित किया गया है। अज्ञान से मानसिक विकारों की संभूति होती है। ज्ञान से काम,क्रोध,मोह माया मात्सर्य आदि का नाश होता है। और तब साधक अपनी अभीष्ट साधना के योग्य बन पाता है। इस दार्शनिक अवधारणा के प्रकाश में माघ लिखते हैं कि मुख पर चन्द्रमा की शोभा को धारण किये हुए युधिष्ठिर ज्ञान से काम और क्रोध को नष्ट किये हुए यज्ञ के लिए प्रयुक्त हुए।[2] वस्तुत: मुख पर चन्द्रमा के प्रकाश के द्वारा

---

1. श्लोक संख्या - 16/50 "शिशु0"
2. श्लोक संख्या - 14/18 "शिशु0"

कवि स्पष्ट करता है कि युधिष्ठिर सत्त्व ज्ञान से सम्पन्न हैं। वे ज्ञान लब्ध साधक की भाँति साधना रूपी यज्ञ को करते हैं। यहाँ पर मीमांसा दर्शन का यज्ञानुष्ठान लाभ का दार्शनिक तत्त्व भी द्रष्टव्य है।

कवि सत्त्वज्ञान की प्राप्ति से साधक की स्थिति का निरूपण और विशद रूप से करता है। तत्त्व-ज्ञान प्राप्त कर लेने पर जिज्ञासु प्रसन्न -चित्त हो उठता है। उसके मन का समग्र संताप विनष्ट हो जाता है। उसे आत्मज्ञान की अनुभूति होती है। इस दार्शनिक तत्त्व का निरूपण कवि उपमालंकार के प्रयोग से करता है- कौस्तुभमणि की प्रकाशराशि, खुलते हुए नेत्रों वाले सैनिकों के लिए निर्मल प्रकाश देता हुआ दिगन्त तक उस प्रकार फैल गया जिस प्रकार प्रसन्न नेत्र वाले लोगों के लिए तत्त्वज्ञान देता हुआ महात्मा का अनुग्रह प्रणत लोगों में फैल जाता है।[1] माघ तत्त्वज्ञान को उसके स्वरूप -निर्धारण में निर्मल प्रकाश से युक्त निरूपित करते हैं। वे स्पष्ट कराना चाहते हैं कि तत्त्वज्ञान से साधक की बुद्धि निर्मल हो जाती है और उसकी बुद्धि के समक्ष मोहादि के न ठहर सकने की स्थिति प्राप्त होती है। कवि उस दार्शनिक पृष्ठभूमि का भी उल्लेख करना चाहता है, जिसमें साधक को जिज्ञासु होना अनिवार्य है और श्रवण, मनन, निदिध्यासन का अनुशीलन अपरिहार्य है। इसलिए कवि लिखता है कि महात्माओं का अनुग्रह केवल प्रणत (जिज्ञासु) लोगों को ही प्राप्त होता है।

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 2/38 "शिशु०"

माघ सुभाषित प्रयोग द्वारा ज्ञान-तत्त्व का निरूपण करते हैं। वे लिखते हैं कि शास्त्र अध्ययन एवं अध्यवसाय से ही कार्य-सिद्धि सम्भव है। शास्त्र अध्ययन वही व्यक्ति कर सकता है, जो भ्रम -शून्य बुद्धि से युक्त हो गया है अर्थात् जिसको बुद्धि निर्मल हो गयी है।[1] ज्ञान प्राप्ति के लिए बुद्धि का निर्मल होना अनिवार्य है।

इन्द्रियों का निरूपण

माघ जी अपने इन्द्रिय - ज्ञान को काव्य की धारा में सुन्दर ढंग से प्रयुक्त करते हैं। वे लिखते हैं कि शिष्ट रक्षा एवं दुष्ट निग्रह के लिए अनेक बार मत्स्यकूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, रामचन्द्र आदि बहुत से देहों में प्रादुर्भाव को धारण किये हुए पुराण पुरुष श्रीकृष्ण भगवान् ने विभक्त हुए नये-नये नगर द्वारों वाले इन्द्र-प्रस्थ नगर में युधिष्ठिर आदि पाँच राजकुमारों के साथ उस प्रकार प्रवेश किया, जिस प्रकार अनेक बार नाना योनि रूप देहों के प्रादुर्भाव को धारण किया हुआ पुराना पुरुष अर्थात् जीव विभक्त हुए इन्द्रिय रूप नव द्वारों वाले शरीर में पाँच इन्द्रियों के साथ प्रवेश करता है।[2] माघ यहाँ पर जीव के लिए नव इन्द्रियों से गुदा, शिश्न, मुख, दो नेत्र, दो कान, दो नासाद्वारा विवक्षित करते हैं। तथा पाँच इन्द्रियों से नेत्र, कान, जिह्वा, हाथ और पैर की ओर संकेत करते हैं। ईश्वर अवतारवाद तथा जीवसंवरण का ज्ञान भी द्रष्टव्य है।

---

1. शास्त्रं हि निश्चितधियां क्व न सिद्ध्येति -शिशु0-5/47
2. शिशुपाल0 13/28

अन्त: करण का सम्प्रयोग

अन्त:करण की विवेचना है वेदान्त दर्शन का मुख्य विषय रहा है। वेदान्त दर्शन में व्याख्यात है कि आन्तरिक विचारों की कारणभूत इन्द्रिय ही अन्त: करण होती है। अन्त: करण की निश्चयात्मक वृत्ति बुद्धि तथा संशयात्मक वृत्ति मन कहलाती है। वृत्तियों का उदयस्थल है अन्त: करण से ही उद्भूत होती है। इसी दार्शनिक विवेचना का समावेश माघ के इस अभिकथन -"अन्त:करण जिसका अभ्यास(बार-बार कल्पना) करता है कल्प वृक्ष उसी को फलते हैं।" -में प्राप्त होता है। बारम्बार की कल्पना अन्त:करण की कल्पनात्मक (संशयात्मक वृत्ति) से प्रोद्-भूत होती है। क्षुण्णम्(बारम्बार)शब्द के प्रयोग से कवि विवक्षित करता है कि अन्त: करण को वृत्तियाँ चन्चल एवं सतत प्रवाही होती हैं।[1]

अन्त: करण की चित्तवृत्तियाँ (संशयात्मक वृत्ति) रागी पुरुषों में अति चन्चल रहती हैं, जबकि योगियों में दमित रहती हैं। इन इन्द्रियों का चन्चल गमनागमन विषयों-शब्द,स्पर्श,गन्धादि- में अत्यधिक होता है। माघ जी इस दार्शनिक अवधारणा का प्रयोग दृष्टान्त के रूप में करते हैं कि रैवतक पर्वत पर कस्तूरी मृग के संसर्ग से सौरभयुक्त वायु रागी व्यक्तियों की भाँति विषयों में अधिक आसक्ति को प्राप्त कर रही है।[2] माघ स्पष्ट करना चाहते हैं कि

1• क्षुण्णं यदन्त:करणेन वृक्षा: फलन्ति कल्पोपदास्तदेव-"शिशुपालवधम् 3/59"

2• श्लोक संख्या - 4/61 "शिशुपालवधम्"

वायु के स्वभाव के सदृश रागाभिरित मन अस्थिर रहता है और विषयों की ओर चलायमान रहकर अपनी निश्चयात्मक वृत्ति को विकृत एवं स्खलित करता रहता है।

माघ नारद की प्रशंसा में प्रयुक्त श्रीकृष्ण के कथन के द्वारा अन्त:करण की निश्चयात्मक वृत्ति {बुद्धि} के विषय में लिखते हैं। कवि अन्तकरणस्थ मोहान्धकार की सुस्पष्ट व्याख्या करता है। वे लिखते हैं कि संसार में अपर्याप्त सहस्र किरणों वाला सूर्य जिस अन्धकार को दूर नहीं कर सकता है, उस अन्धकार को नारद के असंख्य तेज में बलपूर्वक दूर कर दिया।[1] बुद्धि में स्थित अन्धकार {अज्ञान} का समापन श्रवणादि के अनुशीलन के द्वारा ही सम्भव है। इसीलिए कवि नारद के उपदेश को महात्माओं के द्वारा जिज्ञासु को प्रदत्त उपदेश की भाँति प्रयुक्त करता है उपदेशादि के द्वारा ही बुद्धि का अज्ञान विनष्टता को प्राप्त होता है।

जगत्-रचना की विवेचना

उपनिषदों, पुराणों में ईश्वर की जो अवधारणायें हैं और सृष्टि की संरचना के लिए जो चिन्तन परम्परायें हैं उनसे कवि पूर्णत: अवगत है। कवि वेदान्त दर्शन के उस दार्शनिक विचार के संज्ञान को अपने काव्य में प्रयुक्त करता है, जिसमें

---

1. श्लोक संख्या - 1/27 "शिशु०"

जगत् की सृष्टि क्रमिक भूमियों में हुई है। कवि श्रीकृष्ण भगवान् को सर्वोच्च सत्ता के रूप में निरूपित करता है। ~~इसी सर्वोच्च सत्ता के रूप में निरूपित करता है।~~ इसी सर्वोच्च सत्ता को वेदान्त दर्शन में परब्रह्म के रूप में निरूपित किया गया है। सर्वोच्च सत्ता (ब्रह्म) जगत्-रचना मे निरपेक्ष रहती है और औपाधिक ईश्वर ही सृष्टि में संयुक्त होता है। माघ सर्वोच्च सत्ता के रूप में ब्रह्मा को प्रयुक्त करते हैं। माघ काल्पनिक आवरण में प्रस्तुत दार्शनिक तथ्य को इस प्रकार लिखते हैं-श्रीकृष्ण भगवान् ने पहले जल की सृष्टि की, फिर उस जल में दुर्वार वीर्य को छोड़ा, हिरण्यमय (सुवर्ण का विकार रूप) वह वीर्य ब्रह्मा का कारण हुआ और उस ब्रह्मा ने संसार की सृष्टि की।[1] वेदान्त दर्शन की जगत्-रचना विषयक अवधारणा द्रष्टव्य है। ब्रह्म सर्वोच्च मूल तत्त्व(सत्ता) है। वह जगत्-रचना में संयुक्त नहीं होता है, अपितु अपनी सात्त्विक माया से ईश्वर की सृष्टि करता है। जिसके द्वारा जगत् की क्रमिक रचना होती है। कवि द्वारा वर्णित जल की सृष्टि और दुर्वार वीर्य सर्जन ब्रह्म की माया-शक्ति के तुल्य है। इसमें "दुर्वार" विशेषण शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है क्यों कि बिना माया-शक्ति के सृष्टि का चरण स्थापित नहीं हो सकता है। हिरण्यमय रूप का विकार माया के भावात्मक स्पन्दन को इंगित करता है।

---

1. पूर्वमेव किल सृष्टवानपस्तासु वीर्यमनिवार्यमादधौ ।
तच्च कारणमभूद्धिरण्मयं ब्रह्मणोऽसृजदसाविदं जगत् ॥14/67॥शिशु॰

माघ उत्प्रेक्षालंकार द्वारा लिखते हैं कि निष्प्राण जीवों के अंगों से व्याप्त युद्धभूमि मानो समाप्त प्राय और आधा रचे गये रूपों से व्याप्त ब्रह्मा की सृष्टि-रचना के गृह के समान थी।[1] यहाँ पर माघ की दार्शनिक व्यन्जना विवेच्य है। संसार की विरचना ब्रह्मा {ईश्वर} करते हैं। अर्थात् ब्रह्मा के अतिरिक्त संसार की रचना कोई नहीं कर सकता है। मात्र रूपों से व्याप्त संसार की रचना कोई नहीं कर सकता है। उसमें सार तत्त्व "प्राण" का प्रक्षेपण अपरिहार्य है। वेदान्त दर्शन की ईश्वर की अवधारणा यहाँ व्यन्जित है। ईश्वर ही जगत् का कर्ता और हर्ता है। वह जगत् में प्राण-तत्त्व को क्रमशः आभासित कराता है।

सोपाधिक ईश्वर से अनेक जड़,जंगम तो उत्पन्न होते है, किन्तु उनका बाह्य स्वरूप नश्वर और अचिर रहता है उन जड़-जंगमों में अनश्वर ब्रह्म व्याप्त रहता है। इस दार्शनिक विचारणा का परिचय कवि को विधिवत् प्राप्त है। कवि आलंकारिक शैली में लिखता है कि रथों, हाथियों,घोड़ों,युद्धभेरियों आदि की सम्मिलित आवाजों से आकाश उन तरह अव्यक्त {अस्पष्ट स्वर युक्त} हो गया, जिस प्रकार सर्वतो व्याप्त तथा अभेद को प्राप्त होने वाला ब्रह्म रूप महा-प्रणाद अव्यक्त हो जाता है।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 18/79 "शिशुपालव."

2. श्लोक संख्या 18/3 "शिशुपालव."

यहाँ यह स्पष्ट है कि यह जीव है, यह ईश्वर है, इस प्रकार उपाधि के नष्ट होने से ब्रह्म भेद शून्य हो जाता है। वेदान्त दर्शन का ब्रह्म स्वरूप तथा तज्जन्य सृष्टि उल्लेखनीय है।

सृष्टि की रचना क्रम से हुई। इस दार्शनिक तत्त्व को माघ इस प्रकार लिखते हैं कि पिघलाये गये सुवर्ण के समान तथा पश्चिम समुद्र के जल में आधा डूबा हुआ सूर्य-बिम्ब सृष्ट्यारम्भ में ब्रह्मा के नख से दो भागों में विदीर्ण विशाल संसार के आश्रयभूत हिरण्यमय ब्रह्माण्ड के एक टुकड़े के समान शोभने लगा।[1] यहाँ पर माघ के सृष्टि-रचना गत परिज्ञान का परिचय मिलता है।

आत्मा और देह का वैभिन्न्य

देह तथा आत्मा एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। इस दार्शनिक तत्त्व को माघ सुन्दर ढंग से लिखते हैं। किसी शूर वीर ने शत्रुओं के मारने के लिए म्यान से तलवार को तथा शरीर से आत्मा को एक साथ बाहर निकाल लिया।[2] यहाँ कवि की व्यञ्जना स्पष्ट है कि नाश देह का होता है, आत्मा तो सर्वथा अनश्वर है।

1· श्लोक संख्या -9/9 "शिशु0"

2· विहन्तु विद्विषस्तीक्ष्णः सममेव संसहते । "19/49 शिशु·"

जीव - संवरण का उल्लेख

जीव सत्य तथा चिरन्तन है और देह मिथ्या और नश्वर है। जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में संवरण करता है। प्रथम शरीर के निर्योग्य हो जाने पर जीव दूसरे शरीर का आश्रय लेता है। इस दार्शनिक परिज्ञान को माघ दृष्टान्त के रूप में व्यक्त करते हैं। पूर्व परिचित शरीर के समान पूर्व परिचित वृक्ष के, दुर्दान्त कर्म वाले यमराज के समान हाथी द्वारा नष्ट किये जाने पर बन्दर क्षणमात्र में दूसरे वृक्षों पर उस प्रकार संचार करने लगे जिस प्रकार पूर्व परिचित देह के दुर्दान्त कर्म वाले यमराज के द्वारा नष्ट किये जाने पर आत्मा दूसरे देह को पाकर संचार करने लगता है।[1] यहाँ पर दार्शनिक तत्त्व विवेच्य है कि जीव पूर्व शरीर को त्याग कर तत्काल दूसरे शरीर के आश्रय को ग्रहण करता है दुर्दान्त कर्म वाला यमराज, अर्थात् मृत्यु जीव का प्रबल (कर्म) बन्धन है, जो उसे पुनर्देहवास के लिए विवश करता है।

माघ की जीव-संवरण की अवधारणा को और विशद रूप देते हैं। वे व्यक्त करना चाहते हैं कि प्राण अस्थिर (चञ्चल) होता है, अर्थात् विभिन्न जन्मों में संवरण करता है प्राण अतिसूक्ष्म होता है जो मन, बुद्धि से अग्राह्य होता है।

---

1. श्लोक संख्या - 12/55 "शिशु."

इस तथ्य का संकेत प्रस्तुत कथन से प्रकट है- कुछ शूर वीरों ने युद्ध रूपी बड़े बाजार में आकर देह के भीतर चन्चल प्राण रूपी मूल्यों से पृथ्वी और आकाश व्यापी कीर्ति को खरीदा। वस्तुत: प्राण चन्चल अर्थात् जन्म-संचरणीय है। वह बहुमूल्य अर्थात् सार तत्त्व भी है।

माघ ने शूरवीरों की मृत्यु पर प्राणों को अर्थात् जीव को दिव्य मूर्ति से संज्ञापित करते हैं। कवि स्पष्ट करना चाहता है कि जीव लौकिक गुण और स्वरूप से विमुक्त है अत: वह विनष्ट नहीं होता है। प्राणान्तर पर वह देहान्तरित होता है। इसीलिए कवि लिखता है कि प्राणान्त पर जीव भी अन्तरिक्ष की ओर उद्गत होता है।[2]

प्रलय-विषयक परिकल्पना का प्रयोग

वेदान्त और सांख्य दर्शन में प्रलय की परिकल्पना प्राप्त है। प्रलय-काल में सर्वोच्च सत्ता (ब्रह्म) ईश्वर अपनी समस्त सृष्टि को विनष्ट कर देता है। और वह समस्त सृष्टि ईश्वरहीन हो जाती है। परत: वेदान्त दर्शन में चौदह

---

1. श्लोक संख्या 18/15 "शिशु."
2. तन्वा: पुंसी नन्दगोपात्मजाया: कंसेनेव स्फोटितायां गजेन ।
   दिव्या मूर्तिव्योममैरुत्पतन्ती वीक्षाम्से विस्मितैश्चाणिडकेव ।।
   "18/50 शिशु."

भुवनों की सृष्टि की भी परिकल्पना प्राप्त है। इस दार्शनिक अवधारणा का परि-चय माघ को समुचित रूप से प्राप्त है। वे इस दार्शनिक तथ्य के प्रकाश में निरूपित करते हैं कि युगों के अन्त (प्रलय काल) में जीवों का उपसंहार करने वाले कटभारि (श्रीकृष्ण) के जिस शरीर में चौदह भुवनों का विस्तार व्याप्त है, उसी शरीर में नारद के आने पर हर्ष नहीं समा सका।[1]

माघ का संकेत है कि ईश्वर सर्व व्यापक है, अर्थात् समस्त सृष्टि (चौदह-भुवन) ईश्वर के व्यापक विस्तार में अन्त: समाहित है। ईश्वर सृष्टि का कर्ता और हर्ता है। प्रलय के बाद जीव ईश्वर में विलीन हो जाता है, इसलिए कवि लिखता है युगान्त पर जीव की उपसंहृति होने पर जीव कैटभारि का उदरस्थ हो जाता है। कवि आगे लिखता है कि प्रलय-काल में क्षीर-सागर में सोने वाले जिस श्रीकृष्ण भगवान् की विशाल कुक्षि (उदर) ने भुवनों (तीनों लोकों) का पान कर लिया था, उस श्रीकृष्ण भगवान् को पौरांगनाओं ने अनिमेष दृष्टि से देखा।[2] प्रलय काल से क्षीर सागर में ईश्वर की जगत्सृष्टि की शक्तियाँ विश्रान्त रहती हैं। समस्त सृष्टि की उद्भावना, जो तीनों लोकों में व्याप्त रहती है, वह ईश्वर में बरबस लीन हो जाती है।

---

1. श्लोक संख्या 1/23 "शिशु०"
2. श्लोक संख्या 13/40 "शिशु०"

ईश्वर - भक्ति का निरूपण

वेदान्त दर्शन में मोक्ष(मुक्ति) प्राप्ति के लिए कई सोपानों की व्यवस्था की गयी है। ज्ञान-योग, कर्म-योग ,भक्ति-योग आदि ईश्वर साक्षात्कार के कई सोपान या मार्ग विनिश्चित किये गये हैं। इनमें भक्ति-मार्ग अति सहज एवं सरल है। भक्ति-मार्ग से ब्रह्म के सगुण रूप की उपासना की जाती है। भक्ति-साधना में श्रद्धा अविहत एवम् अतर्क्य रहती है। इस साधना-पद्धति में साधक को ईश्वर के प्रति सुप्रफुल्ल एवं शान्त चित्त रहना चाहिए। इसी विचारणा को माघ इस प्रकार व्यक्त करते हैं- निष्कपट आदर से विकसित होती हुई भक्ति वाले पाण्डव श्रीकृष्ण के पास उसी प्रकार शान्त एवं प्रफुल्ल मुद्रा से पहुँचे, जिस प्रकार शिष्य गुरू के पास बैठता है।[1] यहाँ पर ईश्वर गुरू की भाँति निरूपित है और शिष्य भक्त की भाँति । ईश्वर-भक्ति का परिपाक अत्यन्त मनोहारी एवं कष्ट-नाशक होता है। माघ भीष्म पितामह के शब्दों में भक्ति-उपासना के फल का निरूपण करते है। भक्तवत्सल श्रीकृष्ण भगवान् में भक्ति करने वाले लोग इनका सर्वदा स्मरण करने से क्षीण पाप वाले होकर श्रीकृष्ण भगवान् के संसार के क्लेश रूपी नाटक की विडम्बना की समाप्ति को प्राप्त करते हैं।[2] यहाँ स्पष्ट है कि ईश्वर भक्ति से भक्त-साधक सांसारिक क्लेशों से छूटकर मुक्त हो जाते हैं। वे सांसारिक आवागमन के भवचक्र से विमुक्त हो जाते है।

1• श्लोक संख्या - 13/24 "शिशुपाल•"

2• श्लोक संख्या - 14/63 "शिशुपाल•"

इस प्रकार हम देखते है कि माघ अपने दार्शनिक पाण्डित्य का सम्प्रयोग विविध रूपों में करते हैं। वे अपने वेदान्त-दर्शन के व्यापक ज्ञान को शिशुपालवध में बहुत ही मन्जुल रूप से प्रयुक्त करते हैं। वे अजर-अमर ब्रह्म, अनादि ब्रह्म सर्वव्यापी ब्रह्म, ईश्वर-सर्वशक्तिमत्ता, मन- चित्त, इन्द्रियों जगत्-रचना, आत्मा और देह, ज्ञान-अज्ञान, जीव संचरण मोक्ष आदि का दार्शनिक चित्रण अपनी काव्यधारा में सफलता पूर्वक करते हैं। यह सर्वथा सिद्ध होता है कि माघ वेदान्त के उद्भट पण्डित थे और उस दार्शनिक ज्ञान को वे अपने काव्य-लोक की कल्पनाओं में अति उन्नत रूप से समाविष्ट करते हैं।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

सांख्य - दर्शन

सत्कार्यवाद का उद्धरण

महाकवि माघ को सांख्य दर्शन का समुचित ज्ञान प्राप्त है। वे सांख्य के प्रमुख तत्त्वों को अपनी काव्य-धारा में प्रयुक्त करते हैं।

सत्कार्यवाद का सिद्धान्त है कि सत्कारणसे सत् कार्य की उत्पत्ति होती है, असत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। माघ के निम्न काव्य-लेखन में सत्कार्यवाद का सिद्धान्त द्रुष्टव्य होता है। माघ का वर्णन है कि आपका (नारद का) दर्शन त्रिकाल में शरीरधारियों की योग्यता को प्रकट करता है क्योंकि आपका दर्शन वर्तमान काल में पाप को नष्ट करता है, भविष्यत् काल में आने वाले शुभों को कारण है तथा भूतकाल में पहले किये गये पुण्यों का परिणाम है।[1] नारद जी का शुभ दर्शन सत् कारण है, जिससे वर्तमान काल में सत्कार्य-पाप का नाश -होता है। तथा भविष्यत् काल में सत् कार्य-आगत शुभ (कल्याण) का लाभ प्राप्त होता है। भूतकाल में सत् कारण पूर्वकृत पुण्य हैं जिससे सत् कार्य-नारद का शुभ दर्शन की प्राप्ति होती है। इस प्रकार माघ का सांख्य दर्शन के सत्कार्यवाद से परिचय का प्रमाण यहाँ प्राप्त होता है।

---

1. श्लोक संख्या 1/26 "शिशु"

सत्त्व, रजस्, तमस् गुणों का विवरण

सांख्य दर्शन में गुणत्रय का विवेचन प्राप्त है। इसमें सत्त्व, रजस्, तमस्, तीनों गुणों की परिगणना है। तमस् की प्रकृति मूढ़ता, अज्ञानता, क्रियाविरोधकता अवसाद से संयुक्त रहती है। तमोगुण को कृष्ण (काले) रंग से कल्पित किया गया है। माघ इस दार्शनिक विवेचना से सुपरिचित हैं। अत: वे तामसिक प्रकृति का उल्लेख करते हैं कि कालयवन, शाल्व, रुक्मी आदि राजा हैं। तामसिक प्रकृति वाले वे भी अधिक दोष युक्त उस शिशुपाल का उस प्रकार अनुगमन करेंगे, जिस प्रकार अंधकार सायङ्काल का अनुगमन करता है।[1] माघ कालयवनादि राजाओं की मूढ़ता, अज्ञानादि की ओर संकेत करते हैं। उनकी क्रियावरोधकता, अवसादकतादि को कवि सायङ्काल के अन्धकार से व्यक्त करता है। अन्धकार एवं सायम् को तमोगुण के प्रतीक के रूप में कल्पित किया जाता है।

गुणत्रय की अवधारणा में एक गुण अन्य दोनों गुणों के सहयोग से ही क्रियाशील होता है। सत्त्वगुण का विकास अन्य सहायक गुणों के सहयोग से ही समाहित होते हैं। माघ इस दार्शनिक अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में लिखते हैं कि सूर्य

- - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 2/88 "शिशु॰"

किरणों के संसर्ग से सूर्यकान्त मणि उसी प्रकार अग्नि उगलता है जिस प्रकार गुणों का उत्कर्ष आधार के गुण के साहचर्य से होता है।[1] यहाँ पर सूर्यकान्त मणि की प्रकाशकता तेजस्विता सत्त्वगुण के स्वरूप के समरूप है। यहाँ पर सत्त्वगुण का वृद्धि अभिव्यक्त है। रैवतक पर्वत की पृष्ठभूमि "आधार" है जिसमें अन्येतर गुणों का समवाय प्राप्त है।

सत्त्वगुण प्रकाशक होता है और वह चित्त को सद्वृत्तियों की ओर उन्मुख करता है। माघ इस दार्शनिक तत्त्व के प्रकाश में लिखते हैं कि महायज्ञ में युधिष्ठिर सत्त्व गुणों से सम्पन्न हैं, अतएव वे विकारहीन चित्त वाले हो गये हैं। वे लोभ और अभिमान से विरक्त हो गये हैं।[3]

बुद्धि और मन का निरूपण

सांख्य दर्शन की अवधारण है कि आत्मा (पुरूष) को विषयों का ज्ञान बुद्धि, मन और इन्द्रियों से होता है। जब इन्द्रियों और मन के व्यापारसे विषयों का आकार बुद्धि पर अंकित हो जाता है और बुद्धि पर आत्मा के चैतन्य का प्रकाश पड़ता है तब हमें उन विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। इस दार्शनिक तत्त्व की समरूपता माघ के निम्न उद्धरण में प्राप्त होती है। उद्धव जी

---

1. फलद्भिरूष्णांशुकराभिमर्शात्कार्शानवं धाम पतङ्गकान्तैः ।
   शशंस यः पात्रगुणाद् गुणानां संक्रान्तिमाक्रान्तगुणातिरेकाम् ।।

   "शिशु॰ 4/16"

2. श्लोक संख्या – 8/68 "शिशुपाल॰"   3. श्लोक संख्या 14/44 "शिशु॰"

कहते हैं कि विजयाभिलाषी राजाको अपनी बुद्धि तथा उत्साह दोनों को रखने का प्रयास करना चाहिए। बुद्धि और उत्साह दोनों विजयाभिलाषी राजा के भविष्य में आने वाली आत्म-शक्ति की जड़ हैं।[1] माघ के इस अभिकथन में लौकिक विवरणसे आध्यात्मिक धारणा की ध्वनि प्राप्त की जा सकती है। विजयाभिलाषी राजा आध्यात्मिक भूमि पर उस जिज्ञासु साधक के रूप में स्थापित किया जा सकता है, जो साधक सतत साधना से भविष्य में आत्म बोध को प्राप्त करता है, अपनी बुद्धि और मन {उत्साह} को विषयों से विरत कर आत्मानुभूति करने का प्रयास करता है।

गीता में उल्लेख है कि जो दोष दृष्टि वाले मूर्ख {विमूढ़} लोग मेरे मत के अनुसार नहीं चलते हैं, वे नष्ट चित्त {विवेकहीन} वाले कल्याण से भ्रष्ट हो जाते हैं।[2] वस्तुत: विवेक पूर्ण बुद्धि के लिए विकार रहित चित्त का होना अपरिहार्य है। इस दार्शनिक विचारणा के समरूप माघ का कथन उल्लेखनीय है- मद से मूढ़ बुद्धि वालों में विवेक कहाँ रहता है?[3] सांख्य दर्शन में अहंकार {मद} बुद्धिजन्य है, जो आत्मोन्नति में बाधक होता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 2/76 "शिशु."

2. ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
   सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतस: ॥
   "गीता 3/32"

3. श्लोक संख्या 13/[illegible] "शिशु."

सांख्य दर्शन में मन ।। वीं इन्द्रिय के रूप में परिगणित है। मन का स्वभाव चञ्चलता है। यह चञ्चलता लक्ष्य-प्राप्ति [ज्ञान-प्राप्ति] में बाधक होती है। इन्द्रियों के द्वारा विषय-भोग की इच्छा मन में सहज रूप से समुत्पन्न होती है। विषय"भोगेच्छा के कारण मन की प्रवृत्ति में अन्य बाधक-विकार-उत्पन्न होते हैं। महाकवि माघ मन के इस सहज स्वभाव से अच्छी तरह परिचित हैं। वे लिखते हैं कि श्रीकृष्ण की सेना को देखकर शिशुपाल क्रुद्ध हो गया, क्योंकि जब विकार को दबाने वला धीर मन भी अधिक विकार को पाकर विकृत हो जाय, तो इस विषय में क्या कहना है।[1] प्रस्तुत प्रसंग में मन के स्वाभाविक गुण का उदाहरण अवलोकनीय है। मन का स्वाभाविक गुण धैर्य नहीं है। मन का स्वाभाविक गुण चञ्चलता है। सहज विकार ग्रस्त हो जाना मन का एक और स्वाभाविक गुण है।

इन्द्रिय का निरूपण

माघ जी लिखते हैं कि विषय-ग्रहण करने की शक्ति नेत्र की भाँति सूर्य सहस्रों किरणों के साथ अन्धकार को दूर कर दिया।[2] माघ जी यहाँ पर नेत्र को एक सबल इन्द्रिय के रूप में निरूपित करते हैं, जो विषयों को ग्रहण करने में प्रमुख भूमिका निभाता है।

---

1. श्लोक संख्या -15/11
2. सरसिज वन कान्तं विभ्रमभ्रान्त वृत्तिः ।

   कर नयन सहस्रं हेतुमालोक्य शक्तेः ॥

   "11/56 शिशु."

प्रकृति और पुरूष की विवेचना

सांख्य दर्शन में विवेचित है कि जगत् का फल भोक्ता पुरूष (आत्मा) नहीं होता है, वह तो हमेशा उदासीन रहता है। बुद्धि ही फल का भोग करती है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पुरूष ही फल का भोग करता है। इस दार्शनिक पृष्ठभूमि में माघ लिखते हैं कि श्रीकृष्ण केवल युद्धभूमि में उपस्थित रहें। उन्हें युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। समस्त शत्रु सेना का संहार तो हमारी सेना ही कर देगी। किन्तु स्वामी होने के कारण श्रीकृष्ण को विजय का फल प्राप्त होगा। वस्तुत: कहा जायेगा कि श्रीकृष्ण भगवान् ने ही शत्रुओं को संहृत किया, उन पर विजय पायी। यह उसी प्रकार होगा जिस प्रकार सांख्य मत में बुद्धि ही संसार में बद्ध होती है, मुक्त होती है, सब कुछ अनुभव करती है किन्तु पुरूष बद्ध हुआ, मुक्त हुआ—आत्मा को सुख हो रहा है, आत्मा को दु:ख हो रहा है—इस प्रकार बुद्धि का भोग दृष्टि मात्र आत्मा का कहा जाता है।[1]

माघ जी पुरूष (ईश्वर) के स्वरूप का स्पष्ट उल्लेख करते हैं। श्रीकृष्ण (पुरूष) की प्रशस्ति में नारद की उक्ति है कि प्राचीन वृत्तान्त को जानने वाले

- - - - - - - - - - - - - -

1. विजयस्त्वयि सेनाया: साक्षिमात्रेनपदिश्यताम् ।
फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि ।। "शिशु॰ 2/59"

2. उदासितारं निगृहमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथन्चन ।
बहिर्विकारं प्रकृते: पृथग्विदु: पुरातनं त्वां पुरूषं पुराविद: ।।
"शिशु॰ 1/33"

कपिल तथा सनत्कुमार आदि श्रीकृष्ण भगवान् को {पुरूष को} क्रियाशून्य, मन को वश में किये हुए योगियों के द्वारा उपनिषद् दृष्टि से किसी प्रकार साक्षात्कार किये गये, विकार से बहिर्भूत, प्रकृति से पृथक् आदि पुरूष हैं।[1] यहाँ पर क्रियाशून्य होने से तात्पर्य है कि प्रकृति के स्वार्थ रूप में प्रवृत्त होने पर भी पुरूष का उससे अस्पृष्ट रहना। सांख्य मत में प्रकृति त्रिगुणात्मिका है और पुरूष {ईश्वर} क्रिया-रहित, साक्षिमात्र, दुर्ज्ञेय, विकारहीन तथा सत्त्वादिगुणत्रय से पृथक् स्थापित है, नारद की उपर्युक्त उक्ति से व्यञ्जित है कि श्रीकृष्ण भगवान् {पुरूष} की साक्षात्कार के परम लक्ष्य हैं।

पुरूष और प्रकृति की संयुक्त स्थिति को माघएक व्यञ्जनापूर्ण उक्ति मे सुन्दरढंग से प्रस्तुत करते हैं। वे लिखते है मृदुता युक्त तेज विषयों को भोगने में उसी प्रकारसमर्थ होता है, जिस प्रकारपात्रस्थ तैलादिक के भीतर में स्थित बत्ती से दीपक तैलादिक को ग्रहण करता है।[2] माघ मृदुता युक्त तेज से आत्मा {पुरूष} की ओर संकेत करते हैं। आत्मा के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए कवि दीपक की लौ के दृष्टान्त का प्रयोग करता है। दीपक की लौ प्रकाशक और तेजयुक्त

- - - - - - - - - - - -

1. उदासितारं निगृहमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथन्चन ।
   बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरूषं पुराविदः।।
   "शिशु0 1/33"

2. श्लोक संख्या 2/85 "शिशु"

होती हैं। विषय रूपी तैलादिक का भोग सीधे {साक्षात्} न करके बत्ती के साहा-य्य से करती है। बत्ती को माध्य महदादि तत्त्वों के रूप में प्रयुक्त करते हैं। क्योंकि आत्मा {पुरूष} मात्र द्रष्टा होता है, वह तो निष्क्रिय होता है। समस्त कार्य व्यापार महदादि प्रकृति ही आत्मा के चैतन्य में करती है। यहाँ दीपक की लौ वर्तिका को चैतन्य रूपी सक्रियताप्रदान करती है और वर्तिका तैल को ग्रहण करती है।

पुरूष के स्वरूप की व्याख्या में कवि का लेखन कार्य देखा जा सकता है।[1] यद्यपि वे स्पष्ट रूप से नहीं लिखते हैं किन्तु पुरूष के स्वरूप की सुपष्ट समरूपता प्रस्तुत करते हैं। वे लिखते हैं कि स्वयं क्रियाशून्य, सर्वसमर्थ, विजिगीषु राजा के दूसरे गुप्चरादि के द्वारा सम्पादित प्रयोजन उस प्रकार गुण बन जाते हैं जिसप्रकार स्वयं कुछ नहीं करने वाले भी व्यापक आकाश के दूसरे पटहादि के द्वारा उत्पादित शब्द गुण बन जाते हैं।[1] यहाँ राजा की क्रियाशून्यता, सर्वसमर्थता, विजिगीषुता, राजकता, और आकाश की व्यापकता तथा निष्क्रियतता पुरूष{आत्मा} के लक्षण एवं स्वरूप के समरूप हैं। गुप्तचरादि, पटहादि के प्रयोजन तथा कार्य प्रकृति के कार्य समतुल्य है। जिस प्रकार राजा और आकाश की अनुपस्थित में गुप्तचरादि और पटहादि कोई कार्य नहीं कर सकते हैं। उसी प्रकार प्रकृति पुरूष के चैतन्य के बिना कोई कार्य

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 2/91 "शिशु0"

नहीं कर सकती है। यद्यपि गुप्चरादि के प्रयोजन एवं पटहादि के शब्द न तो राजा के और न आकाश के होते हैं । तदपि वे राजा और आकाश के कार्य और गुण मान लिये जाते हैं, इसी प्रकार पुरूष को विषयादि का भोक्ता मान लिया जाता है। शरीर, इन्द्रियाँ उसके उपकरण हैं। शरीर, इन्द्रियादिक के गुण आत्मा के गुण नहीं हैं, फिर भी अज्ञानवश ऐसा मान लिया जाता है।

सांख्य का मत है कि आत्मा स्वयं पुण्य पापादि कर्म नहीं करता है, बल्कि बुद्धि करती है, फिर भी आत्मा को उपस्थिति होने से वह ही उन कार्यों को करने वाला माना जाता है। उसी प्रकार युधिष्ठिर यज्ञ में स्वयं हमनादि कार्य नहीं करते थे, ऋत्विज लोग ही करते थे किन्तु उसका फल युधिष्ठिर अपने को उन कर्मों को करने वाला मानते थे।[1] माघ जी यहाँ सांख्य दर्शन के पुरूष स्वरूप की स्पष्ट रूप से व्याख्या करते हैं ।

जगत् - सृष्टि का उद्धरण

गुणत्रय के सम्बन्ध का प्रतिफलन ही जगत् सृष्टि है। सांख्य का विचार है कि तीनों गुण निरन्तर परिवर्तनशील रहते हैं। विकार या परिणाम गुणों का स्वभाव है। प्रलयावस्था में प्रत्येक गुण दूसरे से छिपकर स्वतः अपने में परिणत हो

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. तस्य सांख्य पुरूषेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः ।
कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद् वृत्तिभाजि करणे यथर्त्विज

"14/19 शिशु0 "

जाते हैं। इस अवस्था में गुणों में कोई कार्य नहीं होता है, किन्तु जब तीनों गुणों में से एक प्रबल हो जाता है और शेष उसके अधीन हो जाते हैं, तब विकारों की उत्पत्ति होती है और सृष्टि का आरम्भ होता है। सांख्य के इस जगत्-विचार से माघ पूर्णतः अवगत थे। इसीलिए वे काव्य को दार्शनिक बिन्दु पर लाने के निमित्त लिखते हैं पूजनीय, चतुर्मुख ब्रह्मा संसार की सृष्टि करने की इच्छा करने पर सत्त्व-गुण को तिरस्कृत करने वाला रजोगुण बढ़ गया। अत्यन्त बढ़ी, सर्वतोगामिनी, युद्ध में अनुराग करने वाली, संसार को नष्ट करने की इच्छा करती हुई सेना की दूसरे जीव जन्तुओं को अन्तर्हित करने वाली धूलि बढ़ गयी।[1] माघ ईश्वर (पुरुष) को ब्रह्मा के रूप में व्यक्त करते हैं। सृष्टिकाल में सत्त्व की प्रधानता रजोगुण से दमित हो जाती है। जिसका कवि स्पष्ट उल्लेख करता है, किन्तु प्रलय काल में, तमोगुण की प्रधानता हो जाती है और अन्य दोनो गुण सत्त्व और रजस्-दमित रहते हैं। माघ जीव-जन्तुओं को अन्तर्हित करने वाली धूलि से प्रलय काल की व्यंजना करते हैं, जहाँ धूलि का अन्धकत्व सर्वगामिता तमोगुण के बाधक्य को लक्षित करता है।

---

1. श्लोक संख्या -17/54 (शिशु0)

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महाकवि माघ सांख्य दर्शन के तत्त्वों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने सांख्य दर्शन के तत्त्वों का विशद रूप से प्रयोग शिशुपालवध में किया है। वे गुणत्रय-विवेचन, पुरुष-प्रकृति की मान्यता, जगत्-सृष्टि की परिकल्पना, मन, बुद्धि, अहङ्कार आदि तत्त्वों का निरूपण अपने काव्य में सम्प्रयुक्त करते हैं। माघ अपनी भङ्गिमापूर्ण कल्पनाओं से दार्शनिक तत्त्वों को बहुत ही कुशलता पूर्वक कर देते हैं।

0 0 0
0

योग - दर्शन

चित्तवृत्ति का निरूपण

माघ की दार्शनिक पाण्डित्य योग- दर्शन मे भी प्राप्त है। माघ पाण्डित्य - प्रदर्शन को सुभाषित लेखन - शैली के द्वारा भी व्यक्त करते हैं। योग- दर्शन की चित्तवृत्ति के निरूपण के लिए वे लिखते हैंकि मलिन आत्मावालों के लिए परिचय प्रधान नहीं होता है। वस्तुत: माघ मलिन आत्मा शब्द के प्रयोग द्वारा दुष्ट{कलुषित} चित्तवृत्ति को लक्षित करते हैं, क्योंकि आत्मा कभी भी मलिन नहीं हो सकती है। आत्मा तो विशुद्ध है, यह संसार ही मलिन है। द्वितीयत:, दुष्ट{कलुषित} चित्त एकाग्र नहीं हो सकता है। विषयानुराग में विविध प्रकार से चित्त चन्चल रहता है। परिचित स्थान पर आत्मा {चित्त} का स्थायी न होने से कवि चित्त की चन्चलता को लक्षित करता है। [1]

माघ जी इस तथ्य को स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि जिस चित्त की चन्चलता बाधित हो गयी है और शुद्ध रूप से अवस्थित है।वह चित्त कभी भी स्खलित नहीं होगा,इसकी कोई प्रत्याभूति {गारन्टी} नहीं है। चित्त विषय वासनाओं के संसर्ग में आने पर अपनी स्थिरता {शुद्धता} से विचलित हो सकता है और क्रमश: स्खलनोन्मुख हो सकता है। चित्त को स्थिर रखने के लिए अतिशय मनोशक्ति को रखने की आवश्यकता पड़ती है। इसी लिए कवि लिखता है कि

1.---- श्लोक संख्या 7/6। "शिशु0"

कि प्राय: शुद्ध चित्त वाला व्यक्ति रमण करने के लिए स्त्रियों के जघन के आघात से विकृत चित्त होकर औचित्य को त्याग देते हैं।[1]

चित्त की चन्चलता कब बाधित रहेगी अर्थात् चित्त कब स्थिर और अर्ध्वगामी रहेगा, इस दार्शनिक पक्ष का समाधान माघ अच्छी तरह से समझाते हैं। उनक निम्न कथन में इस प्रश्न का सामाधान ध्वनित होता है। वे लिखते हैं कि लोगों के कल्याणकर्ता तथा सुयोग्य पुत्र में निराकुल चित्त वाले ब्रह्मा ने कृष्ण के निरन्तर उपयोग करने पर भी वेदों को क्षयहीन विशाल निधि बनाया है।[2] यहाँ निराकुल चित्त का तात्पर्य अचन्चल चित्त से है। चित्त की चन्चलता को बाधित रखने का प्रथम चरण है कल्याणकारी कार्यों में व्यक्ति का प्रवृत्त होना। व्यक्ति में करुणा, मुदिता, मैत्री, सहिष्णुता आदि गुणों का विकास होना। जिससे चित्त के लिए शुद्ध भूमि की स्थापना हो सके। इसलिए कवि कल्याणकर्ता ब्रह्मा {प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा} शब्दों का प्रयोग करता है। कवि सत्पात्र {सुपात्र विक्षेप} शब्द का प्रयोग करता है। जिसका तात्पर्य है एक निश्चित और शिवप्रद वस्तु को ध्येय बनाना जिससे चित्त उस पर दृढ़ता से एकाग्र हो सके। इस अवस्था को योग की भाषा में "धारणा-साधना" से ज्ञापित किया गया है।

---

1. श्लोक संख्या- 8/26 "शिशु."
2. श्लोक संख्या - 1/28 "शिशु."

योग विषयक - परिज्ञान का लेखन

माघ जी योग विषयक परिज्ञान से विधिवत् परिचित है। अपने इस परिज्ञान का परिचय कवि पाठक को सम्यक् प्रकारेण कराता है। वे स्पष्टत: लिखते हैं कि रैवतक पर्वत पर समाधि धारण करने वाले योगी लोग मैत्री आदि चित्त-वृत्तियों को जानकर, अर्थात् चित्तशोधक वृत्तियों से अन्त:करण के मल को दूर कर तथा अविद्या आदि पाँच क्लेशों को नष्ट कर, सबीज योग को प्राप्त किये हुए, प्रकृति तथा पुरूष भिन्न हैं यह जानकर, उसे भी रोकने के लिए इच्छा करते हैं।[1] यहाँ "समाधि" शब्द अष्ट विधि योगांगता का उपलक्षण है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये आठ योगांग हैं।[2] मैत्री, करूणा, मुदिता और उपेक्षा-ये चार चित्त की वृत्तियाँ हैं।[3] इनकी भावना से चित्त प्रसाधन होता है। अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं।[4] ये पाँचों मनुष्य को क्लिष्ट करते हैं। प्रकृति तथा पुरूष के विवेक का ग्रहण न करने से संसार में आवागमन तथा विवेक को ग्रहण करने से संसार से मुक्ति मिलती है। प्रकृति के उपरत हो जाने पर मुक्ति

---

1. मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगा: । ख्यातिं च सत्त्व पुरूषान्यतयाधि गम्य वान्छन्ति तामपि समाधिभृतो न रोद्धुम् ।।"शिशु04/55"
2. श्लोक संख्या 2/29 योगसूत्र
3. योग सूत्र - 1/33
4. योग सूत्र - 2/3

मिलती है ऐसा सांख्य का सिद्धान्त है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह रैवतक पर्वत केवल विहारस्थल ही नहीं है, बल्कि मुक्ति-साधन स्थल भी है।

योगिजन भव बन्धन से परे होते हैं। और सांसारिक विषय वासनायें उन्हें बाध्य नहीं कर सकती हैं। योग-साधना से वे योगी भगवत्-सान्निध्य प्राप्त करते हैं। माघ योगियों के लक्षण एवं योग विषयक ज्ञान को इस प्रकार दर्शाते हैं- श्रीकृष्ण भगवान् को दर्शनाभिलाषी तत्त्वों का निर्णय करने वाले, मुक्ति प्राप्त कर शरीर त्याग करने को तत्पर, ध्यान करने वाले श्रेष्ठ योगियों ने देखा।[1] यहाँ पर सांख्य के तत्त्व-ज्ञान (24 तत्त्व) तथा योग के ध्यान साधना के संप्रयोग से कवि यह लक्षित करना चाहता है कि सांख्य एवं योग दर्शन के तत्त्व-सामर्थ्य से योगी भगवत साक्षात्कार कर सकता है। कवि तत्त्वज्ञान, ध्यान-योग, समाधि-योग, ईश्वर-प्रणिध्यान आदि योग दर्शन के दार्शनिक तत्त्वों का विवरण देता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. उपैतु कामैस्तत्पारं निश्चितैर्योगिभिः परैः ।
देहत्यागकृतोद्योगैरदृश्यत परः पुमान् ।।
"शिशु० 19/87"

यम - नियम आदि की प्रस्थापना

योग-दर्शन में योगी के लिए योगाचरण की कतिपय मान्यतायें हैं। योगाचरण की इन्हीं व्यवस्थाओं के द्वारा योगी योग-साधना में सफलता प्राप्त कर सकता है। माघ के कुछ प्रसंगों में यम-नियम आदि के उद्धरण प्राप्त किये जा सकते हैं। वे लिखते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान् के दोनों पार्श्वों में भीमसेन तथा अर्जुन के बैठने के बाद जितेन्द्रिय राजा के पीछे शुभ-कारक विधि एवं नीति (दैव और पुरुषार्थ) के समान और और आचरणवान् यति के पीछे यम तथा तथा नियम के समान विजय-लक्ष्मी से परिवेष्टित श्री कृष्ण के पीछे सूर्य तथा वायु के समान अश्विनी कुमारों के पुत्र नकुल और सहदेव चलने लगें।[1] अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह को यम कहते हैं और शौच, सन्तोष, तपश्चर्या, वेदग्रन्थादि का स्वाध्याय और प्राणिधान को नियम कहते हैं। विधि और नीति के द्वारा योगी की लगन तथा सातत्य एवं अनुशासन ज्ञापित होता है।

योगी को ध्यान, जप, तप, समाधि आदि का परिपालन आवश्यक होता है। यम-नियम आदि के अनुशीलन द्वारा ही योगी ईश्वर-साक्षात्कार कर सकता है। इस तथ्य को भाव कवि के अधोलिखित प्रसंग में देखा जा सकता है। श्रीकृष्ण भगवान् नारद जी से बोले हे पुरुषोत्तम ! आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए। कपिल, सनत्कुमारादि योगियों के भी साक्षात्करणीय आप ही हैं।[2] "योगिनाम्"

1 - - - शिशुपाल० - 13723
2. श्लोक संख्या - 1/31 (शिशु०)

शब्द के प्रयोग से कवि यम-नियमादि योगाचरण का संकेत करता है, क्योंकि बिना यम-नियम के साहाय्य से ईश्वर-साक्षात्कार नहीं किया जा सकता है।

ईश्वर - साक्षात्कार का निरूपण

ईश्वर- साक्षात्कार के सम्बन्ध में माघ अपने दार्शनिक ज्ञान को बहुत ही स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। ध्यान-योग से योगिजन ईश्वर-साक्षात्कार से जगत्बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। नारद जी कहते हैं कि बढ़ाहुआ विषयों का अनुराग जिसमें ऽयोग-साधना मेंऽ बाधक है तथा लोगों से अनभ्यस्त होने से अत्यन्त दुर्गम मोक्ष-मार्ग को पाये हुए मनस्वी योगी के पुनरावृत्ति-रहित आप श्रीकृष्ण ही प्राप्तव्य हैं।[1] सांसारिक विषय विकार योगी की साधना में बाधक होता है। योग-साधना के मार्ग पर चलने के निमित्त दुर्ग अनुबन्धों और वर्जनाओं का परिपालन अनिवार्य होता है। इसलिए यह मार्ग सर्वजनसुलभ नहीं है। योगमार्ग द्वारा अग्रसर् योगी की साधना की परिणति-स्वरूप ईश्वर-साक्षात्कार योगी को अवश्य होता है। मोक्ष को पाया हुआ साधक पुन: जगद्बन्धन में नहीं आता है, वह ईश्वर में लीन हो जाता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1• श्लोक संख्या - 1/32 "शिशु0"

ध्यान-योग और ईश्वर -साक्षात्कार की अवधारणा पर कवि इस प्रकार लिखता है- योगिजन एक [अद्वितीय] एवं सर्वश्रेष्ठ जिन श्रीकृष्ण भगवान् को ध्यान के योग्य होने पर भी, बुद्धि मार्ग से परे होने पर भी वाक्पथ को अतिक्रान्त अर्थात् वचन से अवर्णनीय तथा मन से अचिन्तनीय मानते हैं, आदर से उपासना के योग्य होने पर भी अचिन्तनीय रूप वाले मानते हैं। अत एव हे युधिष्ठिर ! तुम इन श्रीकृष्ण को केवल मानव मात्र न जानो ।[1] वस्तुत: कवि स्पष्ट करना चाहता है कि ध्यान से ही ईश्वर- साक्षात्कार किया जा सकता है क्योंकि वह अमनोगम्य एवं अचिन्तनीय रूप वाला है।

- - - - - - - - - - - -

1. ध्येयमेकमपथे स्थितं धियः स्तुत्यमुत्तममतीतवाक्पथम् ।
आमनन्ति यमुपास्यमादराद् दूरवर्तिनमतीव योगिनः ।।
"शिशु0- 14/60"

0 0 0
0

योग - साधना का उल्लेख

माघ कवि के योग-साधना से परिचय का निरीक्षण प्रस्तुत उद्धरण में किया जा सकता है। उद्धरण द्रष्टव्य है- तेजस्वी पुरुष तेजस्वियों में उसी प्रकार गिना जाता है, जिस प्रकार पञ्चतप वाले तपस्वियों की पञ्चाग्नि में सूर्य पाँचवी अग्नि होता है।[1] पञ्चतप योगसाधना का एक क्रम है। पञ्चाग्नि योगियों को ही प्राप्त हो सकती है। कवि योगसाधना के क्रम में लिखता है कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति रात में जल में रहकर या स्नानकर दिन में पञ्चाग्नि से सन्तप्त होता हुआ महाव्रत का आचरण करता है, वैसे ही इस रैवतक पर्वत के तट मानों महाव्रत का पालन कर रहे हैं।[2] महाव्रत शब्द के प्रयोग से कवि स्पष्ट करना चाहता है कि योगसाधना एक कठोर प्रक्रिया है, जिससे होकर साधक गुजरता है।

योगी के लक्षण का विवेचन

एक योगी को विषय-वासनायें आकर्षित नहीं कर सकती हैं। योगियों का लक्ष्य से पतित होने में विषयानुराग मुख्य कारण होता है। विषयानुराग में मन चञ्चल हो जाता है। मन के चञ्चल होने पर आत्मशक्ति का ह्रास होता है।

---

1. श्लोक संख्या 2/51 "शिशु0"
2. श्लोक संख्या 4/58 "शिशु0"

माघ इस तथ्य को व्यञ्जनात्मक लेखन द्वारा व्यक्त करते हैं कि मादक द्रवा बहते रहने पर विरक्त भी कौन पुरूष चञ्चल (विषयानुरागी) नहीं होजाता है।[1] वस्तुत: यहाँ व्यञ्जना है कि एक प्रबल योगी (साधक) सांसारिक आकर्षण एवं बाधाओं में आबद्ध नहीं हो सकता है। जबकि साधारण साधक अपने मार्ग से प्राय: स्खलित हो सकता है।

अष्ट सिद्धियों का प्रदर्शन

माघ की काव्यधारा में योग की सिद्धियों का प्रयोग दिखाई पड़ता है। कवि माघ देवर्षि नारद को अतीन्द्रिय कहते है।[2] अतीन्द्रिय वह होता है, जो उन पदार्थों को भी जान लेता है, जो नेत्रादि इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता है। यह क्षमता योग-साधना से ही प्राप्त होती है। योग दर्शन में योग-साधना से आठ सिद्धियों का वर्णन प्राप्त होता है। अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियों के द्वारा योगी लोग दिव्य और विलक्षण कृत्यों को कर सकते हैं। माघ श्रीकृष्ण के विलक्षण कृत्यों का वर्णन करते हैं। श्रीकृष्ण भगवान् ने योग के द्वारा युद्ध-स्थल

---

1. श्लोक संख्या - 6/39 "शिशु०"
2. श्लोक संख्या - 1/11 "शिशु०"

में अपने को अनेक कृष्णों के रूप में बना लिया। शत्रुलोग भयभीत और उद्भ्रान्त होने से युद्ध के मैदान में एक ही श्रीकृष्ण भगवान् को कहीं पर दो, कहीं पर तीन, और कहीं पर चार को देखते हुए मानों स्पर्धा स्वरूप पञ्चत्व को प्राप्त हुए।[1] पञ्चत्व शब्द के प्रयोग के द्वारा कवि नश्वरता का लक्षण मृत्यु को दर्शाता है जिसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि है कि पाँच भौतिक तत्त्वों क्षिति, जल, अग्नि, आकाश और वायु से संसार की रचना हुई। जिसमें हर नश्वर वस्तु बनती और विनष्ट होती है। किन्तु इन पाँच तत्त्वों से पृथक् आत्मा है जो अभौतिक सीमा के अन्तर्गत विद्यमान है, जिस पर नश्वरता का प्रभाव नहीं पड़ता है।

वस्तुत: यह सर्वथा सिद्ध होता है कि महाकवि माघ को योग दर्शन की विविध अवधारणाओं का सम्यक् ज्ञान था। वे अपनी योग-दर्शन-विषयक विद्वत्ता का समुचित प्रदर्शन शिशुपालवध महाकाव्य में करते हैं। वे अष्टसिद्धि, चित्त-भूमि, यम-नियम, ईश्वर-साक्षात्कार आदि दार्शनिक कल्पनाओं का प्रयोग शिशुपालवध में अत्यन्त चारु रूपेण करते हैं। वे अपने दार्शनिक ज्ञान को विविध कोणों से व्यक्त कर देने के लिए अपनी काव्य-सर्जना में सचेष्ट रहते हैं।

---

1. श्लो संख्या - 19/117 "शिशु०"

न्याय- दर्शन

सविकल्पक और निर्विकल्पक ज्ञान का ज्ञापन

न्याय-दर्शन के प्रत्यक्ष-प्रमाण में सविकल्पक और निर्विकल्पक ज्ञान की व्याख्या प्राप्त है । नाम, जाति आदि की योजना से युक्त ज्ञान को सविकल्पक ज्ञान कहते हैं।[1] नाम, जाति आदि की योजना से रहित वस्तु मात्र की पहचान वाले ज्ञान को निर्विकल्पक ज्ञान कहते हैं। कवि न्याय के इस प्रत्यक्ष प्रमाण के सिद्धान्त से परिचित है। उसका यह ज्ञान निम्न उद्धरण में देखा जा सकता है। जाति "गोत्वादि" क्रिया "पाचकत्वादि" और गुण {शुक्लत्वादि} के द्वारा किसी अर्थ विशेष का सम्पादन नहीं करते हुए डित्थ आदि यदृच्छा शब्द के समान जाति {ब्राह्मणत्व आदि} क्रिया {अध्ययनादि} तथा गुण {शौर्यादि} के द्वारा किसी प्रयोजन को नहीं करते हुए पुरुष का जन्म केवल देवत्वादि नाम के लिए है।[2] कवि के विवरण में निहित भाव से स्पष्ट है कि जाति, क्रिया, गुण, आदि के द्वारा डित्थ{पात्र} अथवा देवदत्त {पुरुष} की पहचान की जा सकती है, जिसे न्याय दर्शन में सविकल्पक ज्ञान कहते हैं। किन्तु यदृच्छा शब्द भी न हो, और वस्तु की पहचान हो तो उस ज्ञान को निर्विकल्पक ज्ञान कहते हैं।

---

1. नामजत्यादि-योजनासहितं ज्ञानं सविकल्पकम् {तर्कभाषा}...
2. असम्पादयत: कश्चिदर्थं जातिक्रियागुणै: ।
   यदृच्छाशब्दवत्पुंस: संज्ञायै जन्मकेवलम् ।।

"शिशु० 2/47"

अनुमान-प्रमाण का विवेचन

माघ को न्याय दर्शन के अनुमान-प्रमाण का ज्ञान अच्छी तरह से,प्राप्त है। अनुमान-प्रमाण के सिद्धान्त को वे काव्य के कई कोणों से प्रकट करते हैं।अनुमान-प्रमाण में व्याप्ति, प्रतिज्ञा,हेतु,उदाहरण निगमन आदि के द्वारा कथन को सत्यापित किया जाता है। माघ ने अनुमान के इन उपबन्धों को इस प्रकार प्रयुक्त किया है-धनुष के खींचने से ध्वनि होने के बाद राजा शिशुपाल के धनुष, अविच्छिन्न गिरने वाले, लक्ष्यवेध का सामर्थ्य धारण करते हुए, लोहशुद्धियुक्त और पंख सहित बाण उस प्रकार निकलने गले, जिस प्रकार वादी के मुख से निकलने वाले वाचकता-शक्ति को धारण करते हुए शुद्ध (शास्त्र-सम्मत) पक्षों (नित्यत्व आदि साध्य अर्थों) को ग्रहण किय हुए शब्द निकलते हैं।[1] यहाँ पर "वाचकता शक्ति" का तात्पर्य अनुमान प्रमाण के प्रतिज्ञा-अनुबन्ध से है। शुद्ध शब्द के प्रयोग से अनुमान के उदाहरण अनुबन्ध का तात्पर्य स्पष्ट होता व पक्ष शब्द के नित्यत्व आदि से व्याप्ति गत हेतु का अनुबन्ध प्रकट होता है। माघ ने यहाँ पर कथन के अकाट्य एवं सत्यापन के हेतुक अनुबन्धों को अनिवार्यता को स्पष्ट किया है।

---

1. श्लोक संख्या 20/11 "शिशु0"

माघ ने अनुमान-प्रमाण और प्रति-अनुमान-प्रमाण का प्रयोग इस प्रकार किया है। महाशूर श्रीकृष्ण भगवान् ने शत्रु शिशुपाल के द्वारा की गयी अत्यधिक बाणवृष्टि को बाणों से उस प्रकार खण्डित कर दिया, जिस प्रकार प्रतिवादी व्यक्ति वादी के द्वारा किये गये अनुमान आदि प्रमाण को दूसरे प्रत्यानुमान आदि प्रमाणों से खण्डित कर देते हैं।[1]

अनुमान प्रमाण में हेतु के द्वारा किसी वस्तु को प्रमाणित किया जाता है। माघ का अनुमानविषयक ज्ञान यहाँ देखा जा सकता है। वे स्वयं अनुमान की प्रबलता पर बल देते हैं। वे लिखते हैं कि यदि शास्त्र से हेतु अर्थात् अनुमान प्रबल है, तो उस यमुना ने ही समुद्र को पूरा किया गंगा ने नहीं। यदि गंगा ने पूरा किया होता तो समुद्र का पानी गंगा के प्रवाह से भस्म रहित किये गये शंकर जी के कण्ठ के समान कृष्ण न होता।[2] यहाँ पर कवि अनुमान प्रमाण के हेतु एवं व्याप्ति के सम्बन्धों को अभिव्यक्त करना चाहता है। जिस प्रकार "यत्र-यत्र धूम: तत्र-तत्र वहिन:" के द्वारा धुआँ और अग्नि के साहचर्य को व्यक्त किया जाता है उसी प्रकार यमुना एवं समुद्र को कृष्णत्व साहचर्य का प्रमाण है। वस्तुत: यह मूल कारण तो नहीं है किन्तु कवि काव्य-चमत्कार के लिए अनुमान के अनुबन्धों का प्रयोग करता है।

- - - - - - - - - - - - - - -

1. शिशुपाल0-20/18

2. शिशुपाल0 -12/69

माघ व्याप्ति को अपने काव्य की धारा में प्रयुक्त करते हैं वे लिखते हैं कि रक्त वर्ण अर्थात् काली पुतलियों से युक्त नेत्रों से अनुमित बाणासुर राजा का मुखमण्डल क्रोध से प्रतप्त था।[1] यहाँ पर रक्त वर्ण नेत्रों को हेतु के रूप में प्रयुक्त किया गया है। प्रतप्त मुखमण्डल से यह व्याप्ति बनती है कि बाणासुर क्रोधाभिभूत है।

कर्मवाद का अंकन

दर्शनशास्त्र की चैन्तनिक धारा में कर्मवाद का अध्ययन एक प्रमुख विषय रहा है। उसका अध्ययन बौद्धों के प्रतीत्य समुत्पद, गीता के कर्मयोग, सांख्य के सत्यकार्यवाद, मीमांसा का अपूर्व-कर्म तथा न्याय के कर्मवाद में देखा जा सकता है। यद्यपि कर्म को अवधारणा में प्रत्येक दर्शन में कुछ अन्तर है, किन्तु सभी दर्शनों में एक स्वर से इस तथ्य की स्थापना है कि कार्य का प्रतिफल कर्ता को अवश्य प्राप्त होता है। जीव स्वकृत कर्मों, पुण्य एवं पापों का फल अवश्य भोगता है। जीव का योनि निर्धारण उसके कर्मों के अनुसार होता है माघ जी कर्मवाद की इसी अवधारणा से प्रेरित होकर लिखते हैं कि श्रेष्ठ नीति वाले पुरुष के पीछे कर्मों के फल चलते हैं।[2]

---

1. श्लोक संख्या - 15/58 "शिशु0"
2. श्लोक संख्या - 3/26 "शिशु0"

ईश्वर की अवधारणा का सम्प्रयोग

न्याय-दर्शन में ईश्वर को जगत् के कर्ता और नियन्ता के रूप में स्थापित किया गया है। वह जगत् का पालन-पोषण करता है। वह संसार का सर्वोच्च स्वामी है। वह संसार की क्रियाओं में आबद्ध नहीं है। वह अजन्मा और अमर है। वह सर्वज्ञ एवं सर्वव्यापी है। ईश्वर की इसी अवधारणा के प्रकाश में माघ श्रीकृष्ण भगवान् को ईश्वर के स्वरूप और लक्षण को निरूपित करते हैं। वे लिखते हैं- विष्णुने भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार के रूप में जगत् के शासन के निमित्त वसुदेव रूपी कश्यप के यहाँ निवास बनाया है।[1] माघ ने प्रस्तुत वर्णन से लक्षित किया है कि ईश्वर कर्माधीन नहीं है। उसकी स्वतन्त्र सत्ता है। वह जन्म और मृत्यु से परे है। आगे माघ श्रीकृष्ण भगवान् को "विभु" शब्द से ज्ञापित करते हैं।[2] माघ विभु शब्द से स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर संसार के समस्त वस्तु-तत्त्वों का ज्ञाता है।

माघ ईश्वर के स्वरूप-अंकन में लिखते हैं कि सबसे प्राचीन मूर्तिवाले (पुराणमूर्तेः) आप श्रीकृष्ण की महिमा को कौन जान सकता है। मनुष्य जन्म धारण किये हुए भी आप संसार-निवर्तक गुणों (ज्ञानादि) से सुर तथा असुरों को नीचा करते हैं।[3] यहाँ माघ का दार्शनिक निर्देशन स्पष्ट रूप से प्रकट है। कवि

---

1. श्लोक संख्या - 1/1 "शिशु0"
2. श्लोक संख्या - 1/3 "शिशु0"
3. श्लोक संख्या - 1/35 "शिशु0"

"पुराणमूर्तेः" शब्द के प्रयोग से प्रकट करता है कि ईश्वर अमानुष स्वरूप वाला है। इस अमानुष स्वरूप की महिमा को कोई भी नहीं जान सकता है। अर्थात् ईश्वर बुद्धि और मन से परे है। किन्तु वह जन्म और मरण का सम्पादक है। संसार का सम्पूर्ण सुरासुर प्राणिजगत् ईश्वर के नियन्त्रण में परिबद्ध है। माघ ईश्वर के स्वरूप का स्पष्ट उल्लेख करते हैं कि ईश्वर का स्वरूप समाधिस्थ योगियों के द्वारा भी अनिरूपित है (समाहितैरप्यनिरूपितः) ईश्वर का स्वरूप चर्म-चक्षु वालों को कदापि दर्शनीय नहीं है।[1]

नारद जी का कथन है कि हे विश्वम्भर ! मद से उद्धत कंस आदि से पीड़ित इस संसार को रक्षा करने के लिए आप ही समर्थ हैं क्योंकि रात्रि के अन्धकार समूह से मलिन आकाश को धोने के लिए सूर्य के बिना कौन समर्थ हो सकता है।[2] यहाँ पर यह स्पष्ट है कि ईश्वर संसार का पालक है। वह अच्छे कर्म करने वालों को पुरस्कार देता है और नीच करने वालों को दण्ड देता है। व्यवहार स्वरूप उसने कंस आदि दुर्जनों को दण्डित किया। ईश्वर ज्ञान का श्रोत है। उसकी कृपा से व्यक्ति को ज्ञान की प्राप्ति होती है इसीलिए कवि सूर्य के प्रकाश से संसार के अन्धकार को धोने का दृष्टान्त देता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 1/35 "शिशु०"

2. श्लोक संख्या - 1/37 "शिशु0"

माघ ने श्रीकृष्ण भगवान् की शोभा और प्रशंसा के द्वारा ईश्वर के स्वरूप को निम्न प्रकार से लक्षित किया है। श्रीकृष्ण भगवान् प्रभावयुक्त ऐश्वर्यवान् नक्षत्र के समान आभा वाले संसार को अतिशय आभायुक्त करते हुए, गरूड़ पक्षि से चलने वाले, निर्भय,भक्तों के संसार में आवागमन को नष्ट करने वाले,जीवों के रक्षक, सांसारिक दु:खों से रहित पृथ्वी को पालन करने वाले हैं।[1]

ईश्वर के दार्शनिक स्वरूप का निरूपण माघ के निम्न उद्धरण में प्राप्त है। श्रीकृष्ण भगवान् को देखकर शत्रुद्वेष करने लगे, तथापि द्वेष करते रहने पर भी पाप रहित हो गये।[2] यहाँ पर लक्षित है कि श्रीकृष्ण भगवान् (ईश्वर) का अनीष्ट सम्पर्क भी पापहारक होता है। क्योंकि उनका स्वरूप ही पापमोचक है। ईश्वर परम दयालु है, वह संसार का हित कारक है। उसका स्वरूप प्रकाशवत् है। इसीलिए उसके साहचर्य से अन्धकारवत् दोषों का नाश सहज ही हो जाता है।

न्याय दर्शन की अवधारणा है कि संसार की प्रत्येक वस्तु की रचना ईश्वर ने की है। ईश्वर का तेज एवं अंश संसार की समस्त वस्तुओं में व्याप्त है। ईश्वर जो चाहता है वही होता है ईश्वर अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए संसार की वस्तुओं में प्रकट हो सकता है वस्तुत: इसी आशय को स्पष्ट करने के लिए कवि निम्नलिखित काव्य-कल्पना का प्रयोग करता है-सेना में अन्धकार के

1. विभावो विभवी भाभो विभाभावी विवो विभी: ।
भवाभिभावी भावावो भावाभावो भुवो विभु: ।। शिशु॰ 19/8

2. श्लोक संख्या - 19/89 "शिशु॰"

व्याप्त होने के बाद श्रीकृष्ण भगवान् की दृष्टि [तेज] जब कौस्तुभमणि पर पड़ी, तब उससे अन्धकार को दूर करने में समर्थ तेज, उस प्रकार प्रकट हुआ जिस प्रकार दर्पण में सूर्य के प्रकाश के पड़ने पर अन्धकार को दूर करने वाला प्रकाश प्रकट होता है। यह आश्चर्य नहीं है, क्योंकि सर्वसमर्थमूल [श्रीकृष्ण] के सूर्य और चन्द्रमा ही नेत्र हैं।[1] यहाँ यह स्पष्ट है कि ईश्वर संसार के उद्भव का मूल है। वह संसार का निमित्त कारण तथा उपादान कारण दोनों है। सूर्य और चन्द्रमा आदि में प्रकट तेज उसके प्रभाव के द्वारा व्याप्त है।

ईश्वर ही संसार की सर्वोच्च शक्ति है। वह अपनी शक्ति का प्रयोग जगत् में व्यवस्था बनाये रखने के लिए करता है। वह सर्वत्र सन्तुलन एवं नियन्त्रण बनाये रखता है। ईश्वर संसार में न्याय करता है, वह अन्याय नहीं कर सकता है। वह पाप-पुण्य का प्रतिफल देता है। ईश्वर की इसी अवधारणा का संकेत माघ के निम्न वर्णन में प्राप्त होता है। सूर्योदय के समय कुमुद समूह एवं कमल समूह की समान अवस्था हो जाती है। एक बन्द होते हुए आधी शोभा को धारण करता है तो दूसरा खुलते हुए आधी शोभा धारण करता है।[2] वस्तुतः माघ का संकेत है कि

---

1. श्लोक संख्या - 20/7 "शिशु0"

2. श्लोक संख्या - 11/15 "शिशु0"

ईश्वर के समक्ष सब बराबर हैं। इस जगत् में सर्वत्र समता एवं सन्तुलन विद्यमान है। जीवन में उत्थान एवं पतन का क्रम सन्तुलन बनाने के निमित्त होता है।

मोक्ष - प्राप्ति का विवेचन

नैयायिकों के अनुसार मोक्ष का तात्पर्य है सांसारिक बन्धनों से जीव की मुक्ति। जब तक शरीर का बन्धन रहता है तब तक दुःखों का अन्त नहीं है। मोक्ष की अवस्था में आत्मा शरीर से मुक्त होकर सुख-दुःख की अनुभूति से परे हो जाता है। मोक्ष-प्राप्ति को अभयम् ,अजरम्, भी कहा गया है।[1] इस दार्शनिक आशय को माघ इस प्रकार लिखते हैं- पार्थिव देह धारियों की रज एवं वीर्य निर्भर जन्म परम्पराओं में विरक्त यह मधुप (मद्यपीने वाला मनुष्य) अमृत पीने वाले देवता नाम की इच्छा से शाश्वत पृथ्वी के सम्बन्ध से रहित परलोक को ढूँढ रहा है।[2] यहाँ पर स्पष्ट है कि जन्म -परम्परा की मुक्ति के बिना स्वर्ग(मोक्ष) की प्राप्ति नहीं हो सकती है। शरीर का बन्धन पार्थिव है। इसका उच्छेद सम्भव है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि माघ न्याय दर्शन के उद्भट विद्वान् थे। उन्होंने अपने इस दार्शनिक पाण्डित्य को काव्य में बहुतायत रूप से प्रयुक्त किया है। वे प्रमाण, ज्ञान,अनुमान , कर्मवाद,ईश्वर,मोक्ष आदि दार्शनिक तत्त्वों

- - - - - - - - - - - - - -

1· भाष्य 1/1/22, प्रश्न उपनिषद 5/7

2· श्लोक संख्या - 7/42 "शिशुपाल०"

को अपने महाकाव्य में सुन्दर ढंग से प्रयुक्त करते हैं। वस्तुतः इन क दार्शनिक तत्त्वों के प्रयोग से उनकी काव्य छटा अति उत्तम हो जाती है।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

मीमांसा - दर्शन

वेद के महत्त्व का निरूपण

शिशुपालवधम् महाकाव्य के कतिपय प्रसंगों में मीमांसा दर्शन के तत्त्व देखे जाते हैं। वेद का महत्त्व एवं यज्ञीय कर्मकाण्डों का ज्ञान माघ को प्राप्त है। माघ वेद के महत्त्व का निरूपित करने के लिए लिखते हैं कि लोगों के कल्याण कर्ता है तथा सत्पात्र में रहने से निराकुलचित्त वाले ब्रह्मा ने आप (श्रीकृष्ण) को निरन्तर उपयोग करने पर भी वेदों का क्षयहीन विशाल निधि बनाया।[1] कवि का सङ्केत वेद की महत्ता से है। वेद अक्षय निधि है, जिसमें गूढ़ प्रश्नों का समाधान है। वेद अपौरुषेय एवं स्वप्रमाण है तथा वेद आध्यात्मिक तत्त्वों का आकार ग्रन्थ भी है।

वेदपाठी द्विज का विवेचन

मीमांसा दर्शन में वेद और उसके मन्त्रों की शक्तिमत्ता पर विशेष बल दिया गया है। वेद के मन्त्र पवित्र माने गये हैं। उसके मन्त्र उत्कृष्ट शक्ति से सम्पन्न हैं। वेद-मन्त्रों का उच्चारण करने वाला द्विज यज्ञ का सम्पादन करता है। यज्ञ लौकिक एवं पारलौकिक सुखों, प्राप्तियों का साधन होता है, द्विज इसलिए भी

---

1. श्लोक संख्या - 1/28 "शिशु0"

महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि वह देवों को आहूत करता है और लौकिक एवं पारलौकिक उपलब्धियों का मध्यस्थ बनता है। माघ-मीमांसा दर्शन की इस अवधारणा को अपने काव्य में प्रयुक्त करते हैं। वे लिखते हैं कि रैवतक पर्वत की तुलना एक श्रेष्ठ द्विज (ब्राह्मण) से की जा सकती है। श्रेष्ठद्विज की प्रकृति इस प्रकार होती है जो चन्चल बुद्धि पुरुषों को दुर्लभ है, वह ऐसे मन्त्र समूह को धारण करता है जो पापों को दूर करता है, जिसमें धन-सम्पत्ति छिपी रहती है।[1]

कवि वेद मन्त्रों की शक्तिमत्ता, देवों की स्तुति और देवों का अनुग्रह तथा द्विजों की श्रेष्ठता का समन्वित चित्रण निम्न प्रकार से प्रस्तुत करता है- मीमांसा शास्त्र के ऋत्विज् लोगों ने अनुवाक्या (देवों का आह्वाहन करने वाले मन्त्र विशेष) से उच्चस्वरोंच्चारण पूर्वक प्रकाशित देवताओं के उद्देश्य से घृत, पायस आदि ध्वनियो वाले पदार्थों को याज्या से अग्नि में छोड़ा अर्थात् वे तद्-तद् देवताओं के आवाहन के मन्त्रों का उच्चारण कर उन-उन देवताओं के उद्देश्य से ध्वनि करने लगे।[2] वस्तुत: कवि मन्त्रों का प्रतिफल द्विज की श्रेष्ठता पर आधारित करता है। द्विज ही मुख्यत: समुचित इष्टलाभ यजमान को करा सकता है।[3]

- - - - - - - - - - - - - -

1· श्लो संख्या 4/37 "शिशु0"

2· शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया ।
याज्यया यजन कर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम् ।।
"शिशु0- 14/20"

3· श्लोक संख्या - 14/21, 24 "शिशु0"

यज्ञानुष्ठान के महत्त्व का उल्लेख

मीमांसा-दर्शन यज्ञ के अनुष्ठान पर विशेष बल देता है। यज्ञ के अनुष्ठान से अनुष्ठानकर्ता को लौकिक तथा पारलौकिक सुख-सुविधायें प्राप्त होती हैं। यज्ञ के अनुष्ठाता के सांसारिक पाप शमित हो जाते हैं। उसका भविष्य-जीवन उन्नत हो जाता है। माघ मीमांसा की इस अवधारणा से सुपरिचित हैं। इसीलिए वे लिखते हैं कि अग्निहोत्रियों के प्रत्येक गृह में सम्यक् प्रकार से जलती हुई अग्नि शास्त्रोक्त विधि से श्रेष्ठ ऋत्विजों के द्वारा सामधेनी को पढ़कर बड़े-बड़े पाप समूह के विनाश पूर्वक किये गये।[1] अग्नि की ज्वाला को देवताओं का मुख (जिह्वा) माना गया है। विधि पूर्वक कृत यज्ञ में देव स्वभोग्य को पाकर याजक को ऐच्छिक वर प्रदान करते हैं। याजक के पूर्व-कृत पाप विनष्ट हो जाते हैं। उसे अपने सुकृत्यों का प्रतिफल समुचित अवसरपर प्राप्त हो जाता है। यज्ञानुष्ठान के उपर्युक्त माहात्म्य के आशय में माघ लिखते हैं- स्वाभाविक होने से उचित उष्ण स्पर्श को धारण करते हुए अग्नि ने जो हविष्य जलाया वह आश्चर्य नहीं है, किन्तु हवन किये गये पदार्थों से उत्पन्न गन्ध से सम्बन्ध होने से प्राणियों (गंध को सूँघने वाले जीवों)

---

1. श्लोक संख्या 11/41 "शिशु."

के पाप-समूह को भी जला दिया, यह आश्चर्य ही है।[1] वस्तुत: माघ मीमांसा के उस मन्तव्य को स्पष्ट करते हैं जिसमें वह मानती है कि यज्ञ के किये गये सुकृत्य कल्याणप्रद परिणाम वाले होते हैं। कवि आगे लिखता है कि शीघ्र ही ऊपर उठता हुआ, दिशाओं को धूमिल करता हुआ, सघनता को धारण करता हुआ और मेघ को नीचा किया हुआ अग्नि का झंडा अर्थात् धुँआ मानों देवताओं से प्रिय संदेश कहता हुआ सा स्वर्ग को पहुँच गया।[2] यहाँ माघ प्रिय संदेश से संकेत करते हैं कि यज्ञ से उठा हुआ धुआँ देवताओं को अभीष्ट भोग्य पहुँचाता है और प्रत्युत्तर स्वरूप देवता गण याजक के अनिष्ट का नाश करते हैं। याजक के इष्ट लाभ की सीमा स्वर्ग लाभ तक होती है इसी लिए कवि धुआँ का स्वर्ग तक पहुँचने की बात करता है मीमांसा में स्वर्ग -सुख की कल्पना है जिसका उद्धरण यहाँ प्राप्त है।

- - - - - - - - - - - - - -

1• स्पर्शमुष्णमुचितं दधच्छिखी यद्ददाह हविरद्भुतं न तत् ।
गन्धतोऽपि हुतहव्यसम्भवाद् देहिनामदहदोधमंहसाम् ।।
"शिशु०-14/27"

2• श्लोक संख्या- 4/28 "शिशुपा०"

स्वर्ग - सुख का उद्धरण

मीमांसा दर्शन में स्वर्ग एवं स्वर्ग-सुख की कल्पना की गयी है। जीव का चरम लक्ष्य स्वर्ग की प्राप्ति होती है, जिससे वह स्वर्ग के सुखों का भोग कर सके। वैदिक यज्ञ -याग के अनुष्ठान का एक मुख्य उद्देश्य याजक को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। स्वर्ग के पक्ष में कवि काव्य की कल्पना को इस प्रकार उत्प्रेक्षालंकार में प्रयुक्त करता है-मूर्च्छित लोगों की अन्तरात्मा मानो देवों के रमणीय स्वर्ग को जाकर लौट आई, क्योंकि युद्ध में मरने पर रमणीय स्वर्ग की प्राप्ति होती है ऐसा दृढ़ निश्चय वाले वे मूर्च्छित शूरवीर होश मे आकर युद्ध के लिए अत्यधिक उत्साहित होने लगे। यहाँ कवि की दार्शनिकता प्रकट है। हर व्यक्ति में सूक्ष्म अन्तरात्मा होती है। हर व्यक्ति की आत्मा का चरम लक्ष्य स्वर्ग की प्राप्ति होती है। प्रत्येक अन्तरात्मा सांसारिक बन्धनों में आबद्ध है जो स्वर्ग-प्राप्ति में बाधक होते हैं। इन बन्धनों का उच्छेद आवश्यक होता है शूर वीरों की अन्तरात्मा का स्वर्ग से लौटकर शरीर-बन्धन की निवृत्ति के लिए युद्धार्थ शीघ्रतया तत्पर होने से व्यञ्जित होता है कि शरीरादि के बन्धन क्षणिक हैं, किन्तु वे दुष्काट्य भी हैं।

---

1. श्लोक संख्या - 18/63 "शिशुपाल0"

स्वर्ग रमणीय होता है और वह जीव के सुकृत्यों के प्रतिफल स्वरूप प्राप्त होता है। युद्ध भूमि का यज्ञ-भूमि के रूप में व्यक्त करने से संकेतित होता है कि युद्धभूमि में प्राणाहुति का लक्ष्य स्वर्ग प्राप्ति है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि माघ अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन में ऐसे स्थलों पर नहीं चूकते हैं जहाँ परवैदिक कर्मकाण्ड से सम्बद्ध विषयों के निरूपण का अवसर प्राप्त होता है। वे अपने मीमांसा-दर्शन से सम्बद्ध ज्ञान को उचित समय पर अवश्य प्रदर्शित करते हैं। नैषध में वेद के महत्त्व के निरूपण, यज्ञानुष्ठान लाभ के वर्णन, स्वर्ग-सुख-विवेचन आदि का अच्छा अवसर प्राप्त होता है।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

बौद्ध - दर्शन

पञ्च स्कन्धों की विवेचना

माघ का दार्शनिक पाण्डित्य बौद्ध दर्शन में भी प्राप्त होता है। माघ बौद्ध-दर्शन के पञ्च स्कन्धों को स्पष्ट रूप से निरूपित करते हैं-सन्ध्यादि समस्त कार्यों में सहायादि समस्त पाँच अंगों के अतिरिक्त राजाओं का उसी प्रकार दूसरा कोई मन्त्र नहीं हैं, जिस प्रकार इस शरीर में पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त बौद्धों के मत से दूसरा कोई आत्मा नहीं है।[1] बौद्ध मत में रूप-स्कन्ध, वेदना-स्कन्ध, विज्ञान-स्कन्ध, संज्ञान-स्कन्ध, संस्कार-स्कन्ध, ये पाँच स्कन्ध विवेचित हैं। इस संसार में दृष्टि गोचर होने वाली समस्त वस्तुओं को आकार रूप-स्कन्ध, उनकी जानकारी होना -वेदना-स्कन्ध, अध्ययन किये हुए का विस्मरण न होना या धारा-प्रवाह से होने वाला आश्रय ज्ञान- विज्ञान स्कन्ध, चैतन्य या पदार्थों का नाम संज्ञान-स्कन्ध और चित्त में जमी हुई वासना या शास्त्रादि भूषण -संस्कार-स्कन्ध हैं। इन पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है, किन्तु उक्त स्कन्धों से परिवर्तन होता हुआ ज्ञान-सन्तान ही आत्मा है।

---

1. सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्ध पञ्चकम् ।
   सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम् ।।

   "शिशु0 2/28"

बोधिसत्त्व का निरूपण

बोधिसत्त्व (बुद्ध देव) के निर्विकार स्वरूप के निरूपण के निमित्त माघ लिखते हैं- विकार युक्त वह राजसमूह विकारहीन कृष्ण रूपी बोधिसत्त्व के प्रति कामदेव को सेना के समान भयंकर बन गया।[1] यहाँ यह स्पष्ट है कि विकार- वासनायें बोधिसत्त्व को पवित्र-मार्ग से स्खलित नहीं कर सकती है। बोधिसत्त्व का स्वरूप शान्तिचित्तात्मक होती है। उनकी समाधि अडिग होती है, उन्हें कामदेव की भयंकर वासना भी च्युत नहीं कर सकती है। यहाँ यह लक्षित है कि बोधिसत्त्व हर प्रकार की बाधा औरवासना को जीत जाँते हैं।

अस्तु, यह सर्वथा स्थापित होता है कि माघ की बौद्ध - दर्शन का व्यापक ज्ञान प्राप्त था। वे बौद्ध-दर्शन के तत्त्वों को शिशुपालवध में स्पष्ट रूप से निरूपित करते हैं।

---

1. श्लोक संख्या -15/58

0 0 0 0 0
0 0 0
0

चार्वाक - दर्शन

चार्वाक दर्शन लौकिक सुखवाद को स्वीकार करता व वह पारलौकिक किसी भी सत्ता को स्वीकार नहीं करता है। उसके अनुसार भौतिक सुख की प्राप्ति ही व्यक्ति का चरम लक्ष्य है। चार्वाक-दर्शन की इस भावना से कवि पूर्णत: अवगत है। उसके दशम एवं एकादश सर्ग सुखवाद की भावना से ही विरचित हैं। कवि लिखता है कि राजा लोग अनुशासित भौतिक लाभ कर रहे हैं। वे रात्रि के मध्य प्रहर तक काम "रति" लाभ करते हैं और किंचिद विश्राम के बाद रात्रि के अन्तिम प्रहर में अर्थात ब्राह्म मुहूर्त में पुरूषार्थ पर विचार करते हैं।[1] यहाँ पर भौतिक सुख पर विचार विमर्श का समय निर्धारण शान्तिकाल-ब्रह्म मुहूर्त- व्यक्त किया गया है, जबकि शान्ति काल के क्षणों में धर्म, अर्थ, काम के अतिरिक्त मोक्ष पर भी विचार विमर्श करना चाहिए। इस तथ्य से यह इंगित होता है कि राजा-गण भौतिक सुख को ही चरम लक्ष्य मानते है और उनकी प्राप्ति के लिए उपक्रम करते हैं।

अस्तु, माघ चार्वाक मत को अपने काव्य में निवेशित करने में पीछे नहीं रहते हैं। वे सुख-वाद को सुन्दर ढंग से प्रतिष्ठित करते हैं। शिशुपाल वध का दशम् सर्ग इस तथ्य का प्रबल प्रमाण है।

---

1. श्लोक संख्या - 11/6 "शिशु०"

निष्कर्ष

शिशुपाल वध में ऐसे भी स्थल हैं जहाँ पर भक्ति , अवतार,उपासना आदि का निरूपण प्राप्त है। ऐसे स्थलों पर सांख्य,वेदान्त,न्याय,योग दर्शनों के समरूप तत्त्वों का लेखन द्रष्टव्य होता है। इन स्थलों पर सगुण ईश्वर,गुणत्रय, कर्मफल,कारण-कार्य वाद आदि तत्त्वों का सफल उल्लेख प्राप्त होता है।[1] इस तरह शिशुपाल में लगभग सभी दार्शनिक तत्त्वों का समावेश प्राप्त होता है। जैन और वैशेषिक दर्शन का स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। वस्तुत: माघ ने दार्शनिक तत्त्वों का प्रयोग करके काव्य की शक्ति में एक नया रूप लाने की चेष्टा की है। बहुत सीमा तक सफल भी रहा है, क्योंकि दार्शनिक तत्त्वों के प्रयोग से काव्य की धारा के प्रवाह में कोई विशेष जटिलता नहीं आयी है।

- -

1. श्लोक संख्या - 1/34-39, 7/1, 8/15,9/6,12/3,38 , 13/24,46, 65, 14/2-12, 43,64,71-86, 16/81, 19/94,98,100,105,106,114,116, 118, 120 ।

0 0 0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0

00000

000

0

पंचमोऽध्याय:

नैषधीयचरितम् महाकाव्य में दार्शनिक तत्त्व

श्री हर्ष एक पण्डित कवि हैं। वे जितने प्रखर कवित्व के क्षेत्र में हैं, उतने ही तेजस्वी विद्वता में भी हैं। उन्होंने शुद्ध कवि परम्परा से निकलकर विद्वतापूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ ~~कवि परम्परा से निकलकर विद्वतापूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ~~ "खण्डनखाद्य" लिख डाला है। वे अपने दार्शनिक पाण्डित्य के प्रदर्शन की लिप्सा के कारण काव्य के धारा-प्रवाह के दायित्व से हट जाते हैं। वे नैषध के किसी-किसी सर्ग को तो दर्शन का पाठ बना देते हैं। वस्तुतः उन्हें काव्य का यह जटिल स्वरूप बृहत्त्रयी के दोनों-भारवि और माघ-कवियों से सुन्दर लेखन प्रस्तुत करने को स्पर्धा में लाना पड़ा है। कवि अपने उद्देश्य में सर्वथा सफल रहा है। श्रीहर्ष अपने प्रतिस्पर्धी-कवियों से अधिक विद्वतापूर्ण काव्य-सर्जना संयोजित करते हैं। इसीलिए उनके काव्य को "साहित्ये सुकुमार वस्तुनि दृढ़न्यायग्रह ग्रन्थिले" सूक्ति से व्यक्त किया जाता है। उन्होंने कल्पना की वैदग्ध्यभङ्गी भणितियों से नैषध में सभी दर्शन के तत्त्वों को चमत्कारपूर्वक निरूपित किया है। हम नैषध में दर्शन के अधोलिखित्य शीर्षकों के अन्तर्गत दार्शनिक तत्त्वों की समीक्षा करते हैं।

वेदान्त-दर्शन

ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण

श्री हर्ष ने वेदान्त दर्शन में अपने पाण्डित्य की एक छटा नैषधीय-चरितम् में उतार दी है। वे ब्रह्म का निरूपण अनेक प्रकार से करते हैं। वे नल के राजहंस को ब्रह्म के स्वरूप एवं लक्षणों से निरूपित करते हैं। वे लिखते है कि समुद्र की श्री के अपहर्ता सागर तुल्य उस क्रीडा-सरोवर में उस निषधराज ने रमणेच्छुका हंसियों के अव्यक्त मधुर स्वर में साभिलाष बाला और रमण में समर्थ स्वप्रियाओं के मध्य चोंचों और चरण युगल के मिस दो पत्तियों और पल्लवों से युक्त काम समुत्पन्न अनुराग रूप वृक्ष के अंकुर को धारण कर निकट हो विचरण करते विचित्र स्वर्णमय हंस को देखा।[1] यहाँ पर कवि विचित्र स्वर्ण हंस के दृष्टि-पथ पर आने का वर्णन करता है। यहाँ "अन्तिके विचरन्तम्" का अर्थ हंसियों के समीप ही नहीं अपितु क्रीड़ासर के निकट, भी माना गया है। प्रकाशकार मल्लिनाथ ने "हिरण्यमय: पुरूष: एको हंस:" इस श्रुतिवचन को आधार मानकर कथन का एक अन्य अर्थ स्पष्ट किया है। वे स्पष्ट करते हैं कि इस श्लोक के पूर्ववर्ती श्लोकों में और यहाँ भी क्रीड़ासर सागर के रूप में बताया गया है। साथ ही यहाँ केलि पल्लव-"क्रीड़ा को लघु सरसी" भी कहा गया है, जो कि उचित नहीं है। इसी के औचित्य को स्थापित करने के

---

1. श्लोक संख्या 1/117 "नैषध"

लिए वे अर्थ लगाते हैं कि विस्तार में समुद्रतुल्य और विनश्वर होने से पल्लव (सरसी) तुल्य शरीर में विचरते जैसे कोई योगी आत्मा (रिरंसुहंसी कलनादसादर) आत्मशक्ति के अव्यक्त प्रियनाद में साभिलाष परमात्मा को देखता है, वैसे ही उस हिरण्यमय परमात्मास्वरूप हंस को को नैषध ने देखा।

निर्गुण ब्रह्म

श्री हर्ष निर्गुण-निराकार ब्रह्म को स्पष्ट शब्दों में निरूपित करते हैं। वे लिखते हैं- जिसके विषय में चित्त का भी अंधकार है, अर्थात् मन में ब्रह्म के प्रति स्पष्टता नहीं है। वह ब्रह्म भी आलस्य रहित व्यक्ति द्वारा निश्चय पूर्वक प्राप्य है।[1] वेदान्त दर्शन में ब्रह्म को अवाङ्मनोगम्य बाताया गया है और उसे दुष्प्राप्य भी बताया गया है।[2] "स्वतः प्रमाण ब्रह्म से" श्री हर्ष विधिवत् परिचित हैं। वे इस तथ्य से अवगत हैं कि स्वयं प्रकाशित परमात्मा (ब्रह्म) के ज्ञान के निमित्त अन्य किसी अनुव्यवसाय, इतर ज्ञानादि की आवश्यकता नहीं होती है। ब्रह्म सबकुछ जानता है उसे कोई नहीं जान सकता है।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 3/63 "नैषध•"
2. "यतो वाचे निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह "(तैत्ति० 2/9/1)
3. येने-दं सर्वं निजयाति तं केन विजानीतम्। "बृहदा० 2/4/13"

इस दार्शनिक बिन्दु को कवि स्पष्ट रूप से लिखता है कि तरूण कुमारों ने सिरों पर रत्न व्यर्थ स्थापित कर रखे है, क्योंकि ये तरूण निश्चयत: रत्न हैं। स्वप्रकाश परमात्मा के बोध-विषयक उसके ज्ञान के निमित्त अन्यबोध की अपेक्षा नहीं होती है।[1]

ब्रह्म आनन्द रूप अमृत के समान है।[2] ब्रह्म सत्य, ज्ञान रूप और अनन्त है।[3] इस दार्शनिक तथ्य को कवि इस प्रकार लिखता है- जैसे आदिरहित [नित्य-प्रवहणशील] संसार को भलीभाँति तरकर योगी परमानन्द ब्रह्म को प्राप्त करता है उसी प्रकार नारद जी मर्त्यपर्वर्ती विस्तृत आकाश को पार कर स्वर्ग के स्वामी इन्द्र के पास पहुँचे।[4]

वेदान्त दार्शनिकों का मन्तव्य है कि संसार में दो जीव और ब्रह्म हैं। जीवात्मा का वास्तविक स्वरूप प्रपञ्चादि, अविद्या, विलास-वासना से रहित परब्रह्म है। मुक्ति दशा में अविद्यादि प्रपञ्च का रूप-भेद मिट जाता है और एक-मात्र ब्रह्म रह जाता है। परब्रह्म आकाश की भाँति है और जीवात्मा घटाकाश की भाँति। इसी प्रकार देहावरण से मुक्त जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। पुण्यावरण से अभिन्न स्थिति रह जाती है। वस्तुत: यही सत्य और काम्य है।

---

1. श्लोक संख्या - 10/63 "नैषध"
2. आनन्दरूपममृतं यद् विभाति "मुण्ड को0 2/2/4"
3. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म "तैत्ति0 2/1/1"
4. श्लोक सांख्य 5/8 "नैषध"

क्योंकि सत्य एक ब्रह्म ही है। द्वितीय स्थिति नहीं है- "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"।
इस दार्शनिक तत्त्व को श्री हर्ष स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं। संसार में स्व {जीवात्मा}
और ब्रह्म {परमात्मा} दो हैं। और मुक्ति में तो केवल एकमात्र परब्रह्म। यह है
वेदान्त मत के प्रवक्ताओं की जीवात्मा का उच्छेदन रूप मुक्ति का प्रतिपादन
करने की विदग्धता।[1] इस दार्शनिक तत्त्व को कवि प्रतीकान्तर से संकेत करता है।
कवि लिखता है- काम से अधीर होती हुई उस दमयन्ती ने - वह पक्षी {स्वर्णहंस}
कहाँ मिलेगा, जिससे वास्तविक नल को पूछा जाता, क्योंकि उसके वचनों से ही
पहले की भाँति विश्वास हो गया- यह विचार वहाँ सभा में निषधराज के दूत
स्वर्गवासी स्वर्णहंस का स्मरण किया।[2] यहाँ कवि स्वर्गवासी स्वर्णहंस से परब्रह्म
की ओर संकेत करता है। दमयन्ती एक जीवात्मा है जो काम {वासना} संदेह, अधी-
रता के सांसारिक भ्रमजाल में फँसी है। वह दमयन्ती आत्म ज्ञान {नलज्ञान} के लिए
उत्साहित है।

कठोपनिषद् में उल्लेख है कि उसी ब्रह्म पर सब लोक अवस्थित
है, उसका अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता है।[3] गीता का कथन है कि सारा जगत् साक्षी-
भूत मेरे अन्तर्गत सङ्कल्प के आधार पर स्थित है, वास्तव में मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।[4]

---

1. स्वन्च ब्रह्म च संसारे मुक्तौ तु ब्रह्म केवलम् ।
   इति स्वोच्छित्तिमुक्युक्तिवैदग्धी वेदवादिनाम् ।। "नैषध 17/73"
2. श्लोक संख्या 13/39 "नैषध0"
3. तस्मिल्लोकाश्रिता सर्वे तदु नात्येति कश्चन ।"कठो06/1}
4. यया ततमिदं सर्वं जगत वाक्तमूर्तिना ।
   यत्स्थानिसर्व भूतानि न चाहं तेष्ववास्थित: ।। "गीता 9/4"

पञ्चदशी में लिखा है है कि इस संम्पूर्ण जगत् को मैं एक अंश से व्याप्त करके स्थित हूँ।[1]

ब्रह्म सर्वव्यापी है, तीनों लोकों में ब्रह्म की सत्ता है। इस दार्शनिक तत्त्व को श्री हर्ष इस प्रकार लिखते हैं- जो तीनों लोक दमोदर "विष्णु" की उदरं गुहा में अधिष्ठित होकर विद्यमान रहा करते हैं, अत: मगध नरेश का यश विष्णु की नाभि से निकले श्वेत कमल की भाँति बाहर निकल आया है।[2] यहाँ कवि विष्णु को साकार ब्रह्म के रूप में निरूपित किया है। उनकी उदरगुहा में तीनों लोकों के के अधिष्ठित होने से लक्षणा है कि तीनों लोक ब्रह्म को पूर्ण सत्ता में विद्यमान है। सर्वव्यापो ब्रह्म के पक्ष में कवि लिखता है- डंडी से तोड़े फूल से क्या लाभ, क्योंकि वह फूल तो वृन्त पर फूलता है यदि फूल पत्थर के सिर पर चढ़ाना है तो उसे अपने सिरपर चढ़ाना चाहिए।[3] प्रस्तुत कथन से स्पष्ट है कि मूर्ति पूजा व्यर्थ है, जबकि सब में ईश्वर व्याप्त है तो प्रस्तर पूजा निष्फल है। फूल में ईश्वर है और पत्थर में भी ईश्वर है। वस्तुत: सारा जगत् ईश्वरमय है। कवि ब्रह्म की सर्वव्यापकता एवं सर्वशक्तिमात्ता पर लिखता है- अत्यन्त छोटे वामन शरीर-धारण के अनन्तर त्रिविक्रम शरीर द्वारा दिशाओं को व्याप्त करने वाले नारायणजो होवें।[4] संसार की

---

1. विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नये कांशेन स्थितो जगत्। "पञ्चदशी 2/56"
2. श्लोक संख्या 12/95 "नैषध॰"
3. श्लोक संख्या 17/56 "नैषध॰"
4. श्लोक संख्या 21/82 "नैषध॰"

सभी दिशाओं में ब्रह्मा विद्यमान है। ब्रह्म त्रिविक्रम शक्ति से सम्पन्न है।

कवि का कथन है- बायें हाथ में पांचजन्य शंख और जल में उत्पन्न पांचजन्यातिरिक्त कमल दक्षिण हाथ में धारण करके नारायण असुरों से मानों कहते हैं कि तुम असुर चेतन हो अतः देखो कि अचेतन शंख-कमल भी मेरे साथ क्या विरोध युक्त नहीं है।[1] यहाँ लक्षित है कि शंख कमल जैसे अचेतन पदार्थों में ब्रह्म की सत्ता एवं व्यापकता है तो चेतन पदार्थों के लिए कुछ कहना ही नहीं । द्वितीयतः यहाँ यह भी लक्षित है कि अचेतन, जड़ अज्ञानी मूर्ख भी ब्रह्म -प्राप्ति के योग्य हो सकते हैं, और जो उद्योगशील चेतन हैं वे सहज ब्रह्म की प्राप्त कर सकते हैं।

पौराणिक आख्यान द्वारा श्री हर्ष ब्रह्म की सर्वव्यापकता एवं सर्व-शक्तिमत्ता को स्थापित करते हैं। मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय ऋषि नारायण के उदर में बाह्य जगत् में दृश्यमान के तुल्य समस्त वस्तु देखकर बाहर और उदर दोनों को पूर्णतः सम्मिलित या अपने को निश्चित न कर पाये, यह नारायण ही जानते हैं।[2] यहाँ स्पष्ट है कि नारायण ही सर्वज्ञ है। संसार सृष्टि की समस्त घटनायें नारायण को ही ज्ञात हैं। नारायण के उदर में बाह्य जगत् के समावेश से स्पष्ट है

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 21/84 "नैषध०"

2. श्लोक संख्या 21/94 "नैषध०"

कि ब्रह्म सर्वव्यापक है। मार्कण्डेय ऋषि को नारायण के उदर में तीनों लोकों का दिखाई देना - से लक्षित होता है कि ब्रह्म मायामय है। उनकी माया को कोई नहीं जान सकता है। श्री हर्ष ब्रह्म की शक्तिमत्ता को विशदत: निरूपित करते हैं। समस्त संसार ब्रह्म रूप नारायण की शक्ति रूपिणी लता पर स्थित है अथवा नागों के स्वामी शेष अनन्त रूप नारायण की मूर्धा पर अथवा बाल्य भाव को प्राप्तवट-पल्लवशायी बालमुकुन्द के उदर में स्थित है। सब प्रकार से स्थावर, जंगम जगत् के आधार नारायण ही हैं।[1]

जिस प्रकार मुररिपु विष्णु के उदर में जगत् समाया है उसी प्रकार कुंडिन नगरी में अतिथि समाज समाया है।[2] यहाँ पर ब्रह्म की सर्वव्यापकता का स्पष्ट उल्लेख है।

ब्रह्म सासांरिक बाधाओं से परे है। उसे दु:खदारिद्र्य, पाप आदि बाधित नहीं करसकते हैं। ब्रह्म सर्वज्ञाता एवं सर्ववक्ता है। उसे सकल सम्पत्तियाँ एवं सिद्धियाँ प्राप्त है। इसी आशय से प्रेरित होकर श्री हर्ष ने विष्णु - वर्णन में वाग्देवी सरस्वती एवं धन-देवी लक्ष्मी को प्रयुक्त किया है। वे लिखते हैं कि

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1• श्लोक संख्या - 4/95 "नैषध0"

2• श्लोक संख्या 10/30 "नैषध0"

अनघ अर्थात् दु:ख , दारिद्र्य , पाप से रहित विष्णु ने हृदय पर स्थान देकर श्रीलक्ष्मी के प्रति अनुराग को सूचित करते हुए भी लक्ष्मी के आवास हृदय पक्ष के ऊपर सरस्वती को कण्ठ पर स्थान दिया। जिससे सरस्वती वागदेवी की अतिमानना न हो।[1]

ब्रह्म अवाड्मनोऽगम्य है, इस दार्शनिक तत्त्वको श्री हर्ष इस प्रकार निरूपित करते हैं। नारायण का स्वरूप वाणी का विषय नहीं है, इसके लिए स्तवन दूर को बात है। हमारा (नल का) कथन (स्तुति) तू तेरी (नारायण को) निन्दा के सदृश है। अत: जो प्रलाप मैं कर रहा हूँ, उसे क्षमा करो।[2]

ब्रह्म का स्वरूप अवाड्मनोगम्य है, तदापि साधक उसकी प्राप्ति के लिए सतत प्रयास करता है, वस्तुत: एक दिन साधक को ब्रह्म -साक्षात्कार तो होता ही है। जब वह ध्यान, योग, साधना आदि द्वारा ब्रह्म प्राप्ति के लिए प्रवृत्त रहता है। श्री हर्ष इस तथ्य का काव्यात्मक ढंग से लिखते हैं- हे नारायण! तुम वाणी और मन के विषय भले ही न हो ~~तथापि वे वाणी और मन के विषय भले ही न हो~~ तथापि वे वाणी और मन तुम्हारे प्रति क्यों न प्रवृत्त हों। बादल को न पाने वाले भी प्यासे चातक को तृप्ति के लिए बादल तो प्रवृत्त होते ही हैं।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1· श्लोक संख्या - 21/48 "नैषध·"

2· श्लोक संख्या - 21/50 "नैषध·"

3· जाह्नवीजलज कौस्तुभचन्द्रान् पारपाणिहृदयेक्षणवृत्तीन् ।
उत्थिताऽब्धि सलिलात् त्वयि लीला श्री: स्थिता परिचितानां
परिचिन्त्य ? "नैषध· 21/92"

ब्रह्म जीव का अंतिम लक्ष्य और धाम है। ब्रह्म के अतिरिक्त जीव को कहीं भी शान्ति और स्थिरता नहीं मिल सकती है। कारण यह है कि जीव ब्रह्म का अंश है। जीव की भाँति संसार की सभी वस्तुएँ ब्रह्म की माया के अंश हैं। वस्तुत: इसी दार्शनिकता की ओर संकेत करने के निमित्त श्री हर्ष लिखते हैं कि सागर के जल से निकली चंचल लक्ष्मी ! चरण, कर, हृदय, और वामक्षेत्र में अवस्थित गंगा, कमल, शंख, कौस्तुभमणि और चन्द्र इन्हें पूर्व परिचित विचार कर तुम नारायण में अवस्थित हो गयी।[1] लक्ष्मी विष्णु की सहचरी और अंश है। गंगा, कमल शंख, मणि, चन्द्र आदि अर्थात् संपूर्ण जगत् विष्णु (ब्रह्म) के अधीन है। लक्ष्मी की चंचलता से जीव-संचरण इंगित है।

जीव के अज्ञान का नाशक ब्रह्म ही है। श्री हर्ष लिखते हैं- हे कृशांगि दमयन्ती ! सूर्यरूप दक्षिण नेत्र को झट से मूँदते आदि- पुरुष के परस्पर मिलते उपर-नीचे के दोनों पुटों वाले पलक को हम अँधेरा कहते हैं।[2]

अज्ञान, अंधकार का समापन ब्रह्म दर्शन से संभव है, यहाँ इंगित है कि ब्रह्म प्राप्ति से आनंद, प्रकाश की प्राप्ति होती है। अज्ञान का अंधकार विनष्ट हो जाता है। ब्रह्म का तेज सूर्य, चन्द्र आदि में अवस्थित है।

- - - - - - - - - - - - - - -

1. जाह्नवी जलज कौस्तुभ-चन्द्रान् पादपाणि हृदयेक्षणवृत्तीन् ।
उत्थिताऽब्धिसलिलात् त्वयि लीलाश्री: स्थिता परिचितानां परीचिन्त्य ?
(नैषध: 21/92)

2. श्लोक संख्या - 22/33 "नैषध."

ब्रह्म अनादि है और अनंत है। इस दार्शनिक बिन्दु का उद्धरण श्री-हर्ष नैषध में देते हैं। वे आदि ब्रह्म को आदि विष्णु के रूप में निरूपित करते हैं। चन्द्र और काम की मैत्री उचित ही है। क्योंकि काम देदीप्यमान है, शिव के नेत्र में और चन्द्र अमावस्या को तेजोमय आदि पुरुष विष्णु के नेत्र सूर्य में लीन हो गया ।[1] प्राचीन काल में जब यह मृग लांछन पुराण पुरुष हरिविष्णु के कमलत्व (चन्द्र) को प्राप्त हुआ तभी इस चन्द्र का यह कलंक ही पुतली के भ्रमर कृष्ण तारा के सौन्दर्य को प्राप्त किया। हे कृशांगी दमयन्ती! यह चन्द्र जो आदि पुरुष विष्णु का वाम नेत्र हो गया, इस विषय में हमें चकित नहीं होना चाहिए।[3] चन्द्र को श्री हरि विष्णु का वाम नेत्र माना जाता है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि हरि विष्णु आदि पुरुष हैं वे सृष्टि के कर्ता हैं। संसार की समस्त वस्तुएँ आदि पुरुष द्वारा निर्धारित हैं।

ब्रह्म निर्विकार है, किन्तु उसका मायोपाधित स्वरूप ईश्वर जगत्-कर्ता होने से विधाता है। इस दार्शनिक पृष्ठभूमि में श्रीहर्ष लिखते हैं कि हे कृशांगी !

---

1. श्लोक संख्या 22/87 "नैषध."
2. श्लोक संख्या 22/88 "नैषध."
3. श्लोक संख्या - 22/40 "नैषध"

विधाता ने बुद्ध देवी तारा के पूजास्थल में हिमवत् शीतल कर्पूर राशि की जो स्थापना की उसी पुण्य से जिन दर्शन में उसे श्रेष्ठता प्राप्त है।[1] यहाँ स्पष्ट है कि श्री विष्णु के आदेश से विधाता ने चन्द्रमा की रचना की और सुरश्रेष्ठता पायी। वस्तुत: यहाँ श्री विष्णु ब्रह्म रूप में वर्णित हैं और विधाता ईश्वर रूप में वर्णित हैं।

"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मबेद नानास्ति किन्चन" ब्रह्म एक और अद्वितीय है, इस संसार में कोई अन्य दूसरी वस्तु नहीं है। वेदान्त दर्शन के इस मतवाद से श्री हर्ष सुपरिचित हैं। वे इस दार्शनिक तत्त्व को अपनी काव्यधारा में बड़े सुन्दर ढंग से प्रयुक्त करते हैं। वे लिखते हैं- पक्ष चतुष्टय अर्थात् इन्द्र, यम, अग्नि, वरूण के नल रूप धारण करने से उस दमयन्ती को नल की प्राप्ति न होने देने पर उस दमयन्ती के प्राप्ति के अभिलाषी वास्तविक पाँचवें नल निषधराज को उसी प्रकार दमयन्ती प्राप्ति की आस्था नहीं रही, जिस प्रकार सत्य भी चतुष्कोटिविनिर्मुक्त (सत् -असत् आदि चार पक्षों से मुक्त) पन्चकोटिक (पाँचवें) अद्वैततत्त्वं में मत वैभिन्य होने पर लोक की श्रद्धा नहीं रही।[2] उपमालंकार के माध्यम से श्री हर्ष स्पष्ट करते हैं कि चार भिन्न मतों की बाधा होने के कारण संसारी व्यक्ति को इस सच्चे अद्वैतमत में श्रद्धा नहीं रह जाती है कि एक ही ब्रह्म है और अद्वितीय और कुछ नही । ये चार बाधक मत इस प्रकार हैं-

- - - - - - - - - - - - - -

1. श्लसेक संखया 11/129 "नैषध"

2. श्लोक संखया 13/35 "नैषध"

1. सद्वादी सांख्यमत 2. असद्वादी बौध मत 3. सदसद्वादी नैया-यिकमत 4. सदसाद्विलक्षण आर्हत् मत। पाँचवा अद्वैत तत्त्व वस्तुत: उस ब्रह्म का बोधक है।

श्री हर्ष अनेकार्थक शब्दों का आधार लेकर वर्णन-चातुर्य द्वारा नलके अतिरिक्त अन्य सभी को अस्वीकार करती दमयन्ती की तुलना उपनिषद् से करते हैं। कवि उपनिषद् की भाँति दमयन्ती को अन्य सभी स्वयं वरागत अभिलाषियों को पदार्थों के तुल्य अमान्य करती ब्रह्म के सदृश नल के प्रति अनुरक्ता वर्णित करता है। कवि इस प्रकार लिखता है- असंख्य,भाग्यशाली, मन में आशा से पूर्ण, उन एक-दूसरे से सौन्दर्य- शूरता से बढ़े-चढ़े तेजस्वी देव और नरेशों का समान भाव से त्याग करती अपने नलानुराग भाव से युक्त दमयंती , जिसके सौन्दर्य का वर्णन वाणी से संभव नहीं था, ऐसे ज्ञान के सागर एक प्रमुख उत्साह आनन्द और शक्ति से सदायुक्त नल को देखा फिर उसके प्रति दृढ़ानुरागिणी हो,आकाश और काल सहित, दिङ्-मनोयुक्त, असंख्य रूप रस, गंध आदि से युक्त जल, तेज,वायु, पार्थिव पदार्थों का एक साथ (अद्वैत प्रतिपादन से) निराकरणकरती (अथवा अवि-नश्वर नित्य सामान्य-विशेष समवाय सहित आठ पदार्थों का अथवा पाँच होने से विषय असंख्य कर्म-गुण रूपादि छ: पदार्थों का हेय भाव से प्रतिपादन करती है। व्याकरणादि षड्ङ्गों अथवा उपक्रम उपसंहारादि षड्विध तात्पर्य-लिङ्गों अथवा यम नियमादि अंगों से युक्त चिर अर्थात् ज्ञान के सागर नि:सोमानन्द (परमानन्द-

स्वरूप॥ एक ॥अद्वितीय॥ पुरूष ब्रह्म का उद्देश्य करके उसी परमपुरूष में॥ब्रह्म॥ में तात्पर्य रखती, शुभ्र अंगवती उपनिषद् के समान थी।[1]

विष्णु ॥ब्रह्म॥ स्वयं प्रकाश हैं। अन्य से उनका प्रकाशन नहीं होता है।वेदान्त सिद्धांत के अनुसारआत्मा स्वप्रकाश है- स्वप्रकाशानंद चिन्मय उसे अन्य से प्रकाशन अपेक्षित नहीं है। कवि इस दार्शनिक तत्त्व का स्पष्ट उल्लेख करता है,हे स्वयं प्रकाशशील ! परप्रकाश निरपेक्ष मूढ़ यह जन नल जो तेरा वर्णन करने को अभिलाषा करता है, निश्चयत: वह सूर्य के तेज को लक्ष्य करके क्या अंधकार की स्वयं प्रकाशन के प्रति अनुरक्ति न होगी।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. साऽनन्तानाप्य तेज: सखिनिखिमरूत्पार्थिवान् दिष्टभाज: ,
   चित्तेनाशासुषस्तान् सममसमगुणान् मुन्चती गूढभावा ।
   पारेवाग्वतिरूपं पुरूषमनु चिदम्भोधिमेकं शुभ्राङ्गी ,
   नि: सीमानन्दमासीदुपनिषदुपमा तत्परीभूय भूय: ।।
   "नैषध ।।/129 "

2. श्लोक संख्या 21/51 "नैषध॰"

कवि ब्रह्म के स्वरूप को इस प्रकार लिखता है- अद्वैत मार्ग से वर्तमान, सहस्रार्जुन के कीर्ति संचय का मूल अष्टांग योग द्वारा अघ"पाप" हीन संज्ञा के उत्पादक तथा शत्रुध्वज-मदालसा के पुत्र अलर्क के सांसारिक मोहरूपी अंधकार के विनाशार्थ सूर्यपुत्र दत्तात्रेय नाम के विष्णु को नमन करता हूँ।[1] यहाँ स्पष्ट है कि ब्रह्म अद्वैत (अद्वितीय) है। वह शक्ति का स्रोत है, वह अष्टांग योग से युक्त है, वह निर्विकार है और पाप से मुक्त है। वह सांसारिक मोह, अज्ञान का विनाशक है।

ब्रह्म निर्गुण है वह किसी भी प्रकार के विकारों, दोषों से मुक्त है। इस दार्शनिक तत्व को व्यन्जना श्री हर्ष नल की निर्दोषता के तर्क के द्वारा करते हैं- नल निर्दोष है, क्योंकि द्वेषकर्ता शत्रुओं के मिथ्या दोषों के लेश मात्र भी आरोप सज्जनों की निर्दोषता को ही प्रकट करते हैं।[2] यहाँ नल ब्रह्मवत् है। ब्रह्म मूलत: निर्गुण है। उस पर मिथ्या गुणों का आरोप कर उसे सगुण ब्रह्म के रूप में बना दिया जाता है।

ब्रह्म तो निराकार है किन्तु स्वेच्छया वह साकार भी हो सकता है। इस तत्त्व की लक्षणा निम्नवर्णन में सुलभ है। लीलयैव यदुवंशीय शरीरधारी (छद्मयादवतनो:) श्री कृष्ण के जिन भुजाओं से मानो अभिष्ट दान के गर्व के कारण

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 21/82 (7) नैषध0

2. श्लोक संख्या - 15/4 "नैषध"

स्पर्धाकारता वह कल्प वृक्ष उखाड़ दिया गया, वे श्रीकृष्ण को भुजाएँ मेरी {नलकी} श्री हीनता रूपिणी लता का नाश करें।[1] यहाँ छद्म यादव तनोः से लक्षित है कि निराकार ब्रह्म माया द्वारा साकार होकर विविध अलौकिक कार्यों को कर सकता है।

ब्रह्म तो सुख-दुखातीत है, उसे सुख-दुःख व्यापते ही नहीं । वह तो साक्षात् निर्गुण एवं निर्विकार है, तथापि निराकार ब्रह्म नरदेह धारण कर सुख-दुःख की लीला दिखाता है। श्री हर्ष का इस आशय का लेखन द्रष्टव्य है -मारे गये सूर्य-पुत्र कर्ण पर दयालु और चंद्र कुल के पृथा-पुत्र अर्जुन को जयी बनाकर सफल मनोरथ, अतएव सूर्यरूप दक्षिण नेत्र में आँसू भरे तथा चन्द्रमारूप वाम नेत्र में हर्ष भरे श्री कृष्ण ने आधा-आधा दुःख सुख का अनुभव किया।[2] श्रुति के अनुसार सूर्य, चन्द्र नारायण के दक्षिण, वाम नेत्र माने गये हैं। प्रस्तुत वर्णन में सम्पूर्ण जगत् के महान् अभिनेता ब्रह्म {श्रीकृष्ण} का अभिनय दिखाया गया है। ब्रह्म {श्रीकृष्ण} अपनी माया से दुःख -सुख का अनुगमन कर रहा है। श्री हर्ष ब्रह्म की व्याख्या इस प्रकार करते हैं- हे नारायण ! अपनी श्रेष्ठ मूर्ति के शुभ्र केश रूप, हलधारी बलराम तुम ही हो और निश्चयतः वे ही शेष हैं। यह श्वेत केशावतार, तुम्हारे उस बुढ़ापे में हुए शुभ्र वंशी की लीला को उचित ही धारण करता है।[3] यहाँ सितकेश बलराम

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 21/75 "नैषध."
2. श्लोक संख्या 21/79 "नैषध."
3. श्लोक संख्या 21/80{1} "नैषध."

सत्त्व प्रधान ब्रह्म-सुख रूप है और कृष्ण तमोगुण प्रधान ब्रह्म सुखावतार हैं। भूभार हटाने के लिए ब्रह्म के सत्त्व तमोगुणात्मक अवतार हुए थे। वस्तुत: बलराम और कृष्ण एक ही ब्रह्म के रूप हैं।

ब्रह्मा अजन्मा है। वह जन्म-मरण से रहित है। कवि इस तत्त्व की स्पष्ट उक्ति नारायण की प्रशस्ति में करता है।

हे अजन्मा नारायण ! तुम रघुपुत्र अज के पुत्र दशरथ से यथेच्छा जन्म लो।[1] यहाँ विरोध व्यक्त है कि ब्रह्म अजन्मा होकर भी जन्म लेता है। वस्तुत: इसका परिहार यह है कि वह ब्रह्म जन्मादि कृत्य अपनी माया से करता है, जो कि मिथ्या होता है।

सम्पूर्ण जगत् के निर्माण का कारण ब्रह्म ही है। वह अपनी माया से जगत् को सृष्टि करता है। वह जल, नदी, पर्वत, धन-लक्ष्मी, काम आदि सभी सांसारिक वस्तुओं की सृष्टि करता है। इसके अतिरिक्त वह सांसारिक बन्धनों से मुक्ति (मोक्ष) का परम स्रोत है। कवि इस आशय का लेखन करता है।-चार पुरुषार्थों में प्रथम धर्म के बीज रूप सलिल से युक्त गंगा नदी के चरण में और अर्थ की मूल कारण लक्ष्मी आपके हृदय पर सुशोभित हैं। कामदेव भी तुम्हारा, नारायण कृष्ण का पुत्र रामावतार-प्रद्युम्न है और मोक्ष दाता ब्रह्म आप स्वयं ही है।[2]

- - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 21/67 "नैषध"

2. श्लोक संख्या 21/96 "नैषध."

कवि लिखता है कि किरणमाली सूर्य कमलों के विकास के प्रकरण में जो लोगों के नेत्र विकसित कर देता है, वह कमलों और नेत्रों की वास्तविक समानशीलता है। यहाँ सूर्य ब्रह्म का प्रतीक है। नेत्र और कमल के विकास का प्रतीक ज्ञान-बोध और परमानन्द की प्राप्ति से है।

सगुण ब्रह्म

ब्रह्म निर्गुण एवं निराकार है, किन्तु वह इष्ट प्रयोजनार्थ अपनी माया से सगुण एवं साकार रूप धारण कर लेता है। सृष्टि कार्य के हितार्थ वह अवतार के रूप में प्रकट होता है। इष्ट अनुष्ठानोपरान्त वह अपने अवतारों को ब्रह्ममय कर देता है। सांसारिक क्रियाकलापों में वह परब्रह्म सगुण ब्रह्म के रूप में ही सुलभ होता है। इसीलिए साधकों को ब्रह्म-प्राप्ति का सहज एवं सरल मार्ग भक्ति-मार्ग ही है। यद्यपि निराकार ब्रह्म के साक्षात्कार का एक मार्ग ज्ञान-मार्ग भी है। भक्ति मार्ग अद्वैत वेदान्त की एक सशक्त शाखा है। जिसमें यद्यपि जीव और ब्रह्म दो अलग-अलग लगते हैं, किन्तु अन्तत: दोनों का एकाकार होना ही लक्ष्य होता है। इस दार्शनिक तत्त्व के प्रकाश में श्रीहर्ष ने सगुण ब्रह्म की व्याख्या पर कतिपय उद्धरण दिया है। ब्रह्म जगत् में विविध रूपों में प्रकट होता है, कभी वह दैत्यराज विरोचन-पुत्र बलि द्वारा पूजित नारायण के रूप में, और कभी श्याम शरीर कृष्ण के रूप में। कभी पंचजन्य शंख, सुदर्शन चक्र तथा पद्म विशिष्ट प्रतिमानों

1· श्लोक संख्या - 19/58 "नैषध·"

से युक्त विष्णु को भाँति प्रकट होता है।[1] ब्रह्म भक्तों, साधकों के उद्धार के निमित्त वाराहवतार के रूप में प्रकट होता है।[2] वाराहवतार {ब्रह्म} का सगुण स्वरूप असीम और अनंत था, वह ब्रह्माण्ड में भी समा न सका।[3]

ब्रह्म का सगुण स्वरूप जगत् में व्यवस्था स्थापना के निमित्त होता है। इसीलिए ब्रह्म का नृसिंहावतार हुआ था।[4] ब्रह्म का अवतार अतुल और विलक्षण लक्षणों से युक्त होता है। वामनावतार वर्णन से श्री हर्ष इंगित करते हैं कि ब्रह्म सगुण स्वरूप में अतिलघु होकर भी अपने पराक्रम को त्रयलोक एवं सभी दिशाओं में दिखा सकता है। वह सर्वथा अबाधित है।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. स्वानुरागमनघः कमलायां सूचयन्नपि हृदि न्यसनेन ।
   गौरवं व्यधित वागधिदेव्याः श्रीगृहोदरवीनजकण्ठ निवेशात् ।।
   "नैषध 21/48"

2. श्लोक संख्या - 21/55 "नैषध".

3. श्लोक संख्या - 21/56 "नैषध०"

4. श्लोक संख्या - 21/57 "नैषध०"

5. स्वेन पूर्यत इयं सकलाशा भो ! बले ! न मम किं भवितेति ?
   त्वं वटुः कपटवाचि पटीयान् देहि वामन् मनः प्रमदं नः ।।
   "नैषध 21/59"

वामनावतार प्रशस्ति में कवि लिखता है -तुम नारायण, दानवों के शत्रु हो , मैं तुम्हारे वामन-शरीर के वैभव का पूर्ण ज्ञान चाहता हूँ।[1] यहाँ स्पष्ट है कि ब्रह्म का स्वरूप अज्ञेय है। उसके क्रिया-कलाप बुद्धि से परे हैं। भक्तों को पवित्र करने वाले वामनावतार नारायण (ब्रह्म) आप अपना अभिप्राय -दानग्रहणेच्छा में ही क्यों प्रकट कर रहे हैं। मैं तो आपके चरणों में सर्वस्व समर्पण करना चाहता हूँ।[2] ब्रह्म का स्वरूप अवश्य अज्ञेय है, किन्तु उसको प्राप्त करने का मार्ग भी है। यहाँ कवि इसी मार्ग को निरूपित करता है। वह लक्षित करता है, ब्रह्म साक्षात्कार का सहज एवं सरल मार्ग है स्वाहंकार का परित्याग कर ब्रह्म के प्रति अपने को समर्पित करना।

श्री हर्ष लिखते हैं - श्रीकृष्ण, मनोहर गंधवती भोगवती नदी या पाता-लपुरी के स्वामी सहस्र फणों पर पृथ्वी को धारण कर उसे सुन्दर बनाते , चन्द्र सम श्वेत शेष नागावतार शेष- बलराम का रूप धारण करते हुए भी अशेष अर्थात् अनंत है।[3] यहाँ स्पष्ट है कि शेषावतार बलराम भी श्रीकृष्ण ही हैं। ब्रह्म जगत् (पृथ्वी) का पालक है। ब्रह्म अशेष (अनन्त) है। इसके आगे भी कवि बलराम और श्रीकृष्ण में पूर्ण साम्य स्थापित करता है।[4]

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या -21/60 "नैषध०"
2. श्लोक संख्या - 21/62 "नैषध०"
3. श्लोक संख्या - 21/81 "नैषध०"
4. श्लोक संख्या -21/82 "नैषध०"

को स्थापित करते हैं। विष्णु अर्थात् सर्वव्यापी (ब्रह्म)

श्री हर्ष कल्कि अवतार के जनयिता के रूप में विष्णु (ब्रह्म) नारायण का नाम सार्थक हुआ है, क्यों कि उनका अवतार (पुत्र) विष्णुयश (कल्कि) है।[1] "नर-हरि योग" निर्गुण, निराकार ब्रह्म को सगुण साकार अवतार के रूप में निरूपित करता है। कवि विस्मय के साथ स्तुति करता है कि नृसिंहावतार, रामवतार और कृष्णा-वतार में अद्भुत नरहरियोग था।[2]

विष्णु नाम ग्राही विष्णु भक्तों के मुख से सदा अनायास विष्णु नामो-च्चारण होता रहता है। अत: उन्हें किसी प्रकार की आकस्मिक मृत्यु से भय नहीं रहता है।[3] यहाँ आशय स्पष्ट है कि विष्णु नाम का जप सफल भव-कष्टों का निवा-रक है।

श्री विष्णु ने द्विजराज चन्द्र एवं पक्षिराज के समान गुण, धर्म वशात् नयन क्रिया में नियुक्त किया।[4] यहाँ श्री हर्ष लक्षित करते हैं कि संसार की समस्त वस्तुएँ ब्रह्मा के द्वारा व्यवस्थित हैं। ब्रह्म सर्वज्ञाता एवं सर्वदर्शक है।

शिव की अष्ट मूर्तियाँ हैं। क्षिति, जल, तेज, वायु, आकाश, यजमान, सूर्य, और चन्द्र में शिव की अष्ट मूर्तियाँ है।[5] यहाँ इंगित है कि ब्रह्म सर्वव्याप्त है।

- - - - - - - - - - - - - - -

1. ये हिरण्यकशिपुं रिपुमुच्चै रावणं च कुरुवीरचयं च ।
   हन्त हन्तुमभवंस्तव योगास्ते नरस्य च हरेश्च जयन्ति ।।
   "नैषध-21/87"

2. श्लोक संख्या - 21/98 "नैषध॰"

3. श्लोक संख्या - 22/89 "नैषध॰"

4. श्लोक संख्या 22/126 "नैषध॰"

श्रीहर्ष लिखते हैं कि विष्णु का विश्व रूप लोक-लोकोत्तर में व्याप्त है। (विश्वरूप-फलनामुपपन्नम्) यह तथ्य उपनिषद् में इस प्रकार लिखा है-"सर्वंविष्णुमयं जगत्"। श्रीहर्ष आगे लिखते हैं कि जैमिनि मुनि विष्णुमय ही हैं क्योंकि उन्होंने अपने विष्णुत्व के द्वारा देवों को शत्रुरहित अपने चक्र के प्रयोग से कर दिया।[1] वस्तुत: जैमिनिमुनि में विष्णु की शक्ति , विष्णु भगवान् की विश्वरूपता के कारण आयी थी। विष्णु की विश्वरूपता गीता में देखी जा सकती है।[2]

नल ने पुरूषोत्तम विष्णु की पूजा पुरूष सूक्त की षोडश ऋचाओं के विधान के साथ की और द्वादशाक्षर मंत्र से विष्णु की मूर्तियों की वंदना की।[3] ऋग्वेदोक्त पुरूष सूक्त के मंत्रों द्वारा "सहस्रशीर्षा: पुरूषा:"- पुरूषोत्तमार्चना की जाती है, जिसका तात्पर्य है कि ब्रह्म सर्वव्यापक है,वह सर्वशक्तिमान् है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ब्रह्म के सभी लक्षणों एवं स्वरूपों को अपनी काव्य धारा में प्रयुक्त करते हैं।

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या -5/39 "नैषध॰"

2. इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् "गीता 7/11"

3. श्लोक संख्या 21/39 "नैषध॰"

ईश्वर का विवेचन

यद्यपि ईश्वर परब्रह्म का औपाधिक रूप मात्र है, तथापि उसका महत्त्व कम नहीं है। उपनिषद् और अद्वैतवेदान्त का मन्तव्य है कि सत्य का साक्षात्कार आध्यात्मिक उन्नति के क्रम से ही संभव है। अज्ञानी व्यक्ति को जगत् ही सत्य लगता है, जिसे हम निम्नकोटि में रख सकते हैं। मध्यमकोटि में जगत् और ईश्वर दोनों सत्य दिखायी पड़ते हैं तथा उत्तम कोटि में ब्रह्म ही एकमात्र सत्य दिखायी पड़ता है। इन तीनों कोटियों का क्रम विवेक की प्राप्ति के क्रम से प्राप्त होता है। माया को उपाधि से युक्त ब्रह्म ईश्वर होता है, जो जगत् का स्रष्टा, पालक और संहारक होता है। ईश्वर जगत् का निमित्त कारण होता है। इसलिए सगुण उपासना में ईश्वर का विशिष्ट महत्त्व है। ईश्वर की उपासना के बिना विश्वातीत ब्रह्म का अनुभव नहीं किया जा सकता है। ईश्वर के इच्छानुकूल ही संसार की संरचना एवं संचालन होता है। संसार के शुभ-अशुभ, जय-पराजय, जन्म-मृत्यु आदि का कर्ता एवं धर्ता विधाता (ईश्वर) ही है। व्यक्ति के मन में स्फूर्णा-ईश्वरोत्प्रेरणा के द्वारा ही संभव है, इस ईश्वर सम्बन्धी मत को श्रीहर्ष इस प्रकार लिखते हैं- नियम से होने वाले शुभाशुभ कार्यों के विषय में विधाता की अबाध्य प्रकार वाली इच्छा जिस मार्ग से भागती है उसी मार्ग से मनुष्य का अत्यन्त पराधीन चित्त भी उसी प्रकार अनुगमन करता है, जिस प्रकार तिनका वात का अनुगमन करता है।[1]

---

1. श्लोक संख्या 1/120 "नैषध"

6 विज्ञत्वकीर्त्या , गतजन्मनो वा - विधाता का जन्म विज्ञ होने के यश में बोता है- प्रस्तुत उद्धरण के द्वारा श्रीहर्ष विधाता(ईश्वर)को सर्वज्ञ निरूपित करते हैं। ईश्वर त्रिकालदर्शी है, इसीलिए तो वह दो समान गुणों वाले नल और दमयंती का संयोग करता है।[1]

हे श्रेष्ठ सखियों ! मैं (दमयन्ती) ने अनादि काल से आवर्तमान जीव-परम्परा के कारणों की माला के प्रवाह के अधीन अथवा ईश्वर के प्रति अधीन बुद्धि होकर नल का वरण किया।[2] निरीश्वरवादियों के अनुसार जीव कर्म-परम्परा के अधीन है। ईश्वरवादियों के अनुसार जीव ईश्वराधीन है। जीव स्वेच्छाधीन नहीं है, अपितु कर्मफल और ईश्वरेच्छा के अधीन होता है। दमयन्ती ने नल का वरण कर्माधीन अथवा ईश्वराधीन होकर किया है।

गीता में श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि मुझ अधिष्ठता के सम्पर्क से यह मेरी माया चराचर सहित सर्वजगत् को रचती है। इस हेतु से यह सारा संसार आवागमन के चक्र से घूमता है।[3] कुंडिन पुरी में स्वयंवर-सभा का आयोजन विधि-निर्देशन से ही संभव है। स्वयंवर सभा का आयोजन भीम के प्रयास और दमयंती के रूप-

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 3/5। "नैषध०"

2. अनादिधीवस्वपरम्पराया हेतुस्तत्रौतसि वेश्वरे वा ।
आयत्तधीरेष जनस्तदार्या:! किमीदृशा: पर्यनुयुज्य कार्य ।।
"नैषध-6/102"

3. मया ध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचारम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।।"गीता 4/5"

गुणाकर्षण के कारण सम्भव नहीं है। वस्तुत: श्रीहर्ष ईश्वरीय विधान को ही प्रमुख कारण मानते हैं।[1]

दमयन्ती नल को अपने लिए त्रिलोकी का सारभूत कमलवदन क बताती है। वह कहती है नल के अतिरिक्त उसे अमूल्य चिन्तामणि पाने की चिन्ता नहीं है।[2] प्रस्तुत वर्णन से यह दार्शनिक तथ्य उद्घाटित होता है कि ईश्वर तीनों लोकों का स्वामी है वह तीनों लोकों का सार रूप भी है।

संसार का स्रष्टा ईश्वर है। जगत् में उससे बड़ा कोई शिल्पी नहीं है। इस तथ्य के भाव में श्रीहर्ष लिखते हैं कि स्वयं विश्वकर्मा (विधि) भी भीम के राजमहल के चित्र-शिल्प देखकर चकित थे।[3] कवि आगे लिखा है कि विधाता "ईश्वर" ने जल को संसार के लिए जीवन के रूप में बनाया है।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 10/60 "नैषध."

2. श्लोक संख्या - 3/81 "नैषध."

3. श्लोक संख्या - 18/12 "नैषध."

4. श्लोक संख्या - 16/89 "नैषध."

सृष्टि के आदि में जगत् की सर्जना करते नारायण के बाहुओं से जो क्षत्रिय जाति उत्पन्न हुई थी उसीक्षत्रिय जाति के विनाशार्थ उपयुक्त जमदाग्नि पुत्र परशुराम देहधारी नारायण के वे सृष्टि-लय कारक बाहुजयीहो।[1] यहाँ कवि स्पष्ट करता है कि ईश्वर जगत् का स्रष्टा और संहारक ह दोनों है। जो भी संसार में जन्म पाता है, वह अवश्य मरता है।

हे रामावतारी नारायण! सुग्रीवादि वानरों के रूप में इन्द्रादि देवों को भूतल पर उतार देने वाले विधाता ने आप राम की रचना के निमित्त पूर्वाभ्यासार्थ परशुराम को सरजा।[2] यहाँ कवि का अभिप्राय स्पष्ट है कि जगत् में जोव की सर्जना ईश्वर करता है व वह जीव देवों का अंश हो सकता है। चन्द्र का स्रष्टा विधाता है(ईश्वर) है।[3] नर-नारी का विशेष प्रचुर सम्मेलन संघटित करते प्रजापति के पुन:-पुन: संयोजन के अभ्यासोपरान्त ही नल-दमयन्ती के पति-पत्नी भाव की उत्कृष्टता आयो है।[4] यहाँ पर प्रजापति ईश्वर के स्रष्टा रूप में व्यवहृत है।

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 21/63 "नैषध॰"

2. श्लोक संख्या 21/66 "नैषध॰"

3. श्लोक संख्या - 22/65 "नैषध॰"

4. श्लोक संख्या - 15/88 "नैषध॰"

ईश्वर सर्व समर्थ है, वह किसी प्रकार से बाधित नहीं है। इस दार्शनिक बिन्दु का श्रीहर्ष सुन्दर चित्रण करते हैं- हे नारायण ! हरिहर होने के लिए ऊपरी ओर तक विभक्त करने के लिए, पैर से लेकर सिर तक सीधे-सीधे क्यों अपने शरीर के दो प्रकार किए और क्यों नृसिंह होने में तिरछा सिर अलग धड़ अलग ऊपरआधा शेर नीचे आधा नर विभक्त किया ? आप स्वतन्त्र हैं सो आप से क्या पूछा जा सकता है।[1] यहाँ स्पष्ट है ईश्वर के क्रिया-कलापों का ज्ञान कोई भी नहीं प्राप्त कर सकता है। वह स्वतन्त्र है। उससे किसी प्रकार का विवरण, सफाई नहीं माँगे जासकते हैं।

ईश्वर वर्णनातीत क्षमता वाला है, उसकी पालन-नाशक शक्ति पर कुछ नही कहा जा सकता है। इस आशय पर कवि लिखता है- हे पूर्णकाम ! त्रिलोकी को सर्जना क्यों करते हो? औरजो अपने आप स्वयं नष्ट हो जाता है बारम्बार अवतार लेकर उसका पालन क्यों करते हो ?

जगत् में ईश्वर की एक मात्र सत्ता है। ईश्वर के संकेतों पर ही, प्राणियों की चेष्टाएँ बलवती होती हैं। चक्रवाल युगल अन्य सभीकार्य ज्ञान पूर्वक करते हैं, क्या करने में कल्याण है, क्या करने में नही, यह सोचकर। उन्हें यह पहले से ज्ञात

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 21/90 "नैषध"

2. श्लोक संख्या - 21 /91 "नैषध"

है कि विरह-कष्ट असह्य होता है। फिर भी वे अकाम्य वियोगावारण में लीन हैं। यह एक स्पष्ट उदाहरण है कि प्राणियों के सभी कार्य दैवाधीन है।[1]

ईश्वर की शक्ति और तेज कहीं पर भी प्रकट हो कसता है, इसीलिए श्रीहर्ष ईश्वर की शक्ति और तेज को सूर्य में व्याप्त देखते हैं। सूर्य जनक, पालक, और संहारक है। वह कमल को जीवन देता है, उन्हें खिला देता है, वह अंधकार मिटा देता है, वह उपचार करने वाला भी है। वह मृत्यु का कारण भी है कुमुदों को संकुचित कर देता है।[2]

ईश्वर जन्म और मृत्यु से परे है। वह मृत्यु को जीत लेता है, इसीलिए श्रीहर्ष शिव (ईश्वर) को मृत्युन्जय कहकर सम्बोधित करते हैं।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता, उसकी सर्वव्यापकता, आदि सभी दार्शनिक तत्त्वों को अपनी काव्यधारा में प्रयुक्त किया है।

----

1. श्लोक संख्या - 21/133 "नैषध॰"

2. जगति तिमिरं मूर्च्छामब्जस्रजेऽपि चिकित्सत: ,
पितुरिव निजादस्माद्दस्रावधीत्य भिषज्यत: ?
अपि च शमनस्यासौ तातस्तत: किमनौचिती ,
यदयमदय: कल्हाराणामुदेत्यपमृत्यवे ॥
"नैषध॰ 19/50"

3. श्लोक संख्या - 22/62 "नैषध॰"

ब्रह्म ज्ञान- प्राप्ति- पद्धति का प्रयोग

ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति - पद्धति का निरूपण श्रीहर्ष ने प्रतीकात्मक रूप से किया है। वे लिखते हैं- " वह हंस छूटते क्षण से ही पंखों के मध्य से जंघा ऊर्ध्वगामी कर एक पैर से जल्दी-जल्दी सिर खुजलाता हुआ अपने घोंसले में जा बैठा।[1] यहाँ हंस को आत्मा के प्रतीक के रूप में ग्रहण किया गया है। जंघा के ऊर्ध्वगामी करने से तात्पर्य है ब्रह्म दर्शन के निमित्त ऊर्ध्वचेतस् होना, एक पैर से खड़ा होने से तात्पर्य है ब्रह्म दर्शन के लिए दृढ प्रतिज्ञ रहना, पैर से सिर खुजलाने का अन्वर्थ है ध्यान करना, तथा घोंसले में बैठने से तात्पर्य है समाधिस्थ होना। आगे श्रीहर्ष लिखते हैं-"उस चतुर पक्षी ने यत्र-तत्र स्थित पंख रूप दुर्ग में छिपे रहने से कठिनता से हाथ आने वाले पीड़ादायक रूप में काटते कीड़ों को कीड़ा आदि खोदने में अत्यंत उपयोगी चोंच की नोक से मार-मार कर हटा खुजली को दूर किया।"[2] यहाँ पक्षी हंस की चतुरता के लिए "पण्डित:" शब्द का प्रयोग किया गया है। वस्तुत: पण्डित: शब्द का प्रतीकार्थ एक ब्रह्म साधक योगी के लिए प्रयुक्त है।

---

1. श्लोक संख्या - 2/3 "नैषध०"

2. श्लोक संख्या -2/4 "नैषध०"

गरूदवन दुर्ग (पंच रूप बन दुर्ग) से तात्पर्य भौतिक स्थूल शरीर से है। पीड़ा दायक कीड़ों से तात्पर्य है पीड़ादायक इन्द्रियों से है। पदुकन्टकोटिकुट्टनैः से तात्पर्य बुद्धि और साधना से है। वस्तुतः यहाँ एक योगी के ब्रह्म -दर्शन के निमित्त आवश्यक निर्धारणों का वर्णन प्राप्त है।

उस हंस के किसी दूसरी ओर निहारती उस दमयन्ती के अंत:करण को झटिति संभ्रम से परिपूर्ण कर दिया। अर्थात् उस शब्द से दमयंती चौंक पड़ी और उसकी दृष्टि अपने पूर्व लक्ष्य से हट गयी।[1] यहाँ यदि हंस का प्रतीक-अर्थ स्वीकार किया जाता है तो उपर्युक्त वर्णन का दार्शनिक अर्थ निकलता है। यहाँ मानसिक विचारणा- (चिन्तन-ध्यान) के द्वारा आत्म-प्रकाश की प्राप्ति को दर्शाया गया है। आत्म-प्रकाश (विवेक) से सांसारिक और मानसिक बाधा-बंधनों का उच्छेद प्राप्त होता है, और अन्त: करण में नवज्योति (आत्म प्रकाश) प्रस्फुटित होती है।

श्री हर्ष स्पष्ट करते हैं कि आत्मज्ञान सामान्य लोगों के बस की बात नहीं है। आत्मज्ञान मोक्ष दायक होता है। इस तथ्य को कवि इस प्रकार लिखता है- मेरे समान अलौकिक पक्षी के सम्बन्ध में किसी विरल जन्मा नर के एक स्वर्ग भोगने के भाग्य के अतिरिक्त कोई पाशी बाँधने में समर्थ नहीं होगा।[2] यहाँ दिव्येतराशिच से तात्पर्य आत्मा है। स्वर्भोगभाग्यम्- स्वर्ग भोगने को भाग्य का प्रतीक अर्थ मोक्षानुबन्धिनी इच्छा है। आत्म-ज्ञान से ही मोक्षानुबन्धिनी इच्छा प्राप्त हो सकती है।

दमयन्ती कहती है- उसे (नल के विषय में) दूतमुखों से मैंने सुना है, मोह के कारण सब दिशाओं में देखा है और निरन्तर बुद्धि-विचारणा में उसी का ध्यान किया है।[1] मल्लिनाथ के अनुसार यहाँ अविद्या द्वारा प्रकृत-अर्थ का नियंत्रण हो जाने पर ब्रह्म के श्रवण, मनन, निदिध्यासन से सम्पन्न व्यक्ति ब्रह्म प्राप्ति व दुःखोच्छेद रूप मोक्ष गुरू के अधीन है- यह ध्वनित है।

" या तो अमृत रात्रि के स्वामी चन्द्र का तेज है या यह असत्य है। अथवा यह अमृत बुढ़ापा और मृत्यु का नाशक नहीं है।"[2] यहाँ लक्षित है कि अमृत परमानन्द मोक्ष है, जिसका प्रदाता अज्ञान के स्वामी ब्रह्म हैं। मोक्ष के उपरान्त जीर्णता मृत्यु आदि क्लेशों का बंधन कहा जाता है। यहाँ ध्वनि है कि अज्ञान के नाश के बाद ही परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है।

चार्वाक कहता है, "अरे धूर्त लोगों ! श्रुति द्वारा, शरीर को "मैं हूँ" इस प्रकार जानते व्यक्ति से यह शरीर "तू" वास्तविक वस्तु नहीं है- यह समझाकर इस शरीर को त्याग कर दिया जाता है।[3] यहाँ श्री हर्ष ने ब्रह्म-ज्ञान-प्राप्ति-पद्धति को स्पष्ट करते हैं। श्रुति कहती है कि यह नश्वर देह कुछ नहीं है, अनश्वर वास्तव में कुछ और ही है। वही वस्तु तुम हो-"तत्वमसि"। यह देह तुम नहीं हो और वही अप्रमाणित, असाक्षिक, कल्पित, बड़ा अजन्मा, अनश्वर

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 3/82, "नैषध"

2. श्लोक संख्या - 22/100 "नैषध"

आत्मा है-"स वा एष महानज आत्मा"। इस प्रकार आत्मबोध होने पर ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्म प्राप्ति पद्धति का ज्ञान श्रीहर्ष को अच्छी तरह प्राप्त है।

मोक्ष-विचार का संयोजन

आत्म ज्ञान होने पर तथा ब्रह्म-दर्शन पर परम आनन्द की प्राप्ति होती है। श्रीहर्ष लिखते हैं- नल ने दमयंती के रोमाग्र को प्रथम बार देखने पर ब्रह्म एकता के आन्द का अनुभव किया।[1] यहाँ पर ब्रह्मानन्द के आनन्द का वर्णन प्राप्त है। योगिजन ब्रह्म से अद्वैत भाव होने पर - ब्रह्म से अभिन्नता स्थापित होने पर - ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं। ब्रह्मानंद योगियों के योग-साधना के अंतिम सोपान "समाधि" की अवस्था में ही प्राप्त होता है।

मोक्ष अवर्णनीय और अव्यक्त है। श्रीहर्ष इसे स्पष्ट रूप से लिखते हैं- "जिस प्रकार द्विज उस संसार के स्वामी पुरूषोत्तम हरि विष्णु से संसारमोक्ष पाकर वाणी से भी अवर्णनीय परमानन्द को प्राप्त करता है, उसी प्रकार पक्षी हंस ने संसार के अधिपति पुरूष श्रेष्ठ नल से छुटकारा पाकर अवाक्‌वर्ण्य आनन्द को प्राप्त किया है।[2]

---

1. श्लोक संख्या - 7/3 "नैषध॰"

2. श्लोक संख्या - 2/1 "नैषध॰"

श्री हर्ष ब्रह्म को अनिवर्चनीय ब्रह्म से उपमित करते हैं और उस आनन्द को प्राप्ति का संकेत करते हैं जो परमानन्द है। जिसे जितेन्द्रिय समाधीस्थ योगीजन ही प्राप्त कर सकते हैं। इस आशय का लेखन द्रष्टव्य है-"विदर्भ नरेश कीपुत्री की सखियों के नेत्र अपने-अपने विषयों का देखना त्यागकर जिस प्रकार व्रतधारी योगियों के चित्त समस्त सासांरिक विषयों को त्यागकर अवर्णनीय ब्रह्म में लीन हो जाता है उसी प्रकार जिसके रूप का वर्णन संभव नहीं है ऐसे उस हंस {ब्रह्म} को देखा।[1]

नल के सभी अंग सुन्दर थे। दमयंती नल के अंगों को देखकर चतस्कृत रह गयी। उसे नल- के देखे और अदेखे अंगो के मध्य कुछ किसी प्रकार का भेद ही न रहा। उसका हृदय उत्सुकता, प्रसन्नता, और अङ्गों को देखने की तृष्णा से ऐसा पूर्ण हो रहा था कि जैसे प्रत्येक अंग को पी जाना चाहती थी। उसे यह भी न ज्ञात था कि उसने क्या देखा, क्या न देखा ? किस अंग कोपूर्णतया देखा किसे अर्धतया । भाव सबलता एवं अनन्दातिरेक में दमयन्ती की दशा उस योगिनीके समान हो रही थी जो सर्वत्र ब्रह्म को ही देखती है। और अदृष्ट ,वागगोचर, श्रुतिगम्य , ब्रहॅमस्वरूप में क्या निःसार है ? श्रुतिगम्य, ब्रह्मस्वरूप में क्या सारवान् है , यह सादर विचार करती आनन्दस्वरूप ब्रह्म साक्षात्कार में परमानन्द की अनुभव करती है। लोक -जीवन में दृष्ट के प्रति अवज्ञा और अदृष्ट के

- - - - - - - - - - - -

1• श्लोक संख्या 3/3 "नैषध•"

प्रति जो उत्साह होता है वह दमयन्ती में नहीं था। उसी के समान उसे आनन्द मिल रहा था।[1] उस दमयन्ती ने सर्वव्यापी उन देवों को ध्यान (भावना) के बल से अपने हृदय में जो साक्षात् किया, वह साक्षात्कार उसके अभीप्सित नल की प्राप्ति के दान की निश्चयकर्ता बन गया।[2] यहाँ नल-प्राप्ति ब्रह्म-साक्षात्कार है। सर्वव्यापी देव ईश्वर तुल्य है। यहाँ स्पष्ट है कि पहले ईश्वरध्यान फिर ब्रह्म-साक्षात्कार होता है।

सखी युगल द्वारा दर्शित दो दर्पणों में मुख्य उस दमयन्ती का मुख था और अन्य बहुत से कमल थे जिन्हें रात्रि में संकुचित होने रूप ब्रह्म-दर्शन के उपायों द्वारा बर्फ में नष्ट हो (निर्वाण प्राप्त कर) उस दमयन्ती के मुख की समानता रूप सालोक्य मुक्ति प्राप्त करते क्या लोगों द्वारा देखा गया ?[3] दो सखियाँ दमयन्ती को दर्पण दिखा रही हैं दर्पण में दमयन्ती का मुख-बिम्ब एक अर्थात् मुख्य है। एक (अद्वितीय) ब्रह्मरूप है। मुख के उपमान कमल अनेक हैं। अर्थात् अमुख्य अनेक जीव उन योगियों के समान हैं जो मुक्ति कामी हैं। योगीजन हिमालयादि में तपश्चर्या आदि अनेक ईशदर्शनोपायों द्वारा शरीर त्यागकर सालोक्य मुक्ति प्राप्त करते हैं और भगवान् के लीला-धाम को जाते हैं। वैष्णव भक्ति परम्परा में माध्वमत के अनुसार मुक्ति भोग चार प्रकार का है- सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य। दर्पण में प्रतिबिम्बित दमयंती के मुख के रूप में वे अम्बुज ही हैं, जिन्होंने शीत में

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 8/12 "नैषध"

2. श्लोक संख्या - 14/4 "नैषध"

निशासमाधि द्वारा दमयन्ती-मुख रूप भगवान् का सालोक्य प्राप्त कर लिया।

काशी निवासी दम्पति जीवन भर छल कर भोग करने बाद मृत्यु के बाद अर्धनारीश्वर शिव की भाँति एक दूसरे में समा जाते हैं।[1] भाव स्पष्ट है कि जीवों को सुख त्यागकर ध्यानयोगादि करना पड़ता है। तब ब्रह्म सायुज्य प्राप्त होता है।

पुरनागरियाँ उत्कंठित हो उत्सुकता के साथ अपने राजा की छवि निरख रही है। किन्तु उनके नयन पर पुरूष दर्शन के दोष से युक्त हैं। गवाक्षमार्ग के पीछे से देखने के कारण उनके नयन-दोष शामित हो रहे हैं।[2] यहाँ संकेत है कि पुरनागरियाँ योगिनियाँ हैं। सांसारिक बंधन (नयन -दोष) ब्रह्म दर्शन में बाधक हैं। किन्तु गवाक्ष मार्गरूपी योगध्यान साधना आदि से उन्हें ब्रह्म दर्शन का मार्ग मिल गया है।

ब्रह्म-साक्षात्कार तब ही हो सकता है, जब तक अज्ञान-मोहादि रूपी अंधकार का नाश न हो जाय। इस दार्शनिक आशय को श्रीहर्ष इस प्रकार लिखेत हैं- सूर्य हंस केसमान अपनी लाल किरणों से शुभ्र हंस के लाल चोंच के सदृश कीचड़ के ढेर सदृश काला अंधकार उड़ रहा है। तथा सूर्य को लाल किरणों के पड़ने से

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 11/112 "नैषध."

2. श्लोकसंख्या - 16/127 "नैषध."

शुभ्र हंस के लाल चोंच केसदृश कोचड़ के ढेर सदृश काला अंधकार उड़ रहा है। तथा सूर्य को लाल किरणों के पड़ने से अत्यंत काली भ्रमरीभो रक्त कृष्ण वर्ण दीख पड़ रही है।[1] यहाँ भ्रमरी एक योगिनी है, जिसे अज्ञानाधंकार के विनष्ट होने पर ब्रह्म-प्रकाश प्राप्त होता है और वह ब्रह्म प्रकाशमय हो जाती है।

नल ने दमयन्तो के संमुख "मम नलस्य" कहकर अपनी गोपनीयता भंग कर दी और स्वयं कोनल के रूप में व्यक्त कर दिया। नल को बोध हुआ कि वह दूत धर्मच्युत हो गया, क्योंकि नल को प्रकट रूप देखकर दमयन्तो विलापशून्य हो गयी, किन्तु नल ने संस्कार वशात् स्वयं संभलकर समयोचित वार्ता शुरू की।[2]

यहाँ नल एक मुनि की भाँति है, जो वेदान्ताभ्यास और शमदमादि से प्रबोध प्राप्त कर "अहं ब्रह्मास्मि" - मैं ही ब्रह्म हूँ- ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लेता है। एक अन्य अन्वयान्तर (नारायण, पण्डित, प्रकाशकार) के अनुसार-जैसे भूल से ज्ञानी मुनि प्रबोध प्राप्त कर लेता है, आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है, वैसे ही प्रबुद्ध नल भी अपने से हुई भूल को समझकर और संस्कार उद्बुद्ध हो जाने पर प्रकृति को प्राप्त कर गतमोह होकर दूतधर्म के अनुसार उचित विचार करने लगा।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 19/5 "नैषध"

2. श्लोक संख्या - 9/121 "नैषध"

इस प्रकार हम देखते हैं कि मोक्ष क्या है उसका स्वरूप क्या है। वेदान्त दर्शन के इस दार्शनिक तत्त्व को श्रीहर्ष ने अपने विशाद काव्य में निरूपित कर अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है।

आत्म तत्त्व ज्ञान का निरूपण

आत्म तत्त्व ज्ञान प्राप्त करने वाला साधक विलक्षण क्षमताओं से संयुक्त हो जाता है। वह त्रिकालज्ञ हो जाता है। वह सर्वज्ञाता हो जाता है। राजा भीम के पुरोहित ऋषि गौतम आत्म तत्त्व ज्ञानी हैं। इसीलिए वे नल-दमयन्ती के विवाहावसर पर भविष्य की उस घटित होने वाली घटना को जान जाते हैं, जब नल दमयंती को जंगल में छोड़कर भाग जायेगा।[1] आत्म तत्त्व ज्ञानी ऋषि गौतम परम तत्त्ववेत्ता हैं।[2] आत्मज्ञानी संसार में रहकर संसार में लिप्त नहीं होता है, उसे विषय-वासनाएँ बाधित नहीं कर सकती हैं। आत्मज्ञानी नल, दमयन्ती के साथ दिन-रात विषय-भोग में लीन रहते हुए भी पापभागी नहीं हुआ, क्योंकि कृत्रिम विषय-परता तत्त्वज्ञान से निर्मल मन से युक्त व्यक्ति को स्पर्श नहीं करती है।[3]

---

1. श्लोक संख्या - 16/37 "नैषध०"

2. श्लोक संख्या 16/1 "नैषध०"

3. श्लोक संख्या 18/2 "नैषध०"

" हे रघुनन्दन राम ! मुझ नल यदि आप तत्त्वबोध (आत्मसाक्षात्कार तत्त्व) नहीं देते हैं, तो जिस मोह के द्वारा संग्राम में विमूढ़ रावणी सेना ने समग्र संसार त्वन्मय (राममय) देखा था, उस मोह को ही दीजिए।[1]

यहाँ ध्वनित है कि विषय-विकारों से विरक्त रहने का सहज मार्ग ब्रह्म के प्रति तन्मयता है। यह आत्मसाक्षात्कार की कुन्जी है। श्रीहर्ष इस बात को और स्पष्ट लिखते हैं-मन, वचन, कर्म सब प्रकार से भी पवित्र स्वच्छ किए जाते संसारी जनों के चित्तों में घर के भीतर हुए कूड़े के सदृश जो राग द्वेषादि मल उत्पन्न हो जाते हैं, आप श्री विष्णु के स्मरण की परंपरा रूपी जल-धारा उसका शोध करने वाली संमार्जनी है।[2]

आत्मा पवित्र है, शुद्ध है, वह परब्रह्म का अंश है। किन्तु वही शुद्ध आत्मा सांसारिक विषय-विकारों में पड़कर अस्थायी बाह्यत: दूषित हो जाती है। इस दार्शनिक पृष्ठभूमि को दृष्टि में रखकर कवि काव्य कल्पना करता है कि जब चन्द्रमा रचा गया था तब वह सर्वत्र पूर्णत: स्वच्छ और कलंक रहित था ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1· श्लोक संख्या 21/68 "नैषध·"

2· सर्वथाऽपि शुचिनि क्रियमाणे मन्दिरोदर इवावकरा य ।
उद्भवन्ति भविचेतसि तेषां शोधनी भवदनुस्मृतिधारा ।।
"नैषध· 21/99"

क्योंकि उसकी रचना उस सामग्री से हुई थी, जिस सामग्री केउपादान को सभी निर्मल और स्वच्छ मानते थे, किन्तु काकतालीन्याय से चन्द्र,इन्द्र, के ऐरावत से टकराजाने के के कारण उसके मद-जल से कलङ्कित माना गया है। वस्तुत: चन्द्र बाह्यत: ही दूषित है, अन्तत: तो वह पवित्र है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष आत्मा और आत्म-तत्त्व परप्रकाण्ड पाण्डित्य रखते हैं और उस ज्ञान को वे बहुत ही निपुणता के साथ काव्य की धारा में प्रयुक्त करते हैं।

अविद्या और माया के विचार का अंकन

वास्तविक आधार या अधिष्ठान का ज्ञान नहीं रहने केकारण भ्रम उत्पन्न होता है जैसे, रस्सी का यथार्थ ज्ञान न होने पर उसमें सर्प का भ्रम हो जाता है , यही भ्रम अविद्या का मूल है। दमयन्ती का चन्द्रोपम मुख दुर्मद होकर दोनों कानोंमेंलटकते मणि-कुण्डलों को चन्द्र समझ लिया। अत: उन्हें कानों की लता वे बाँध दिया। दमयन्तीका मुख इतना क्रुद्ध था कि उसे इतना विवेक न रहा कि दो चन्द्र होते ही नहीं- यह उसका पूर्ण भ्रम था। दमयन्तीके चन्द्रमुख ने अविद्या(अज्ञान) वस यह धृष्टता की।[1] दमयन्ती की एक सखी भ्रमवश दमयन्ती

1; श्लोक संख्या - 15/41 "नैषध"

के घने सुन्दर और अतिश्याम बालों के स्थान पर धूप के धुयें को सँवारने लगी। वस्तुत: वह सखी अज्ञानवश धुएँ को बाल समझ बैठी।

जो ज्ञान भ्रमित करता है वह अज्ञान है। वह विमूढ़ता की जड़ कही जाती है। इसीलिए धर्मराज चार्वाक के लिए कहते हैं कि अधिक मतवैभिन्न्य में बुद्धि को भ्रमित मत करो। वस्तुत: तुम एक मार्ग का अनुसरण करो।[2] यहाँ भ्रम का निरूपण व्यक्त है। अज्ञान की परिणति दु:ख, कष्ट मृत्यु, पाप होते हैं। अज्ञान की परिणति इन्द्र कलि को अविवेकी, अज्ञानी न बनने का परामर्श देते हैं। यदि कलि अज्ञानी बनेगा और नल का द्रोह करेगा तो वह अनीतिजन्य पाप का घोर कष्ट भोगेगा।[3]

वेदान्त दर्शन में माया-भ्रम या अविद्या अज्ञान के द्वारा पैदा होता है। जिसके कारण वस्तु का स्वरूप छिप जाता है और उसके स्थान पर दूसरी वस्तु दिखायी पड़ती है। श्रीहर्ष लिखते हैं कि चन्द्रमा दमयन्ती-मुख से पराजित होने के भय के कारण उसने अपने को माया से दो चन्द्रमा की उद्भावना कर दिया।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 15/30 "नैषध॰"
2. श्लोक संख्या - 17/97 "नैषध॰"
3. श्लोक संख्या -17/147 "नैषध॰"
4. श्लोक संख्या - 15/51 "नैषध॰"

जगत्कर्ता विधाता बहुत बड़ा मायावी है। विधाता दही खाने की तृष्णा से चुपचाप माया से दही के बोच-बीच से खा गया है इसीलिए भीमराज के भोज समारोह की दही छिद्रों से व्याप्त है। यहाँलक्षित है कि माया अदृश्यभाव से घटित होतो है लोगों को केवल उसकी उद्भावना ही दर्शित होती है।[1]

रावण का पुत्र मेघनाद से जैसे माया से रचो रघुराज को भार्या सीता
रात्रि का अन्धकार रूप केश पकड़कर शीघ्र नाश
के केश को पकड़ कर हत्या कर दी थी उसी प्रकार किरणमाली सूर्य मायामयी कर देगा।[2] श्री हर्ष स्पष्ट करना चाहते हैं कि माया के द्वारा वास्तविक वस्तु को छिपाकर असत्य वस्तु प्रकट को जाती है।

श्री हर्ष जल को मायावो कहते हैं क्योंकि वह वस्त्र से आच्छादित भो दमयन्ती के सखी के अंगों को स्पष्ट कर दे रहा है। वस्त्र भीग गये है और अंग स्पष्ट हो रहे हैं।[3] नारायण {ब्रह्म} मायावी है, वह अपनी माया से हरिहरात्मक संसार वाला है, वह सकल भव और असकल भव के रूप में भो विद्यमान है।[4] नल कहता है कि नल और दमयन्तो को विरोधिनी दोनों सखियाँ माया {कपट छल} और मिथ्या {असत्य} से युक्त है। उन पर विश्वास करना मूढ़ता है।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 16/93 "नैषध."

2. श्लोक संख्या - 19/8"नैषध."

3. श्लोक संख्या - 20/129 "नैषध."

4. श्लोक संख्या -21/88 "नैषध."

श्री हर्ष लिखते हैं कि सांसारिक वस्तु घट-पट, वृक्ष-नदी आदि में विचार करने पर वास्तविक भेद नही है। यह भेद (भिन्न) मिथ्या है यह सब कुछ उसकी माया-इच्छामात्र से है। उपनिषद् आदि सब कुछ उसी सच्चिदानन्दघन का स्वरूप -"सर्वं खल्विदं ब्रह्म के समान लगते हैं।[1]

मगधनृपति की कीर्ति हो या अकीर्ति दमयन्ती को उसमें कोई रूचि नहीं है, वह अपनी प्रज्ञाचक्षु से उनका अभाव समझती है। वह जानती है कि आठवें स्वर में गान नहीं होता है। गूँगे नहीं बोलते हैं-बाँझ के पेट से कोई नही पैदा होता है।[2] यहाँ श्रीहर्ष की व्यन्जना है कि ब्रह्म के अतिरिक्त सब मायाजन्य अर्थात् मिथ्या है। क्योंकि प्रज्ञाचक्षु योगी ब्रह्म ज्योति को ही देखता है।वह अंधकार (माया) को नही देखता है, अर्थात् वह सत्य नहीं मानता है।

चार्वाक कहता है कि वैराग्य शम, शान्ति ये सभी व्यर्थ हैं। वैराग्यादि से परलोक की प्राप्ति होती है, यह झूठा है। यह देह और संसार ही सत्य है।[3] वस्तुत: यहाँ व्यन्जना है कि यह देह और सारा संसार मायाजन्य और मिथ्या है। परलोक अर्थात् ब्रह्म एक मात्र सत्य है। माया और अज्ञान का निराकरण तथा ब्रह्म-दर्शन वैराग्य, शम, शान्ति, आदि गुणों के द्वारा ही किया जासकता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 21/93 "नैषध।"

2. श्लोक संख्या 12/106 "नैषध।"

3. श्लोक संख्या 17/70 "नैषध।"

जीव-संवरण का संयोजन

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्यच" "गीता से प्राणियों का पुनर्जन्म सुनिश्चित है। प्राणी जिस भाव को स्मरण करते हुए शरीर को त्यागते हैं, उसी भाव से सम्भरित होने के कारण वे उसी को प्राप्त होते हैं।[1] श्री हर्ष इस दार्शनिक तत्त्व का निवेश दमयन्तो के कथन में करते हैं। दमयन्तो प्रार्थना करती है कि उसक हृदय प्राणप्रिय के अभाव में फट जायेगा। नल से यही प्रार्थना है कि हृदय फट जाने से बने मार्ग से प्राण तो चले जायेंगे पर नल, प्राणों के साथ हृदय से न निकले, क्योंकि प्राणप्रिय नल भी प्राण के समान हैं। प्राण तुल्य होने से नल अन्तस् में बना रहे। इससे दमयन्तो को यह लाभ होगा कि नल उसे अन्य जन्म में प्राप्त हो सकेगा। यद्यपि इस जन्म में उसकी प्राप्ति की इच्छा नहीं पूर्ण हुई।[2]

पीड़िता दमयन्तो चाहती है कि काम उसके प्राण ले, ले, किन्तु अपने बाणों से नहीं, अपितु नल के बाणों से। नल के बाणों से नल का ही ध्यान करती दमयन्ती यदि मृत्यु को प्राप्त होगी, तो वह तद्रूप "नलरूप" हो जायेगी। क्योंकि मरते समय जिसकी भावना जैसी होगी, उसे वैसा ही रूप प्राप्त होगा। नलरूप से पुनर्जन्म प्राप्त कर दमयन्ती काम को जी सकेगी।[3] एतदत्र श्रीहर्ष ने पुनर्जन्मवाद और जीव के भावानुसार संवरण की दार्शनिकता का सम्प्रयोग किया है।

---

1. गीता 6/8
2. श्लोक संख्या 9/100 "नैषध"
3. श्लोक संख्या 9/147 "नैषध."

जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे में संचरण उसके पुण्य अथवा पापकर्म के फलस्वरूप उच्चरूप में अथवा निम्न रूप में होता है। इसीलिए पुष्पकर सरोवर और नदियों का आश्रय लेने वाला अर्थात् तीर्थ-सेवी और रात भर मुँदा रहकर समाधि रखने वाल {ईश्वर भक्ति करने वाला} कमल अपने सुकृत्यों के फलस्वरूप जन्मान्तर में अतिरमणीय दमयन्ती के चरण का स्थान पाया है।[1]

स्वर्ग में जाने के लिए वीरगण इस पार्थिव शरीर को रणक्षेत्र में छोड़ देते हैं, क्योंकि इस शरीर को रचना मिट्टी से हुई है। और अत्यंत गुरु है। केवल वीरों का सूक्ष्म शरीर हो स्वर्ग को जाता है[3] वस्तुत: मरने के बाद पञ्चस्थूल तत्त्वों से निर्मित शरीर पञ्चस्थूल तत्त्वों में विलीन हो जाता है। और आत्मतत्त्व सूक्ष्म शरीर कर्मानुसार अग्रसारित होता है।

कीकटाधिपति राजा के द्वारा युद्धस्थल में छोड़े गये बाणों से शूर-वीर मरते हुए न सीत्कार करते हैं और न ही काँपते हैं। वे मुक्त होकर पुनर्निवृत्त भी नहीं होते हैं।[3] यहाँ श्रीहर्ष की "मुक्त" शब्द के द्वारा लक्षणा है कि वीर वीरगति पाकर मोक्ष को प्राप्त करता है तथा "पुनर्निवृत्ति" शब्द से लक्षणा है कि वे वीर पुनर्जन्म से छुटकारा पा जाते हैं। श्रीहर्ष लिखते हैं अन्तहीन वंशों के दोष रहित होने से निर्दोष जन्म कौन सा हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ।[4]

---

1. श्लोक संख्या 2/39 "नैषध"
2. श्लोक संख्या 5/15 "नैषध"
3. " " 12/68 " 4. श्लोक संख्या 17/39 "नैषध"

यहाँ ध्वनि है कि संसार अनादि है, जन्म परम्परा भी अनादि है। जीव-संचरण अनादि काल से चल रहा है। जो सांसारिक विकारों कापरिणाम है। हे भीमसुते । संसार सागर का जीव सत्य तारक ब्रह्म का उपदेश देने में प्रवीण काशी नगरी में आकर भवितभव-शिव से अद्वैतता प्राप्त कर लेते हैं।[1] इस वर्णन के द्वारा श्रीहर्ष व्यञ्जित करते हैं कि जीवन-मरण का बंधन (जन्मान्तर-परंपरा का अन्त) ब्रह्म-एकता के उपरान्त ही हो सकता है।

सृष्टि - विचार का विशदीकरण

सृष्टि अनादि है। वह ब्रह्म से सम्भूत है। उसमें जन्म की अनादि परंपरा है। इस तथ्य के सहारे श्रीहर्ष लिखते हैं, जैसे आदिहीन सृष्टि की परम्परा में देखी गयी हो अथवा चित्रों में उसका अनुभव हो अथवा शंबरजयी की शम्बर शिल्प-माया हो, ऐसी भीमसुता दमयन्ती को नल ने देखा।[2] यहाँ श्री हर्ष ने सृष्टि -सर्जना के दो तथ्यों को अनावृत किया है।प्रथमत: सृष्टि का कोई आदिनहीं है, जीव-परम्परा के पूर्व से ही सृष्टि को संचालित है। द्वितीयत: जन्म की एक अन्तहीन धारा है, तभी तो नल ने दमयन्ती को किसी जन्म में देखा होगा। किन्तु पूर्व जन्म की घटनाएँ स्मरित नही रहती हैं। यह लोक व्यवहार में सिद्ध है, इसीलिए श्रीहर्ष "वा" (अथवा) शब्द के सम्प्रयोग द्वारा दमयन्ती के देखे जाने का लौकिक कारण खोजते हैं, और स्पष्ट करते हैं कि दमयन्ती के जन्म का कारण शाम्बरी शिल्प (काम -माया) ही है।

---

1. श्लोक संख्या - 11/117 "नैषध" 2. श्लोक संख्या-6/55 "नैषध"

श्री हर्ष लिखते हैं कि काम शिव से वैर-स्पर्धा पूरा करने के लिए स्त्री को अस्त्र बनाकर ईश्वर "शिव" की सृष्टि को पीड़ित कर रहा है।[1] यहाँ व्यंजित है कि सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर है। सृष्टि{जगत्} में ईश्वर का अंग {उसकी सन्तानें} जीव हैं, जीव-जन्म की एक लम्बी परंपरा है।

नल से द्वेष रखने वाला आश्रय खोजी कवि राम के समान श्री सम्पन्न नल की रमणीक वाटिका में पहुँच गया।[2] यहाँ विरोध स्पष्ट है, क्योंकि ऐतिहासिक क्रम से राम नल से उत्तरवर्ती हैं। इस विरोध का समाहार है कि सृष्टि अनादि है। मल्लिनाथ के अनुसार{ जिसका संकेत करना श्रीहर्ष का लक्ष्य है।

श्री हर्ष लिखते हैं कि त्रिलोकों का आश्रयभूत ब्रह्माण्ड आदि रहित मंडप सा लग रहा है।[3] यहाँ स्पष्ट है कि सृष्टि अनादि है, जिसमें तीनों लोक और ब्रह्माण्ड समाहित हैं।

"प्रवह" नामक वायु के रथ से अलग हुआ वाहनभूत मृग आकाश में व्यास से त्रस्त हो चन्द्र तक पहुँच गया और आज भी स्थित है।[4] यहाँ प्रवह शब्द से व्यञ्जित है कि सृष्टि क्रम में सात वायु है, जिसमें प्रवह एक वायु है।

सृष्टि के तीनों लोक का उद्धरण नैषध में द्रष्टव्य है।

---

1. श्लोक संख्या - 22/75 "नैषध."
2. श्लोक संख्या - 17/17 "नैषध."
3. श्लोक संख्या - 17/117 "नैषध."

स्थूल-शरीर और लिङ्ग-शरीर का प्रकरण

वेदान्त के दर्शन का मत है कि सूक्ष्म शरीर सत्रह अवयवों से युक्त होने पर लिङ्ग-शरीर है। सांख्या दर्शन अट्ठारह अवयवों का लिङ्ग शरीर मानता है। अन्त:करण की निश्चयात्मिका वृत्ति, बुद्धि और संकल्प विकल्पात्मिकावृत्ति मन है। चित्त और अहंकार का इन्हीं दोनों ﴾मन और बुद्धि﴿ में अन्तर्भाव हो जाता है। लिङ्ग शरीर रहता है तब स्थूल शरीर रहता है। जीव के उत्क्रमण करने पर शरीर त्यागने पर﴿ इन्द्रियाँ भी उत्क्रमण करती हैं तथा लिङ्ग शरीर के उत्क्रमण करने पर स्थूल-शरीर भौतिक पदार्थों में विलीन और विनष्ट हो जाता है। प्राण के न निकलने पर इन्द्रियाँ नहीं निकल पाती ﴾विनष्ट हो पाती﴿ हैं और मृत्यु नहीं हो पाती है। श्रीहर्ष इस दार्शनिक तत्व को काव्य की धारा में प्रयुक्त करते हैं। दमयन्ती कह रही है कि वियोग के क्षण युगों के तुल्य दु:साध्य हैं। यदि मृत्यु का आगमन हो जाता है तो पीड़ा से निवृत्ति हो जाती है।[1] प्रिय नल इस मेरे स्थूल-शरीर के बीच जो "मैं" से अभिहित दमयन्ती है, उसे नहीं छोड़ता है। "मैं" ﴾दमयन्ती﴿ अन्त: करण की निश्चयात्मक वृत्ति ﴾बुद्धि﴿ का अहंकार रूप है। और दमयन्ती का मन जो नल द्वारा बाँधा गया है, अन्त:करण की संकल्प-विकल्पात्मक वृत्ति ﴾मन﴿ ही चित्त है। इस प्रकार मन और अहंकार ﴾मैं﴿ प्राणवायु के साथ पूर्णत:

---

1. श्लोक संख्या 9/94 "नैषध"

बँधे हुए हैं और प्राणवायु नलाबद्ध और मैं (अहंकार) के साथ रहने को विवश है। जिसके परिणाम स्वरूप प्राण वायु स्थूल-शरीर को नहीं छोड़ पा रहा है। श्री हर्ष लिखते हैं कि "शिव ने काम को पञ्चतत्त्व को पहुँचा दिया।"पञ्चत्व पहुँचाने से तात्पर्य है कि शिव ने कामदेव के भौतिक स्थूल शरीर को भस्म कर दिया। इस जगत् में स्थूल शरीर का ही विनाश होता है। इसी आधार पर श्रीहर्ष कल्पना करते हैं कि कुंडिनपुरी की सभा में एकत्र तरुणवृन्द, काम के भस्मोपरान्त उसके सूक्ष्म शरीर का ही पुनर्जन्म है।[1] संसार में स्थूल शरीर के बन्धन में सूक्ष्म शरीर आबद्ध रहता है और क्लेश सहता है। इस तथ्य की व्यंजना चार्वाक के कथन में श्रीहर्ष ने प्रयुक्त की है- चार्वाक कहता है भक्ति मुक्ति का साधननहीं है यह सर्वथा मिथ्या प्रमाणित है। हरि-हर की पत्नियाँ लक्ष्मी-पार्वती विष्णु और शिव को चित्त में बसाकर भी देह बंधन, अर्थात् काम के कारागार में बंद रहती है। काम के लिए बैचैन रहती है।[2]

यदि चार्वाक कहते हैं कि परलोक के विषय में कोई नहीं जानता है, तो यह असत्य है। क्योंकि वेद-पुराणों में मिलता है कि किसी व्यक्ति का स्थूल शरीर से लिङ्ग शरीर लाना था किन्तु नाम समानता से भ्रान्त हो यमदूत उसी नामधारी व्यक्ति का लिङ्ग-शरीर ले गया। यमलोक में जब यह भूल ज्ञात हुई, तो अवांछित

---

1. श्लोक संख्या 10/6। "नैषध"
2. श्लोक संख्या 17/75 "नैषध"

व्यक्ति का लिंग -शरीर पुन: परावर्तित कर दिया गया और वह व्यक्ति जीवित हो गया। श्री हर्ष ने यहाँ पर स्थूल शरीर और लिङ्ग-शरीर का विशद् विवेचन किया है।

अन्त:करण का विवेचन

बाह्य विषयों को ग्रहण करने के कारण श्रोतादि बाह्य इन्द्रियाँ कहलाती हैं। आन्तरिक विचार की कारणभूत इन्द्रियों को अन्तरिन्द्रिय या अन्त:करण कहते हैं। अन्त:करण की दो वृत्ति है- निश्चयात्मक वृत्ति(बुद्धि अहंकार) तथा संकल्प -विकल्पात्मक वृत्ति (मन-चित्त)। श्रीहर्ष वेदान्त के इस सिद्धांत से अवगत है, इसीलिए वे लिखते हैं कि दमयन्ती के द्वारा नल का वरण कर लेने के बाद यमराज अपने वास्तविक रूप में उस प्रकार प्रकट हुए जिस प्रकार आगत निराश राजाओं के अन्त:करण में क्रोध उत्पन्न हुआ।[1] यहाँ क्रोध अन्त:करण की निश्चयात्मक वृत्ति-अहंकार है। श्रीहर्ष लिखते हैं-नल ने वरूण के वर से सहज प्राप्त जलपुरों से और साश्चर्यों से भी दोनों सखियों के वक्षस्थल और अन्तकरण को क्रमश: भिगो दिया और स्तब्ध कर दिया।[2] यहाँ पर अन्त:करण से संकल्प विकल्पात्मक वृत्ति-मन का सम्प्रयोग द्रष्टव्य है।

पञ्च महाभूतों का प्रयोग

वेदान्त दर्शन में पञ्च महाभूतों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश का उल्लेख प्राप्त है। श्रीहर्ष इस दार्शनिक तत्त्व को इस प्रकार प्रयुक्त करते हैं।

---

1. श्लोक संख्या - 14/62 "नैषध०" 2. श्लोक संख्या-20/126 "नैषध०"

इस प्रकार प्रयुक्त करते हैं- नल युद्ध में शत्रु और स्वजनों में प्रभावशाली सिद्ध होता है। अश्विनीकुमारों के समान जिस नल की भूतों-(पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) में यह सकल धरती अधीनता का आश्रय लेती हैं।[1]

हे नल ! जिस स्थान पर तेरी इच्छा हो उस मरुस्थल में भी जल की उत्पत्ति हो जाय क्योंकि इस लोक में जैसा जल, लोक-जीवन-यात्रा का हेतु है, वैसा अन्य चार भूत (पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश) नहीं हैं।[2] यहाँ पर पञ्च महाभूतों का उल्लेख प्राप्त है।

उपनिषद् का विवरण

उपनिषद् ब्रह्म-ज्ञान का ग्रन्थ है। इसमें ब्रह्माद्वैत का प्रतिपादन है। श्रेष्ठ ब्राह्मण ही उपनिषद्ज्ञान का पाठ सीख सकते हैं। इस तथ्य को श्रीहर्ष उत्प्रेक्षा-त्मक ढंग से लिखते हैं- वृक्षों से भीख लेकर खाने वाला कोकिल रूप ब्राह्मण पुष्पबाण (काम) का अद्वैत प्रतिपादन करने वाली दमयन्ती रूपा अपूर्व उपनिषद् इस (दमयन्ती के मुखचन्द्र रूप ब्राह्मण श्रेष्ठ से क्या नहीं पढ़ती है ? पढ़ता ही है।[3]

उपनिषद् ब्रह्म -रहस्य को स्पष्ट करती है। वह स्पष्ट करती है ~~वह स्पष्ट करती है~~ कि ब्रह्म और जीव एक हैं। उप-निषद् के इसी आशय को श्रीहर्ष दमयन्ती के कथन में प्रयुक्त करते हैं। दमयन्ती कहती है कि हे नल ! जिसे आप

---

1. श्लोक संख्या - 13/18 (नैषध)
2. श्लोक संख्या - 14/80 (नैषध०)
3. श्लोक संख्या - 7/48 (नैषध०)

अभी तक नहीं समझ सके उसी पुष्पबाण (काम) की उपनिषद् (काम रहस्य) को मेरी सखी से सुनो, अर्थात् ब्रह्माद्वैत की भाँति मेरा तुम से प्रेम है। यह जानो।[1]

अद्वैववाद का प्रयोग

नल में रमणीयता अद्वैतवाद की भाँति प्राप्त थी। अद्वैतवाद की परिभाषा यहाँ स्पष्ट है। जिस प्रकार ब्रह्म और जीव में कोई अन्तर नहीं है और अन्ततः अद्वैतता स्थापित होती है, उसी प्रकार नल के रूप और सौन्दर्य एक दूसरे में अद्वैत-भाव से मिले हुए हैं।[2] श्रीहर्ष ने प्रस्तुत वर्णन में अद्वैतवाद का पारिभाषिक अर्थ प्रयुक्त किया है।

कर्मवाद की अवधारणा की प्रयुक्ति

श्रीहर्ष कर्मवाद को इस अवधारणा—कौन अपने किये कृत्यों का फल नहीं भोगता है।[3] को अपनी काव्यधारा में प्रयुक्त करते हैं। वे लिखते हैं कि सूर्य ने अपनी किरणों से चन्द्र का परिभव किया था, इस घृणित कृत्य का प्रतिकार नारद द्वारा सूर्य और उसकी किरणों के उलङ्घन और नारद की यात्रा द्वारा हुआ।

---

1. पदातिथेयील्लिखितस्य ते स्वयं वितन्वती लोचननिर्झरानियम् ।
   जगाद यां सैव मुखान्मम त्वया प्रसूनबाणोपनिषन्निशम्यताम् ।।
   "नैषध॰ 9/143"

2. श्लोक संख्या – 6/65

3. श्लोक संख्या –5/6 "नैषध॰"

इन्द्र के विवाह प्रस्ताव के प्रत्युत्तर में दमयन्ती का कथन कर्म और धर्म के महात्म्य की स्थापित करता है। कथन इस प्रकार है- स्वर्गवासियों को केवल सुख की अवाप्ति होती हैं धर्म की नहीं। इस मृत्युलोक में सुख और धर्म दोनों होते हैं। यहाँ यज्ञ द्वारा देवों को सन्तुष्ट करना सरल है। ऐसी स्थिति में मैं दमयन्ती तीन (सुख, धर्म, यज्ञ द्वारा देव तुष्टि) को छोड़कर एक सुख की कामना क्यों करूँ।[1] धार्मिक का स्वर्ग से नीचे आना निश्चित है और वह धार्मिक पुण्यात्मा इस धरती से पुनः स्वर्ग जाता है। स्वर्ग में निवास की अपेक्षा पृथ्वी पर रहना अच्छा और उपयुक्त है।[2] इस तथ्य की पुष्टि अन्य तर्क से भी की गई है। पुण्यात्मा सज्जन स्वर्ग में रहकर पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से मृत्यु लोक को अवश्य आता है। इस प्रकार श्रीहर्ष स्पष्ट करते हैं कि पुण्य, धर्म करने से ही सांसारिक बंधन से पुण्यात्मा विमुक्त हो सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने वेदान्त के ब्रह्म-विचार व मोक्ष-विचार, जगत्-विचार, आत्म-विचार आदि विविध अवधारणाओं को विधिवत् आत्मसात् किया था, जिसे उन्होंने काव्य की धारा में विविध कल्पनाओं द्वारा प्रयुक्त किया है।

- - - - - - - - - - - - - - -

1· श्लोक संख्या - 6/98 "नैषध·"

2· श्लोक संख्या - 6/99 "नैषध·"

न्याय दर्शन

अनुमान-प्रमाण की प्रस्तुति

न्याय-दार्शनिकों का निर्धारण है कि जहाँ भाप, धुआँ होता है, वहाँ आग होती है-"यत्र-यत्र धूम: तत्र-तत्र वह्नि:"। यह अनुमान प्रमाण से सिद्ध है। धुआँ भाप से आग का अनुमान पूर्णत: सत्य होता है। श्रीहर्ष इस अनुमान सिद्धांत का प्रयोग अपनी काव्य सर्जना में करते हैं- पर्वत के समान राजा भीम की सुता दमयन्ती के भाप(वाष्प) के समान अश्रु देखकर जो अनल रूप नल का ठीक-ठीक अनुमान कर लिया गया, यह अनुमान की प्रणाली के आधार पर आश्चर्यजनक रूप से सिद्ध हुआ है। बिना बताए ही सखियों ने अनुमान के साहाय्य से दमयन्ती का नलानुराग जान लिया, बिना बताये ही जान लेना आश्चर्य का विषय होता है।[1]

अनुमान-प्रमाण- सिद्धांत में व्याप्ति स्थापना द्वारा किसी वस्तु का अनुमान लगाया जाता है। अनुमान-सिद्धांत द्वारा श्रीहर्ष ने नल के मुख को चन्द्र के समान उसके मृगवत् गुणों के आधार पर स्थापित किया है। नल का मुख चन्द्र के समान है। उसके नयन चन्द्रांक में स्थित मृग के नेत्र के समान हैं और उसके केश उसी मृग के चामर-गुच्छ के समान हैं।[2] अनुमान का "आधार" है मुख का चन्द्र होना। जहाँ-जहाँ

---

1. श्लोक संख्या 4/18 "नैषध"
2. श्लोक संख्या 8/40 "नैषध"

विधुत्व होता है वहीं-वहीं मृगत्व होता है क्योंकि विधु में मृगत्व देखा जा रहा है। इस प्रकार यहाँ पूर्णत: व्याप्ति-विधि स्थापित होती है।

अनुमान-प्रमाण के सिद्धांत के द्वारा श्री हर्ष अपनी काल्पनिक भंगिमा सिद्ध करते हैं। वे दमयन्ती की नासिका को दो बाणों को धारणकरते काम का तूणीर बताते हैं। नासिका के दो छिद्रों में काम के द्वारा तीनों लोकों की जय से बचे दो पुष्पबाण हैं। इसका अनुमान नासारन्ध्रों से निकलती सुगन्ध से होता है।[1] यहाँ व्याप्ति स्पष्ट है, यदि पुष्प न होते तो सुगन्ध न होती। यहाँ सुगन्ध है अत: पुष्प हैं, क्योंकि जहाँ-जहाँ सुगन्ध है वहाँ-वहाँ पुष्प हैं। इसलिए नासारन्ध्रों में पुष्पबाण होना चाहिए।

श्रीहर्ष अन्वय व्यतिरेक सिद्धांत का प्रयोग करते हैं। दमयन्ती के कुच घड़े जैसे हैं। वस्तुत: भैमी-स्तनों की स्पर्धा के कारण ही न्याय शास्त्रादि में घट का दृष्टान्त बना है-"यद् कृतकं तदनित्यं यथा घट:" यन्नित्यं न तदकृतकमपि यथा घट:। यही अन्वय व्यतिरेकी सिद्धान्त है। यह दृष्टांत घट को भैमी कुच-स्पर्धा से ही मिला है और उसी शिल्प कुच-स्पर्धा में बड़े-बड़े मटके आदि बनाने में निर्माता कुम्भकार नाम से विख्यात हो गये।[2]

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 7/36 "नैषध०"

2. श्लोक संख्या - 7/75 "नैषध०"

नेपाल-नरेश के बाण किसी भी स्थिति में दृष्टिगोचर नहीं है-न तूणीर से निकाले जाते, न कानों की सीमा तक डोरी पर खींचे जाते और न आकाश में उड़कर लक्ष्य को छेदकर धरती पर गिरते हुए। परन्तु युद्ध में मरकर गिरे शत्रुओं की छाती में हुए छेदों से इन बाणों का अनुमान कर लिया जाता है।[1] यहाँ श्रीहर्ष अनुमान के व्याप्ति - सिद्धांत कीओर संकेत करते हैं।

यद्यपि पृथ्वीवासी मनुष्यों नें अमृत नहीं पीया, तथापि यह घृत अमृत से अधिक स्वादिष्ट है। यह अनुमान से जाना जा सकता है, क्योंकि अमृतभोगी देव यज्ञाग्नि में जिसकी गंध जलकर नष्ट हो जाती है, ऐसे भी इस घी की आकांक्षा करते हैं।[2] यहाँ श्री हर्ष ने अनुमान-सिद्धांत का प्रयोग किया है।

प्रतिबिम्ब में अवलोकित सखी दमयन्ती की मुख चेष्टाओं को देखकर नल के कथन का अनुमान करती और उस दमयन्ती के लज्जाभावादि का अनुकरण करती कला(सखी) को सुन रही जैसे अनुमित किया गया है।[3] यहाँ व्याप्ति-सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है।

श्रीहर्ष अनुमान सिद्धांत की पद्धति में लिखते हैं कि शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को चन्द्र एक-कलात्मक उदित होता है। और चूँकि शिव-मस्तक पर एक कलात्मक चन्द्र ही स्थित है, पूर्ण चन्द्र नहीं- यह इस तथ्य का अनुमान सिद्ध प्रमाण है कि मूलरूप में चन्द्र एक कलात्मक ही है। सागर ने उसे एक कलात्मक ही उत्पन्न किया था।

---

1. लोक संख्या 12/49 "नैषध"
2. " " 16/71 "नैषध" 3. श्लोक संख्या - 20/106 "नैषध"

पूर्ण चन्द्र तो वह समयोचित विकास से प्राप्त कर चुका है। शिव द्वारा एक कलात्मक चन्द्र-धारण उसे मौलिक रूप में धारण करना है।[1]

अनुमान-सिद्धांत की पद्धति पर श्रीहर्ष लिखते हैं कि जिन विचारकों ने कमलिनी-दाह रूप विकार का कारण होने, तुषार में अग्नि का अनुमान किया उन्हीं विचारकों ने हिमकर चन्द्र में कलंक का भी उसके तुषारजनित धुएँ के समूह के रूप में समर्थन किया।[2] यहाँ स्पष्ट है जहाँ-जहाँ दाहकत्व होता है, वहाँ-वहाँ अग्नि होती है- तुषार में दाहकत्व है। अत: तुषार में अग्नि है।

स्वर्णाचल मेरु निश्चित रूप से बहुत समय व्यतीत हो जाने के कारण नीलिमा-काई-लगने से नीला हो गया है, ऐसा मेरा दमयन्ती का अनुमान है।अन्यथा चन्द्रमा के जगत् को प्रतिच्छाया-भूत कलंक के चिह्न में मेरू का नीला भाग भी प्रतिबिम्ब हो जाता है।[3] यहाँ भी अनुमान-सिद्धांत का प्रयोग किया गया है।

अनुमान-प्रमाण-सिद्धांत में व्याप्ति स्थापना में प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, उपनयन और निगमनपद्धति है। दृष्टान्त-पद्धति को श्रीहर्ष निरूपित करते हैं- ज्ञान पूर्वक पहले से समस्त कर्म करने वाले भी अभीप्सित वियोग का आचरण करते चकवा-चकवी हाय, प्राणियों की चेष्टायें दैवाधीन होने से अनुमान में दृष्टान्त है।[4] दमयन्ती ने सवन राज को अस्वीकृति अपने भ्रूसंकेत और अन्य चेष्टाओं से प्रकट कर दी।

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1• श्लोक संख्या - 22/83 "नैषध•" 2• श्लोक संख्या - 22/90 "नैषध

3• " " - 22/92 "नैषध•" 4• " " - 21/133 "नैष

उन चेष्टाओं के लिङ्ग -चिह्न से सवन-राज ने अपने अनादर को समझ लिया। उसके कारण जो उसका मुख मलिन हो गया, उससे उपस्थित मण्डली को सवनराज हृदय की सन्तापाग्नि का अनुमान हो गया।[1] धूम से अग्नि का अनुमान होता है। मलिनच्छवि धूम था, उससे "अलाभजतापहिन" का अनुमान हो गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि न्यायदर्शन के अनुमान-प्रमणा-सिद्धांत पर श्री हर्ष को विशेष रुचि है, जिसे इन्होंने काव्य को विविध भंगिमाओं से प्रयुक्त किया है।

कारण - प्रमाण, प्रत्यक्ष - प्रमाण आदि का उद्धरण

जिसको कार्य के पहले सत्ता हो और जो अन्यथा सिद्ध न हो उसको कारण कहते हैं।[2] कारण तीन प्रकार का होता है- समवायि कारण, असमवायि कारण एवं निमित्त कारण। न्याय-दर्शन को इस कारण-विवेचना का प्रयोग श्रीहर्ष बहुत ही सुन्दर ढंग से करते हैं। दमयन्ती के कुच कुम्भ के समान पीवर हैं, सुदर्शन रोमावली है, चाक से नितम्ब हैं, चमकते जल से झलमलाता लावण्य है और इस रूप राशि के साथ-साथ वह शील आदि गुणों (तन्तुओं) से मण्डित है। इस पूर्ण सौन्दर्य का निमित्त कारण यौवन है। जैसे कुम्भादि भाण्डों का निमित्त कारण कुम्भकार होता है। रोमावली आदि सहकारी (समवायी) कारण हैं जैसे दण्डादि होते हैं। कुम्भकार दण्ड, चाक,

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 11/33 "नैषध"

2. श्लोक संख्या -"यस्य कार्यात् पूर्वभावो नियतोऽनन्यथासिद्धश्च" (तर्क भाषा)

डोरी आदि की सहायता से ही तो घट का निर्माण करता है। ऐसे ही तारूण्य यौवन के इस रूप के आकर कुच-युगल का निर्माण किया।[1] स्वयं हंस अपने खाद्य के अनुरूप ही शरीर की शोभा रूप समृद्धि का भाजन है। क्योंकि कार्य-कारण से ही गुण प्राप्त करते हैं।[2] नैयायिकों के अनुसार "कारण गुणा:, कार्यगुणानारभन्ते" - कारण के गुण ही कार्य में आते हैं, जैसे निदानादिकारणभूतपिण्डादि से कार्य घट आदि में गुण आते हैं, उसी प्रकार स्वर्ण-कमल के भोजन से हंस का शरीर स्वर्ण सा है। श्रीहर्ष आगे लिखते हैं कि हेतु के गुण कार्य में पहुचते है, इसीलिए खुजलाहट मिटाने के निमित्त हंस को भुजाएँ संग्रामोत्पन्न यशरूप कारण के द्वारा कार्य रूप यशोऽन्वित दिशाओं में प्रचलित हैं, अर्थात् अब दिशायें भी संग्राम के यश के अनुरूप चित्रित हो रही हैं।[3]

श्री हर्ष लिखते हैं कि उत्पत्ति (कार्य) उत्पादक (कारण) में विशेष भेद नहीं होता है। व्यक्ति का देह अन्न से उत्पन्न है और वह अन्न के गुणों से युक्त है। इसीलिए कथन और उसकी तुष्टि ये दोनों सत्य है उदाहरणार्थ श्रीहर्ष लिखते हैं कि अमृत भक्षी देवों को देखने से जो हमें अमृतवत् आनन्द मिला है, वह वस्तुत: "कारण-कर्म" सिद्धांत के आधार पर मिला है।[4]

- - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 7/89 "नैषध."

2. श्लोक संख्या - 3/17 "नैषध."

3. श्लोक संख्या - 3/39 "नैषध."

"प्रमा" यथार्थ का अनुभव होती है। "यथार्थानुभव: प्रमा।" काव्य की धारा में श्रीहर्ष इस ज्ञान को विशद रूप में लिखते हैं-जैसे अज्ञान और भ्रम का निराकरण करने वाली प्रमा को भ्रान्तग्राह ज्ञान बाधित नहीं कर सकते हैं, उसी प्रकार अतिशय विनीता दमयन्ती को तुम व्यर्थ,अनर्थ के आग्रही कलि कैसे बाधित कर सकते हो।[1]

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कारण की विवेचना श्रीहर्ष बड़ी कुशलता से करते हैं। कथन है कि कलि तुम नल के पराभव करने की इच्छा मात्र से दोष का भागी होंगे, क्योंकि कार्यों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कारण तुम्हारे अधीन नहीं है।[2] यहाँ स्पष्ट है कि कारण दो प्रकार का (दृष्ट ,प्रत्यक्ष) और(अदृष्ट)(अप्रत्यक्ष) होता है। दृष्ट कारण जैसे घट होने (कार्य) के लिए चक्र दण्ड,मृत्तिका जल आदि। अदृष्ट अर्थात् अप्रत्यक्ष कारण जैसे - देश,काल,ईश्वरेच्छादि। यहाँ दार्शनिकता प्रकट है कि कार्य होने के पूर्व ही कारण निर्धारित रहता है। मनुष्य तो उसमें मात्र माध्यम होता है। ईश्वर की इच्छा से ही कारण का संचालन होता है। इन्द्रिय जन्य प्रमा को प्रत्यक्ष कहते हैं-इसी प्रत्यक्ष प्रमाण के सिद्धांत को दृष्टि में रखकर श्रीहर्ष लिखते हैं-यह चन्द्र ज्योतिष शास्त्र के वर्णनानुसार गोल था, तत्पश्चात् राहु को उपर-नीचे की दोनों दाढ़ी रूप यंत्र में दबाकर अमृत निचोड़ लिए जाने से खाली मात्र स्थिति में रहकर जाकर चपटा हो गया, जो कि प्रत्यक्ष है।[3]

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 17/144 "नैषध"
2. श्लोक संख्या - 17/146 "नैषध"
3. श्लोक संख्या - 22/85 "नैषध"

दमयन्ती का चक्रवत् और कलश की तरह कुच जुगल अत्युन्नत है। जो देखता है वही सौन्दर्य के चकाचौंध में दृष्टिभ्रान्त हो जाता है, वैसे ही जैसे तीव्र प्रकाश को देखकर सब विमुग्ध हो जाते हैं, लगता है कि उन पर मद चढ़ आया हो। भ्रान्त (भ्रम) का अर्थ घूमना (चक्कर) खाना भी है। इसको लेकर कवि "न्यायग्रहि-ग्रन्थिलतर्क" से अपना ज्ञान-प्रदर्शन करता है। न्याय-शास्त्र में तीन प्रकार के कारण समवायि , असमवायि, निमित्त हैं। जिससें समवेत कार्य उत्पन्न होता है, वह समवायि कारण है जैसे मृत्पिण्ड ,घट का समवायि कारण है। समवायि कारण द्रव्य होता है, जबकि असमवायि कारण गुण । जैसे मृत्कुलालद्वय संयोग घट का असमवायी कारण है। निमित्त कारण साधनभूत होता है। समवायी कारण के गुण कार्य में आते हैं असमवायी और निमित्त कारण के नहीं। परन्तु दमयन्ती के कुलालचक्र भ्रमकारी कुच-कलश में वह चक्र भ्रमण गुण निमित्त कारण से आया है। श्री हर्ष इस पर परिहास करते हैं कि यह कितना विचित्र है कि न्याय-शास्त्र के नियम भी बदल गये हैं।

तर्क उस युक्ति को कहते हैं जिसमें किसी प्रतिपाद्य विषय की सिद्धि के लिए उसको विपरीत कल्पना के दोष दिखलाए जायें। यह एक प्रकार की कल्पनात्मक पद्धति है, अत: इसे प्रमाण की श्रेणी में नहीं रखा गया है, किन्तु यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति में यह बहुत ही सहायक होता है। श्री हर्ष इस युक्ति का प्रयोग यमराज के कथन में प्रयुक्त करते हैं- किसी मत के सत्य होने पर सब मतों का त्याग करने वाले मारे जाते

इस दृष्टि से धर्माचरण व्यर्थ मात्र है किन्तु धर्म जन्य अनर्थ तो न होगा।[1] श्री हर्ष लिखते हैं कि दमयन्ती के बत्तीस दाँत न्याय- दर्शन के सोलह पदार्थों के दुगुने के रूप में व्यवस्थित हैं।[2] उसके प्रत्येक दाँत न्याय दर्शन के तर्क-युक्ति के समरूप हैं।[3]

न्याय सिद्धात के द्वारा उत्प्रेक्षा प्रस्तुत करते हुए श्रीहर्ष लिखते हैं कि नल और दमयन्ती के मानस में दग्ध काम की पुन: सर्जना आरम्भ में द्वयणुक का निर्माण करने वाले परमाणुयुगल के समान सुशोभित है। न्याय-सिद्धान्त में है कि महत् कार्य के आरम्भ में पहले दो सक्रिय परमाणुओं द्वारा एक द्व-यणुक का निर्माण किया जाता है। काम के दग्ध देह को पुन: स्वरूप देने के लिए संगम में विलसित, उल्लसित दमयन्ती-नल के मन ही सफल हो सकते हैं जो उन परमाणुओं के समान हैं जिनमें एक द्वयणुक का निर्माण होता है। हंस की कामना है कि कामदेव देह की पुन: निर्मित रूप महत् कार्य को सम्पन्न करने में नवदम्पत्ति के उल्लखित मन प्रवृत्त हों।[4]

---

1. श्लोक संख्या - 17/99 "नैषध॰"
2. श्लोक संख्या - 10/82 "नैषध॰"
3. श्लोक संख्या - 10/83 "नैषध॰"
4. श्लोक संख्या - 3/125 "नैषध॰"

न्याय शास्त्र में वादी-प्रतिवादी का प्रयोग किया गया है और स्पष्ट किया गया है कि कौन वादी और कौन प्रतिवादी होता है। इस तथ्य की परिभाषा को श्रीहर्ष इस प्रकार लिखते हैं- वादी और प्रतिवादी का अपने पक्ष पर गाढ़ा राग और तार्किक प्रस्तुति होती है। पूर्वपक्षधर को वादी और उत्तर पक्षधर को प्रतिवादी कहा जाता है।[1]

श्रीहर्ष लिखते हैं कि जिसने सचेत प्राणियों को पत्थर हो जाने के लिए मुक्ति के निमित्त शास्त्र (न्यायशास्त्र) का प्रतिपादन किया, उस गौतम को गोतम अर्थात् सबसे बड़ा मूर्ख अथवा सबसे बड़ा बैल ही समझो और जैसे नाम्ना गोतम उसे आप धर्मी-कर्मी जानते हैं वह वैसा ही महामूर्ख है।[2] यहाँ चार्वाक कथन में न्यायशास्त्र के प्रणेता गौतम का विषाद विवरण देकर उपहास किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष को न्याय-दर्शन के प्रमाण सिद्धांत का गहन ज्ञान था, जिसका उन्होंने यथोचित स्थानों पर प्रयोग कर अपने काव्य को पाण्डित्यपूर्ण बना दिया है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 10/80 "नैषध"

2. मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम् ।
गोतमं तमवेतैव यथा वित्थ तथैव सः ॥
"नैषध 17/74"

ईश्वर - विचार का विवेचन

न्याय-दर्शन में ईश्वर जगत् का स्रष्टा पालक और संहारक है। वह जीवों के कर्म के अनुसार जगत् की सृष्टि करता है। और वह जीवों के सुख-दुख का विधान करता है। वह विधि का प्रयोजक है। वस्तुत: इस तत्त्व से श्रीहर्ष अवगत हैं, इसीलिए लिखते हैं-परमात्मा ने जिसके मस्तक के पट पर जो लिख दिया है, उसका वह अवांछित भी वांछित फल का अनादर करके ही होजाता है।कमल तुषार से जल जाता है, सूर्य की धूप से नहीं।[1]

विधि का विधान सर्वोत्कृष्ट है। आत्मा का ब्रह्म-लोक से मृत्युलोक तथा आवागमन विधिवशात् ही होता है। श्री हर्ष इस अवधारणा के आधार पर लिखते हैं, विहारार्थ आये सुवर्ण हंसों में से एक मैं ही भूलोक के दर्शनार्थ विधाता के आदेशानुसार भ्रमण कर रहा हूँ।[2]

श्रीहर्ष ने चार्वाक के कथन में व्यञ्जना द्वारा न्याय सम्मत ईश्वर का निरूपण करते हैं- ईश्वर सर्वज्ञ है, वह करुणानिधि है। वह कह देने मात्र से सबकुछ कर देने वाला है। वह भक्तों के मोक्ष का दाता है।[3]

- - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 13/49 "नैषध"

2. श्लोक संख्या- 3/18 "नैषध"

3. श्लोक संख्या - 17/56 "नैषध"

श्री हर्ष पुन: व्यञ्जना शैली में ईश्वर के अस्तितत्व को चार्वाक के कथन में प्रयुक्त करते हैं- ईश्वर है, क्योंकि जगत् में ऐसी विचित्र-विचित्र प्रकार की सामग्रियाँ हैं, जिनकी रचना मनुष्य नहीं कर सकता है, यह किसी मनुष्येतर शक्ति द्वारा ही सम्भव है। उदाहरणार्थ गंडकी नदी में प्राप्त शालिग्राम शिला, जिसके विवर में कछुआ, वराह, नृसिंह आदि के चिह्न बने होते हैं, को मनुष्य नहीं बना सकता।[1]

श्री हर्ष लिखते हैं, ईश्वर भिन्न-भिन्न वस्तुओं की रचना भिन्न-भिन्न नियमों और रीतियों से करते हैं।[2] ईश्वर सर्वशक्तिमान् और निराकार है, उसको पूजा प्रार्थना द्वारा-प्रसन्न किया जाता है[3] पुण्य-कर्म तीर्थ यात्रा करने से ईश्वर का अनुग्रह मिलता है, फलत: पुनर्जन्म -बंधन से मुक्ति मिलती है।[4]

ईश्वर जगत् के उद्धार दु:ख निवारण के लिए भी उद्योग करता है श्रीहर्ष लिखते हैं कि वेद की मर्यादा की स्थापना के निमित्त ईश्वर ने मीनावतार लिया। भगवत्कृपा से ही मलिन, ससीम सागर जल निर्मल हो असीम गगन में लीन हो गया, क्यों कि मीन के पूँछ से सागर जल उछलकर आकाश तक चढ़ गया था।[5]

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 17/102 "नैषध"
2. श्लोक संख्या - 20/20 "नैषध"
3. श्लोक संख्या - 15/89 "नैषध"
4. श्लोक संख्या - 14/85 "नैषध"
5. श्लोक संख्या - 21/53 "नैषध"

पीठ पर अनेक सृष्टियों को धारे गये भूमण्डलों के घर्षण -चिह्नों ,जैसे चक्राकार चिह्नों द्वारा चुम्बित धरती की रक्षा में कर्मण्य तुम्हारी कच्छप मूर्ति जगत् की रक्षा करे।[1] यहाँ श्रीहर्ष के कथन में आशय स्पष्ट है कि ईश्वर अनेक सृष्टियों का कर्ता है। वह जगत् का रक्षक है। वह जगत् की रक्षा बड़े आत्मभाव से एवं दयालुता के साथ करता है।

ईश्वर के दशम अवतार कल्कि की बन्दना में श्री हर्ष ईश्वर के स्वरूप को लिखते हैं कि ईश्वर म्लेच्छ के सदृश दुर्गुणों का नाश कर देता है। वह भक्तों के दसों प्रकार के पापों को निराकृत कर देता है।[2]

ईश्वर के परम दयालु स्वरूप पर श्री हर्ष बहुत ही सुन्दर ढंग से लिखते हैं- हे जड़ चेतनात्मक, समस्त संसार के कर्ता प्रभो ! अणुतुल्य अत्यंत छोटे हृदय में आप का अत्यंत आश्चर्यमय ऐश्वर्य (प्रसाद) कितना रख पाऊँ। मैं दरिद्र नल सुवर्णगिरि को प्राप्त करके अपने कटे-फटे चीर में कितना सोना बाँध सकता हूँ।[3] ईश्वर जगत् का सबसे बड़ा व्यवस्थापक है, क्योंकि वह ही शीतकाल की रजनी को दीर्घ और शीतमय दिन के समय को काट कर बढ़ा देता है।[4]

---

1. श्लोक संख्या - 21/54 "नैषध"
2. धूमवत्कलयता युधिकालं म्लेच्छ कल्प शिखिना करवालम् ।
   कल्किना दशतयं मम कल्कं त्वं व्युदस्य दशमावतारेण ।। "नैषध"
   21/82(5)
3. श्लोक संख्या - 21/102 "नैषध"
4. श्लोक संख्या - 22/55 "नैषध"

श्री हर्ष मगधेश्वर के स्वरूप -निर्माण के वर्णन में ईश्वर के जगत् कर्ता के स्वरूप को निरूपित करते हैं।[1]

पञ्चनली वर्णन में श्रीहर्ष निरूपित करते हैं कि "ईश्वर परम तेजस्वी ज्योतिसम्पन्न है। उसको कोई अतिक्रान्त नहीं कर सकता। वह जीव का परमलक्ष्य है। जिस-प्रकार नल दमयन्ती का लक्ष्य है।[2] यहाँ लक्षित है, जगत् भ्रामक है, क्योंकि दमयन्ती को चार देव इन्द्रादि में भ्रम हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री हर्ष ने न्याय-दर्शन के ईश्वर के स्वरूप को हर कोण से विवेचित किया है।

- - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या -12/93 "नैषध."

2. देव3 पतिर्विदुषि ! नैष धराजगत्या निर्णीयते न किमु न व्रियते भवत्या
नायं नल: खलु तवाति महा नलाभो यद्येन मुञ्चसि वर: कतर: पुनस्ते
"नैषध. 13/33"

पाप - पुण्य कर्म -फल आदि का संयोजन

ईश्वर मनुष्य के पाप और पुण्यों का दण्ड और पुरस्कार उसे अवश्य देता है। मनुष्य के अच्छे और बुरे कर्मों के समयोचित प्रतिफल की व्यवस्था ईश्वरही करता है। वह जगत् में धर्म-व्यवस्थापक है। इसी न्याय दार्शनिक आशय में श्रीहर्ष ईश्वर को यम रूप में निरूपित करते हैं, जिसके भय से सम्पूर्ण जगत् पाप के पंक में पतित नहीं होता है।[1]

सभा में यम के प्रकट होने पर लोगों ने प्रमुख कार्य कर चित्रगुप्त कायस्थ (लेखक) को भी देखा।[2] इस कथन में व्यञ्जना प्राप्त होती है कि यम के पास एक ऐसा विभाग है जो जगत् के पाप और पुण्य को लिखता है और जिस पाप-पुण्य के आधार पर जीव को दण्ड या पुरस्कार मिलता है। इस विभाग का सचिव चित्रगुप्त कायस्थ है।

श्री हर्ष निरूपित करते हैं काम-वासनायें पाप की जड़ है।[3]

श्री हर्ष लिखते हैं-

व्यक्ति की सुकृत (पुण्य) में श्रद्धा रखनी चाहिए। सुकृत से अंतिम समय मे सुख वृद्धि होती है।[4]

---

1. श्लोक संख्या 13/15 "नैषध"
2. श्लोक संख्या 14/63 "नैषध"
3. श्लोक संख्या 14/40 "नैषध"
4. श्लोक संख्या 17/47 "नैषध"

धर्माचार्यों द्वारा बतलाया गया है कि मृत्यु के बाद दूसरा जन्म होता है। तथाकथित परदारागमन, ब्रह्म हत्यादि पापों के कर्ताओं को कृमि-कीटादि का देह धारण करना पाड़ता है। इस प्रकार निम्नतम कोटि का जन्म धारण कर दण्ड भोगना पड़ता है।[1] श्रीहर्ष लिखते हैं कि दान पुण्य कार्य है।[2]

पापी को पुण्य कर्ता असह्य लगता है इसीलिए श्री हर्ष लिखते हैं कि कलि अपने पाप-दोषों तथा नल-दमयन्ती के तेजस्विता और पुण्यों के कारण ही उन्हें छू न सका, फलत: वापस चला गया।[3]

नल के चारण प्रात: स्तुति पाठ में ज्ञापित कराते हैं कि अतिशय-सुख-विहार पुण्यों के विरोधी बन जाते है।[4] भगवत्स्तवन के पश्चात् नल ने विप्रों को रत्न, मणि, स्वर्ण, रजत आदि का प्रभूत दान दिया। वह नित्य पितृश्राद्ध को सम्पन्न किया, और उसने श्रेष्ठ सामग्री से स्वयं पुण्यार्जन द्वारा हरिहर को पूजा की। यहाँ श्रीहर्ष पुण्य करने के माध्यमों को निरूपित करते हैं।[5]

---

1. श्लोक संख्या - 17/71 "नैषध"
2. श्लोक संख्या - 17/81 "नैषध"
3. श्लोक संख्या - 17/204 "नैषध"
4. श्लोक संख्या - 19/21 "नैषध"
5. श्लोक संख्या - 21/105 "नैषध"

एक जन्म में कृत शुभ- अशुभ कर्मों का प्रतिफल दूसरे जन्म में प्राप्त होता है। इस तथ्य को श्रीहर्ष काव्यात्मक शैली में लिखते हैं-

नल के रूप और आभा को धारण करते देवों को त्यागती दमयन्ती दैहिक सौन्दर्य के कारण ही नल पर अनुरक्त न थी। वस्तुत: किसी का अन्य जन्म में पूर्व-कृत कर्म-फल से जनमने वाला अनुराग ही किसी के प्रति जागा करता है।[1]

श्री हर्ष स्पष्ट रूप से लिखते है- मृत व्यक्ति कर्मों का स्मरण रखता है, मरने पर भी कर्म-. फलों को परम्परा और भोग रहते हैं। श्रद्धादि में दूसरों के भोजन करने से मृत को तृप्ति होती है।[2]

पूर्व जन्म के कृत्य अपर जन्म में फल रूप में बनते हैं। श्रीहर्ष निरूपित करते हैं कि पूर्व जन्म में दमयन्ती नल को पतिव्रता पत्नी थी इसीलिए इस जन्म में भी वह नल को धर्म पत्नी है।[3]

हर जड़-जीव में अपनी शक्ति है, किन्तु कर्म फल कोई नहीं रोक पाता है। कर्मफल तो भोगना ही पड़ता है। इसी लिए श्रीहर्ष लिखते हैं कि मृतसंजीविनी मरे को जीवन देती है, ब्राह्मण भी मंत्र बल से कुछ कर सकता है। समुद्र भी अनेक रत्नों

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 13/38 "नैषध."

2. श्लोक संख्या - 17/52 "नैषध."

3. भूभृद्भवाऽङ्कभुवि राजशिरोमणे: सा त्वन्यास्य भोगसुभगस्य सम: क्रमोऽयम्
यन्नकिपालकलनाकलितस्य भर्तुरन्यापि जन्मनि सती भवति स भेद: ।

का दाता है। अमृत पान से अमरता मिलती है। ये सभी- अमृत, मृतसंजीविनी ब्राह्मण, समुद्र-चन्द्र के संबंधी हैं, किन्तु इनमें से कोई चन्द्र को क्षयित्व से मुक्ति नहीं दिला सका। उसे अपने कर्म का फल भोगना ही पड़ा।[1]

पुनर्जन्म का उद्धरण

सृष्टि में जन्म की परंपरा है। जीव अपने कर्मों के परिणाम स्वरूप मोक्ष उच्च जन्म या निम्न जन्म ग्रहण करता है। प्राणी को यह चिन्ता प्राय: संतप्त करती है कि मरने के बाद क्या बनेगा। वस्तुत: इस तथ्य को श्रीहर्ष स्पष्ट रूप से लिखते है। आयु समाप्त होने पर नल और दमयन्ती शिव और पार्वती से तादातम्य प्राप्त करेंगे, क्योंकि मरणोपरान्त क्या होऊँगा, किस दिशा को प्राप्त करूँगा यह चिन्ता प्राणी के चित्त को सन्तप्त किया करती है।[2]

चार्वाक कहता है कि यह माना जाय कि देहान्तर प्राप्ति होती है, तो यज्ञ और बलि छोड़ दीजिए, क्योंकि यहाँ होने वाली हिंसा पाप है और पाप का दण्ड अवश्य मिलता है।[3] यहाँ पर पुनर्जन्म की अवधारणा स्पष्टत: व्यंजित है।

---

1. श्लोक संख्या - 22/99 "नैषध"
2. श्लोक संख्या - 14/71 "नैषध"
4. श्लोक संख्या - 17/

पुनर्जन्म की अवधारणा को तर्क पूर्ण करने के लिए श्री हर्ष चार्वाक विचारों का खण्डन करते हैं-

श्राद्ध -भोजन से मृत का परलोक सुधरता है। इसका प्रमाण नाना देशों के लोगों के कथन से है। वे कहते हैं किसी "परेत" पूर्वज ने सद्गति के निमित्त गया में श्राद्ध करने को अपने जीवित उत्तराधिकारी से, याचना की, किसी ने प्रयाग में माघ स्नानादि के पुण्य की याचना की। इससे मानना चाहिए कि तीर्थसेवनका प्रभाव होता है, देहान्तर की प्राप्ति होती है।[1]

मोक्ष- विचार का निरूपण

न्याय दर्शन के अनुसार जब जीव अपने वर्तमान कर्मों का निराकरण कर संचित कर्मों का फल भोग लेता है, तब वह जन्म ग्रहण के चक्कर में नहीं पड़ता है। इस तरह पुनर्जन्म का अंत हो जाने पर शरीर के बंधनों का और साथ-ही साथ दु:खों का भी अंत हो जाता है। यही जीव का मोक्ष होता है। श्री हर्ष विशद रूप से मोक्ष को निरूपित करते हैं- प्रत्येक जन्म में प्राणी कर्म करता है। इस जन्म में जो कर्म करता है, उससे अगला जन्म प्राप्त होता है। इस प्रकार कर्म-क्षय न होने पर मुक्ति असंभव हो जाती है। ऐसी स्थिति में क्यों हो ? कोई विचारक आचार्य केवल

---

1. श्लोक संख्या - 17/89 "नैषध"

यही कहता है कि श्री विष्णु का ध्यान करो। उसके ध्यान से कर्म का क्षय होता है और आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति रूप मोक्ष प्राप्त होता है। श्री हरि ही मुक्ति के हेतु हैं।[1]

श्री हरि के ध्यान धारणा पर श्री हर्ष लिखते हैं- जो लोग नरक और नरकासुर के विनाशक श्री हरि का नाम खेल-खेल में भी ले लेते हैं, उनसे नरकों को ही डरना उचित है, वे भक्त नरकों से क्यों डरें।[2] हे स्वामी मुझ भक्त नल पर कृपा करके सूर्य रूप दक्षिण नेत्र द्वारा मेरे राग द्वेष रूप अन्धकार को दूर करो। मेरे प्रति कृपा कर चन्द्र रूप शीतल बाम नेत्र द्वारा मेरा आध्यात्मिक,आधिदैविक औरआधिभौतिक तापत्रय क्यों दूर नहीं करते ।[3] यहाँ स्पष्ट है कि मोक्ष का परम मार्ग ईश्वरभक्ति है। ईश्वर प्राप्ति ही मोक्ष है इसीलिए इन्द्र दमयंती को वर देते हैं कि नल दमयंती का युग्म सौभाग्य से पूर्ण रहे। ऐसा सुख मिले जैसा परमात्माद्वैत में प्राप्त होता है। नल-दमयन्ती अपने पुण्यों के कारण। अद्वैत-सिद्धि तुल्य एक दूसरे को प्राप्त किये।

- - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 21/89 "नैषध."

2. श्लोक संख्या - 21/97 "नैषध."

3. श्लोक संख्या - 21/101 "नैषध."

4. श्लोक संख्या - 15/87 "नैषध."

मोक्ष प्राप्ति में सांसारिक बंधन - आकर्षण -बाधक तत्त्व है। श्रीहर्ष लिखते हैं कि मोह बड़ा बली है; मोक्षोपयोगी ज्ञानदीप से प्रकाशित आत्मा जिन्हें अप्राप्त है, ऐसे अज्ञानी पुरुषों के निर्मल अन्तःकरण को भी मोह काजल के समान स्पष्ट रूप से मलिन कर देता है।[1] श्री हर्ष का मोक्ष संबधो उद्धरणं द्रष्टव्य है-

इन्द्र ने अपने तीसरे वर में नल और दमयन्ती के मोक्ष का प्रावधान किया है।[2]

अन्ततः हम यह कह सकते हैं कि श्रीहर्ष न्यायदर्शन में पारङ्गत थे। उन्हें प्रमाण-सिद्धांत, ईश्वर-स्वरूप और मोक्ष-विचार का व्यापक ज्ञान था/उन्होंने नैषधीय चरितम महाकाव्य में इन दार्शनिक तत्त्वों का औचित्यपूर्ण प्रदर्शन किया है। कहीं पर दार्शनिक तत्त्वों की विवेचना करते हैं, तो कहीं पर उनका मात्र संकेत।

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 17/31 "नैषध."

2. श्लोक संख्या - 14/72 "नैषध."

सांख्य - दर्शन

कारण - कार्यवाद की अवधारणा

सांख्य दर्शन की अवधारणा है कि सत् कारण से ही सत् कार्य की उत्पत्ति हो सकती है। असत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। कार्य कारण में पूर्व रूप से विद्यमान रहता है। केवल विशेष परिस्थितियों में ही कार्य का आविर्भाव होता है। इस सत्कार्यवाद की अवधारणा पर श्रीहर्ष की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। वे लिखते हैं- कार्य की सिद्धि और असिद्धि संदिग्ध होने के कारण एक सिद्धि या असिद्धि होती है। उनमें अभीष्ट हो जाने पर धूर्त जन अपने मंत्र तंत्र को कारण बताते हैं अन्यथा होने पर मंत्र-तंत्र यथाविधि नहीं हुए यह कारण बताते हैं।[1] वस्तुत: यहाँ ध्वनित है कि मंत्र तंत्रादि यदि सत् कारण होगा तभी कार्य की सिद्धि हो सकती है, यदि वह सत् कारण नहीं है, तब सत् कार्य सिद्ध नहीं हो सकता है। जैसे आकाश को मथ कर मक्खन नहीं निकाला जा सकता है। समर्थ कारणसे अभीष्ट कार्य की उत्पत्ति होती है। काली प्रकृति वाली वस्तु से काला कार्य उत्पन्न होगा, इसीलिए श्रीहर्ष उदाहरण देते हैं कि सूर्य ने काले अंधकार का पान कर अपनी प्रकृति काली कर ली, इसीलिए उनकी सन्तानें यमादि काली हुई।[2]

---

1. श्लोक संख्या 17/53 "नैषध"
2. श्लोक संख्या 19/45 "नैषध"

कार्य को देखकर कारण का अनुमान हो जाता है घट कार्य को देखकर मिट्टी कारण का अनुमान हो जाता है इसी तर्कवाद को आधार बनाकर श्रीहर्ष लिखते हैं चाँदनी का प्रादुर्भाव कुमुद-विलास का कारण है। चाँदनी का प्रादुर्भाव समुद्र के हर्षोल्लास का कारण है। चाँदनी कुमुद का कुछ विशेष है।[1] यहाँ "कुछ विशेष" शब्द कारण- कार्य को अवधारणा को संकेतित करते हैं।

श्री हर्ष कारण-कार्य वाद से संबन्धित अपने ज्ञान को निरूपित करते हैं और साथ-साथ उस पर एक कटाक्ष भी लिखते हैं- कारण के गुण कार्य में भी होते हैं। इस दृष्टि से चन्द्रमा को भी बराबर घटते-बढ़ते रहना चाहिए, क्योंकि उसका कारण उत्पत्ति स्थल समुद्र निरंतर हानि-वृद्धि को प्राप्त करता रहता है। चन्द्र तो एक पक्ष में घटता है और दूसरे पक्ष में बढ़ता है/निरन्तर हानि-वृद्धि का पात्र नहीं होता है, यही विस्मयजनक है, क्योंकि अपने कारण समुद्र के गुण यथावत् समुद्र में नही आये।[2]

कारण के गुण कार्य में तो होते ही हैं, इसीलिए काशीश के वज्रतुल्य वक्षस्थल से निकली भुजायें भी वज्रतुल्य हैं। जिस प्रकार वज्रतुल्य वक्षस्थल पर किसी वस्तु का प्रभाव नही पड़ता उसी प्रकार उसकी भुजाओं पर किसी वस्तु का प्रभाव नही पड़ता है।[3]

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 22/69 "नैषध"
2. श्लोक संख्या - 22/72 "नैषध"
3. श्लोक संख्या - 11/25 "नैषध"

कार्य को देखकर कारण की संभावना की जाती है। इस सिद्धांत पर श्रीहर्ष एक उत्प्रेक्षात्मक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। भीम के राजप्रांगण में विशालगज और उसके दो बड़े दंत थे। वह निरन्तर मदधारा बहाता था और दोनों कान हिलाता था। यहाँ उत्प्रेक्षात्मक कारण व्यक्त होता है- दोनों शुभ्र गजदंत जैसे शुभ्र कीर्ति के कारण थे। मानो श्याम मद-बिन्दु शत्रुओं की अकीर्ति के कारण थे।[1]

गुणत्रय का विवेचन

सांख्य दर्शन में तीन गुणों - सत्त्व, रजस, तमस्, की विवेचना है। श्रीहर्ष ने इन तीनों गुणों का निरूपण अपने नैषधीयचरितम् में यत्र-तत्र किया है। तमोगुण पर वे लिखते हैं- तमोगुण क्रोध अत्यंत राग (मुखादि लालिमा) उत्पन्न करता भी है विरागता (स्पृहाहीनता) उत्पन्न करता है। यह सन्तापकारी होता भी [illegible] समस्त इन्द्रियों को आच्छादित करने वाला तमोगुण उत्पन्न करता है।[2] वस्तुत: क्रोध तमोगुण युक्त बुद्धि में ही उत्पन्न होता है।

दमयन्ती -स्वयंवर के समाप्त हो जाने के बाद भी कलि स्वयंवर में जा रहा था। इस पर इन्द्र उसे सचेत करते हैं कि वह रजोगुण संभूत दुर्बुद्धि को छोड़ दे। और इसके कारण राज-सभा में जाकर उपहास को न प्राप्त होवे।[3] यहाँ

---

1. श्लोक संख्या - 16/33 "नैषध०"
2. श्लोक संख्या - 17/22 "नैषध०"
3. श्लोक संख्या - 17/149 "नैषध०"

लक्षित है कि रजोगुण से उत्पन्न ज्ञान असत् ज्ञान होता है और वह उपहास जनक होता है।

जब संध्या काल था, तब दिशायें किरणों के प्रकाश से लाल थीं, फिर रात होने से अंधेरे से काली हो गयीं और अनन्तर जब चन्द्र ज्योत्सना निकल आयी तो शुभ्र हो गयीं।[1] यहाँ पर श्रीहर्ष को, गुणत्रय की लक्षणा, द्रष्टव्य है। शुभ्र ﴾श्वेत﴿ वर्ण सत्त्व का प्रतीक है तथा लाल वर्ण रजोगुण का प्रतीक। ज्योत्सना का आह्लादक स्वरूप होने से वह सत्त्वगुण प्रधान होती है। अँधेरी रात्रि अवरोधक एवं विषादात्मक होने से तमोगुण प्रधान होती है, संध्या परिवर्तन काल होने से रजोगुणप्रधान होती है।

जहाँ पहुँचकर पाप से भरे चित्त वाले जन भी चिर काल से संचित पाप को त्यागकर रजोगुण से रहित हो सत्त्व से पूर्ण हो जाते हैं। शिव के संसार-सागर को पार कराने की धर्म-नौका वह काशी इस काशीराज की वंश-परंपरा से राजधानी है।[2] यहाँ श्रीहर्ष स्पष्ट करते हैं कि रजोगुण पाप का जड़ है, रजस् तथा तमस् गुण की निवृत्ति से ही सत्व गुण का लाभ हो सकता है। ईश्वर-शक्ति से ही रजस् तमस् गुण हट सकते हैं और शुद्ध सत्त्व गुण से मानस पूर्ण हो सकता है।

- - - - - - - - - - - -

1• श्लोक संख्या - 22/154 "नैषध•"

2• श्लोक संख्या 11/114 "नैषध•"

राजा नल सत्त्व गुण सम्पन्न थे। कवि अपनी कल्पना में सत्त्वगुण को प्रयुक्त करता है और लिखता है राजा नल के राजप्रसाद में पहुँचने पर मृगनयनी सुन्दरियों की आँखे जो नल के आभूषणों में प्रतिबिम्बित हो रही थीं वह मानों रजा नल का अन्त: गुण (सत्त्वगुण) प्रकटोभूत हो रहा था।[1]

सूर्यकुल रूप वंश के अंकुर भाव को धारण करते इस वीर ऋतुपर्ण का वर्णन किस प्रकार किया जाय, क्योंकि युद्ध में इसके साढ़े तीन करोड़ रोग अन्तस् के वीर रसोत्सेक सत्त्व के अंकुर हैं।[2]

मन की विवेचना

मन अति चन्चल होता है, उसमें विविध प्रकार के संकल्प, विकल्प उठते रहते हैं। इसीलिए सरस्वती के यम, नल दोनों का समान बोध कराने वाले श्लिष्ट वचनों ने, दमयंती के मन में संदेह और शंका ही उत्पन्न कर किसी निर्णय तक न पहुँचने में संशय ही उत्पन्न किया।[3] संदेह में व्याकुल दमयन्ती बारंबार पाँचों नलों को देखती है पर कहीं किसी प्रकार का भेद न मिला, अन्तत: संकल्प विकल्प ग्रसित उसका मन उन्मादी हो उठा।[4]

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 16/2 "नैषध"
2. श्लोक संख्या - 12/10 "नैषध"
3. श्लोक संख्या - 13/19 "नैषध"
4. श्लोक संख्या - 13/40 "नैषध"

यहाँ नल के इस पाँच-स्वरूप वर्णन में श्रीहर्ष ने मन की अस्थिर प्रकृति को दर्शाया है।

नल के मस्तक पर तिलक दमयन्ती के मनरूप मानसरोवर के वासी धैर्यातिशय रूप हंस को मारने की इच्छा करने वाले मनोभू (काम) के धनुष में, निकल संयुक्त किया गया भौहों के निकट उस नल के वर्तुल तिलक का रूप धारे गोली को भाँति प्रतीत हुआ।[1] श्री हर्ष ने यहाँ पर धैर्यातिशायी हंस को आत्मा के रूप में और मानसरोवर की तरंगित प्रकृति को मन के चन्चल स्वरूप के रूप में अभिव्यक्त किया है। यहाँ पर भी ध्वनित है कि मन की चन्चल प्रकृति आत्मोन्नति में बाधक होती है।

मन की पवित्रता और गोबर आदि की लिपाई कलि को नल की नगरी में स्थान नहीं दिया।[2] यहाँ पर स्पष्ट है कि मन के सात्त्विक गुणों से जगत् के व्यसन्-विकारादि अप्रभावी हो जाते हैं। देवार्चन के समय राजर्षियों में श्रेष्ठ उस नल ने बारम्बार दमयन्ती की ओर जाते अन्तस् को जैसे नियंत्रण करने की इच्छा से वक्ष को उत्तरीय वस्त्र से बाँधने के ब्याज से भली भाँति धारों और बाँध लिया।[3] यहाँ ध्वनि स्पष्ट है कि चन्चल चित्त से ध्यान-धारणा नहीं किया जा सकता है। चित्त (मन) बाह्यत: नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। वह अंत:योग से ही नियंत्रित किया जा सकता है।

- - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 15/62 "नैषध."

2. " " - 17/192 "नैषध."

3. श्लोक संख्या - 21/15 "नैषध."

दमयन्ती के दर्शन से नल कामाधीन हो गया और इस तरह नल पराजित हो गया फलत: काम ही जयी रहा किन्तु दमयन्ती का भोग जयी काम न कर सका, बल्कि पराजित नल ने ही कर लिया। वस्तुत: यह तो निर्णय कर्त्ताओं की दुर्बलता (चञ्चल चित्तपन) ही है कि वे निर्णय का पालन करा सकें इसे भंगिमा पूर्ण लेखन के द्वारा श्रीहर्ष ने मन को चञ्चल एवं बुद्धि का निर्णय मन की अति चञ्चलता के समक्ष अप्रभावी हो सकता है। इसीलिए मन की चञ्चलता का दमन अत्यावश्यक होता है।

परमाणु जिसके पंथ की सीमा है वह योगिबुद्धि भी, दमयन्ती द्वारा अपने मन रूप परमाणु में लज्जारूपिणी गुफा में सिंह के समान बन्द किये इस नल को किस कारण नहीं देख पाती, उसे मैं नारद भी नहीं कह सकता हूँ।[1] यहाँ श्रीहर्ष की दार्शनिक-दृष्टि प्रकट है। मन परमाणु तुल्य अति लघु है। यहाँ व्यंजना द्रष्टव्य है कि योगी मन की बात तो जान सकते हैं और बता सकते हैं, किन्तु मानस में छिपे ईश्वर (नल) के स्वरूप को योगी व्यक्त नहीं कर सकते हैं। दमयन्ती के हृदय में छिपा नल ईश्वर रूप है। ईश्वर की भक्ति में अनुरक्त व्यक्ति के हृदय में ईश्वर की अनुभूति अवश्य होती है। जिस प्रकार दमयन्ती ने नल के स्वरूप का अनुभव किया।

- - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या 5/29 "नैषध"

बुद्धि की विवेचना

सांख्य दर्शन की अवधारणा है कि जीव को बुद्धि तत्त्व आविवार्य रूप से प्राप्त है। बुद्धि का मुख्य कार्य निश्चय और अवधारणा करना है। बुद्धि का सहज धर्म हैं स्वयं अपने को तथा दूसरी वस्तुओं को प्रकाशित करना है। जब बुद्धि में सत्त्वगुण की अधिकता रहती है, तब सात्त्विक बुद्धि के फल होते हैं- धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य। किन्तु जब तमस् गुण की अधिकता होती है, ~~तब तामसिक बुद्धि के जब तमस् गुण की अधिकता होती~~ तब तामसिक बुद्धि से अधर्म, अज्ञान, आसक्ति और अशान्ति की उत्पत्ति होती है। श्रीहर्ष इस अवधारणा को अपने काव्य में प्रयुक्त करते हैं- मोह में पड़ा व्यक्ति हितैषी, शुभैषी आत्मीयों के हितकर और सत्य वचन को भी नहीं ग्रहण करता है। वे झूठे एवं अनुपयोगी बात को ही सत्य समझते हैं।[1]

पुत्र कलत्रादि कुटुम्ब के मोह रूप में फंसे मूर्ख, शीघ्र ही प्राण निकलना निश्चित होने पर भी, भगवान् शंकर का स्मरण नहीं करते हैं।[2] श्रीहर्ष यहाँ स्पष्ट करते हैं कि मोह-माया की निवृत्ति के लिए ईश्वर (आत्मा) का चिन्तन-ध्यान आवश्यक है। श्रीहर्ष तामसिक बुद्धि का चित्रण करते हैं- मोह सद् बुद्धि का लोपकर्त्ता होने से, जगते हुए लोगों के लिए नींद के समान है, देखने वालों का भी अंधापन है

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 17/29 "नैषध•"

2. श्लोक संख्या - 17/30 "नैषध•"

जो शास्त्र-ज्ञान पर भी मूढ़ता दे देता है, और जो प्रकाश में रहते हुए भी अंधकार रखता है।[1] स्थूल एवं अगम्भीर बुद्धि मनीषिजनों के मूढ़ाभिप्राय को नहीं समझ पाती[2] नल पवित्र बुद्धि से सम्पन्न है, इसीलिए वह सम्पूर्ण प्रजा का आह्लादक एवं इन्द्र का प्रिय पात्र हो गया है।[3] यहाँ लक्षित है कि सत्त्व गुण प्रधाना-बुद्धि में करुणा, मुदिता, संतोष, शान्ति, मैत्री, आदि गुणों का विकास होता है और ये गुण ईश्वर (आत्म) दर्शन के लिए अनिवार्य अनुबन्ध होते हैं। बुद्धि उचित, अनुचित का बोध कराती है। वह आत्मबोध आत्मज्ञान का मुख्य साधन है, इन्हीं कारणों वश देवों ने दमयन्ती के लिए शुद्ध बुद्धि का विधान किया है।[4]

अहंकार का निरूपण

अहंकार बुद्धि का परिणाम है। मैं या मेरा यह भाव ही अहंकार है। अहंकार वशात् पुरुष, मिथ्या भ्रम में किसी वस्तु का कर्ता, कामी, स्वामी आदि समझता है। इन्द्रादि देव नल के धृष्टतापूर्ण संवाद और अहंकार की उपेक्षा करते हैं।[5] इन्द्रादि देवों के कथनों की उपेक्षा कर पापस्वरूप अहंकारी कलि नल की राजधानी में जा पहुँचा।[6] श्री हर्ष के इस वर्णन में अहंकार शब्द से प्रकट है कि

---

1. श्लोक संख्या - 17/33 "नैषध"
2. श्लोक संख्या - 17/133 "नैषध"
3. श्लोक संख्या - 17/142 "नैषध"
4. श्लोक संख्या - 14/8 "नैषध"
5. श्लोक संख्या - 17/114 "नैषध"
6. श्लोक संख्या - 17/159 "नैषध"

के भाव में व्यक्ति मूढ़बुद्धि हो जाता है, वह मिथ्या भ्रम में पड़कर अनुचित चेष्टायें करने लगता है।

दमयन्ती की वाणी अमृत की अपेक्षा कहीं अधिक मधुर है। उसकी वाणी ने तो द्राक्षारस और दुग्ध के अहंकार (श्रेष्ठ होने का भाव) का कई बार मान मर्दन किया है।[1] यहाँ श्री हर्ष स्पष्ट करते हैं कि अहंकार से बुद्धि में स्वामी और श्रेष्ठ होने का भाव उद्भूत होता है।

उत्कलपति ने शत्रुओं को दण्ड दिया क्योंकि उनके हृदय अहंकारी थे, कहीं कभी विनम्र नहीं थे।[2] वस्तुत: अहंकार से बुद्धि में अतिरिक्त विकार उत्पन्न होते हैं। परिणामत: पुरूष सांसारिक बंधनों में आबद्ध रहता है। अहंकार के उच्छेद पर ही विनयादि गुण विकसित होते हैं और पुरूष के आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है।

इन्द्रिय का सम्प्रयोग

इन्द्रियाँ बाह्यमुखी होती हैं। वे विषय-वासनाओं में अधिक रमती हैं। काम विषय-वासना का प्रमुख माध्यम होता है। श्रीहर्ष लिखते हैं- देवों ने सबसे आगे आते, इन्द्रियों को दुर्व्यवहार सिखाने के लिए कलि द्वारा पुरस्कृत कामदेव को देखा।[3] काम पापकृत्यों का प्रेरक भी होता है। इसीलिए पाप स्वरूप कलि से उसकी मित्रता होती है। काम मन को प्रेरित करता है और मन इन्द्रियों को प्रेरित करता है।

श्रीहर्ष लिखते हैं- लोभ सब इन्द्रियों नाक, कान, त्वचा, जिह्वा में वास

1. श्लोक संख्या -21/146; 2. श्लोक संख्या - 12/83; 3. श्लोक संख्या-17/14 "नैषध

करता है। लोभ आचार्य है, याचक (याचना करना) शिष्य तथा जिह्वा पाठशाला है, जिसमें शिक्षा देने के लिए लोभ प्रायः बसता है।[1] वस्तुत: श्री हर्ष स्पष्ट करना चाहते हैं कि सब प्रकार की त्रुटियों, अनर्थों का कारण लोभ होता है, जिसके वशवर्ती सब इन्द्रियाँ सहज ही हो जाती हैं।

राजा नल की घ्राणेन्द्रिय (नासिका) शुभ्रता (रूप) शीतलता (स्पर्श) जल, देव के मन्त्र (शब्द-श्रवण) और स्वादिष्टता (रस) से प्रसन्न चतुरीन्द्रिय को देख मानो सुगंध -लोलुपता धारण करती हुई जल सूँघने वाली हुई।[2]

प्रस्तुत वर्णन में पंच ज्ञानेन्द्रिय - नाक, नेत्र, त्वचा कर्ण और जिह्वा का निरूपण किया गया है। नाक सूँघने में, जिह्वा स्वाद में, त्वचा स्पर्श में, कर्ण शब्द श्रवण में, नेत्र दर्शन में, प्रवृत्त होते हैं।

विषय-वासना का वर्णन

विषय वासनाएँ विकार कटुता, अनर्थ, पाप आदि की जड़ हैं, क्योंकि विषय वासनाएँ तमोगुण रूपा होती हैं। सखियों द्वारा गूँथे दमयन्ती के घने काले केश उस काले वस्त्र के ताने बाने के समान थे, जिसने धरती के राजाओं को काम-पिपासा में विवेक शून्य कर दिया था। भीम सभा में आया राजसमूह भी दमयन्ती के घने

1. श्लोक संख्या- 17/28 "नैषध."

2. श्लोक संख्या - 21/17 "नैषध."

काले केश देखकर काम-विचार में विवेक शून्य हो गया था।[1] श्रीहर्ष लिखते हैं-क्रोध अनर्थ का कारण है।[2] लोभ पाँच महापाप का प्रेरक है।[3] क्रोध, लोभ, काम - ये तीनों मोह का उसी प्रकार आश्रय लेते हैं, जिस प्रकार ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सन्यासी ये तीनों गृहस्थ के उपजीवी होते हैं।[4] ये सभी विकार विषय-वासनाओं के कारण हैं। ये मन द्वारा स्फूर्त होकर इन्द्रियों के द्वारा कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं।

पुरुष- प्रकृति का वर्णन

पुरुष-प्रकृति का संकेत श्रीहर्ष के निम्न व्याकरणात्मक पाण्डित्य-प्रदर्शन में व्यक्त हैं।

चार्वाक कहता है-

उभयो प्रकृति अर्थात् स्त्री पुरुष रूप में व्यक्त प्रकृति काम अर्थात् तृतो पुरुषार्थ (मैथुन) में आसक्त हो, यह "उपवर्ग तृतीया"-अर्थात् मोक्ष हो - कहते मुन पाणिनि द्वारा भी मान्य है।[5] यहाँ दार्शनिक पृष्ठभूमि की विवेचना द्रष्टव्य है। साँख्य की प्रकृति भौतिक पदार्थों विकारों की उत्पादिका होती है। व्यक्ति भौ

---

1. श्लोक संख्या - 15/29 "नैषध॰"
2. श्लोक संख्या - 17/19,20,23 "नैषध॰"
3. श्लोक संख्या - 17/24,26,27 "नैषध॰"
4. श्लोक संख्या - 17/32 "नैषध॰"
5. श्लोक संख्या - 17/68 "नैषध॰"

पदार्थों, भोगों, विकारों में आसक्त रहकर सांसारिक बंधनों में आबद्धरहता है। वस्तुत
कै स्त्री, पुरुष के सन्तान और उनके काम-विकार
श्रीहर्ष की उभयी प्रकृति सांख्य की प्रकृति की समरूपा है। उभयी प्रकृति को प्रकृति
के सांसारिक बंधनों, बाधाओं की उत्पत्ति के कारण जैसे है। किन्तु प्रकृति का तीसरा
रूप जो भव-बंधन से दूर होना चाहता है वह सांसारिक रागों से सर्वथा अनासक्त
रहता है, जिस प्रकार एक नपुंसक व्यक्ति की स्थिति काम (मैथुन) के लिए होती है।
तृतीय प्रकृति का व्यक्ति पहचानता है कि आत्मा निष्क्रिय है। आत्मा प्रकृति की
क्रिया-कलापों से भिन्न है। आत्मा सर्वथा चैतन्य पूर्ण है। सांसारिक विषय-विकार
उसके भोग्य नहीं है।

इस प्रकार चिन्तन द्वारा आत्मा में लीन होकर तृतीय प्रकृति का
व्यक्ति मोक्षाबद्ध हो जाता है। अन्तत: तृतीय प्रकृति अपवर्ग को प्राप्त हो जाता
अपलक दृष्टि, अमानुषी शरीर शोभा सम्पना एक सुन्दरी ने वर राजा नल को
देखने की इच्छा से पैर के अग्रभाग से उचक कर देखा। भूमि स्पर्श के कारण वह अप्सरा
की तुल्यता न कर सकी।¹ यहाँ पर "सुन्दरी" सांख्य की प्रकृति का प्रतीक है।
की उपस्थिति पर सुन्दरी के द्वारा नल दर्शन की इच्छा करना पुरुष के सम्पर्क में
आने पर प्रकृति की सक्रियता का द्योतक है। सुन्दरी का जमीन स्पर्श, प्रकृति की
जड़ता, भौतिकता का संकेत प्रस्तुत करता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. नैषध- 15/79

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने सांख्य के दार्शनिक तत्त्वों को बहुत ही कुशलता से नैषध0 में प्रयुक्त किया है। उन्होंने कारण-कार्य की अवधारणा, गुणत्रय की परिकल्पना, मन-इन्द्रिय, बुद्धि, अहंकार विषय-वासना, पुरुष-प्रकृति आदि की दार्शनिकता को अपने महाकाव्य में सफलता पूर्वक प्रयुक्त किया है। वे वस्तुतः सांख्य दर्शन में पारङ्गत थे, यह उनके महाकाव्य के अध्ययन से प्रामाणिक होता है।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

मीमांसा - दर्शन

वेद की प्रामाणिकता का निरूपण

मीमांसा दर्शन में वेद का अत्युच्च स्थान है। वेद पवित्र, नित्य एवं अपौरुषेय है। मीमांसा की दृष्टि में वेद नित्य ज्ञान का भंडार है। वह शाश्वत विधि-वाक्यों का आगार है। हंस दमयन्ती से कहता है कि उसकी वाणी वेदों की प्रतिवेशिनी है। संग गुण के कारण वह सत्पथ से विचलित नहीं होती है।[1] यहाँ श्रीहर्ष मीमांसा के वेद-माहात्म्य को स्थापित करते हैं। वेद सन्मार्ग का निर्देशक है। वह कुपथ का प्रतिषेधक है। वह श्रेष्ठ कर्तव्य का विधान करता है। हंस वेद का श्रेष्ठ अध्येता है, अतः वह वेद-विहित विधान के अनुरूप ही कार्य करता है। दमयन्ती दृढता पूर्वक कहती है कि हंस वेद के समान सत्य और प्रामाणिक न माने की उसका विवाह नल के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के साथ होगा, बल्कि हंस नल-दमयंती विवाह को वेद और वेद मंत्रों के पूर्व प्रयुक्त ओंकार के दृढ़ सम्बन्ध की भाँति निश्चित समझे।[2] यहाँ पर स्पष्ट है कि वेद नित्य, शाश्वत, सत्य एवं प्रामाणिक है। दमयंती हंस के प्रत्येक व्यक्त और अव्यक्त शंका और तर्क को निराकृत कर देना चाहती है। वह बल पूर्वक कहती है कि वह जो कह रही है, वह सत्य और

---

1. श्लोक संख्या - 3/65 "नैषध"

2. श्लोकसंख्या - 3/75 "नैषध"

प्रामाणिक है, वेद के समान जिसमें अज्ञानादि व्यभिचार कारणों को आशंका ही नहीं की जा सकती है। अर्थात् उसकी वाणी अपरिवर्तनीय है। यदि वे झूठे हैं, तो दमयन्ती की वाणी भी झूठी हो सकती है।[1] यहाँ वेद के स्वरूप को श्रीहर्ष विशद रूप से अभिव्यक्त करते हैं।

जिस प्रकार पूर्व मीमांसा, वेदचतुष्टयी द्वारा जिसके यहाँ यश रूप रत्न का वर्णन किया गया है, ऐसे बिना कारण ही सदा परमकारुणिक भगवान् शंकर को नहीं स्वीकार करती, उसी प्रकार उस दमयन्ती के समस्त वेद वचन कहने वाले (अर्थात् सत्यवादी) व्यक्तियों द्वारा जिसमें अमूल्य रत्न रूप यश का वर्णन किया गया है, ऐसे अपने पर किए गये उपकार की अपेक्षा किये बिना ही सदा परोपकार में यत्नवान् इस पृथ्वीपति को अंगीकृत नहीं माना।[2] यहाँ मीमांसा का मन्तव्य स्पष्ट है। मीमांसा ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती है। वह जगत् के सर्वोच्च तत्त्व के रूप में वेद को प्रतिष्ठित करती है। यद्यपि ज्ञातव्य है कि वेद स्वयं ईश्वर की स्तुति कराता है।[3] वेद की रचना ईश्वर ने की है। वेद सर्वथा सत्य एवं प्रामाणिक है।

---

1. श्लोक संख्या - 3/78 "नैषध"
2. श्लोक संख्या - 11/64 "नैषध"
3. विशुद्ध ज्ञान देहाय त्रिवेदी दिव्य चक्षुषे ।
   श्रेयः प्राप्ति निमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे ।"दुर्गासप्तशती 6

श्री हर्ष चार्वाक के कथन में लिखते हैं - देवों को यह मूढ़ता और हठ ही है कि वे वेद के उस कथन को मानते है जिसमें कहा गया है कि यज्ञानुष्ठान से व्यक्ति स्वर्ग जाता है। यह सर्वथा असत्य है, क्योंकि यह प्रत्यक्षत: अप्रमाणिक है। यह तो श्रुतिवाक्य (सुनी-सुनायी बात) है।[1]

वस्तुत: यहाँ कवि की व्यंजना यह है कि वेद के कथन सत्य हैं। यज्ञानुष्ठान स्वर्गगमन का साधन है। श्रीहर्ष चार्वाक कथन के द्वारा मीमांसा दर्शन के विषय- अग्निहोत्र (यज्ञयागादि) वेदत्रयी, तंत्र (मीमांसा अथवा वेद विहित अन्य क्रिया कलाप) का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं।[2]

आगे श्रीहर्ष स्पष्ट रूप से लिखते हैं-श्रुति बल पूर्वक कहती है कि मृत व्यक्ति के पाप से दु:ख मिलता है और पुण्य से सुख। हो सकता है प्रत्यक्षत: यह प्रतिकूल लगता हो किन्तु श्रुति कथन सत्य है। क्यों कि पुण्य का फल पारलौकिक सुख होता है[3] चार्वाक कहता है कि जिस शरीर में मैं हूँ, ऐसी बुद्धि होती है, उसका दाह हो जाने पर तुम (वेद शास्त्रचारियों) को पाप से क्या तात्पर्य ? और यदि परसाक्षिक (वेदप्रतिपादित) कहीं आत्मा है तो उस पाप का फल जन्मान्तर

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 17/36 "नैषध"
2. श्लोक संख्या - 17/38 "नैषध"
3. श्लोक संख्या - 17/44 "नैषध"

में क्यों नहीं होता।[1] यहाँ पर मीमांसा दर्शन के तत्त्व विवेच्य हैं। मीमांसा की अवधारणा है कि प्रत्येक शरीर में शरीर से भिन्न आत्मा है। आत्मा नहीं मरती है अपितु शरीर ही मरता है। आत्मा अपने कृत्यों का फल भोगती है, वह अपने सुकृत्यों का फल स्वर्ग में भोगती है। जितने जीव हैं उतनी आत्मा है। चार्वाक भ्रमित है कि संसार में एक ही आत्मा है और वही सभी जीव के कृत्यों का फल भोगती है। अपने इसी भ्रम में चार्वाक आगे कहता है सबके पाप के कारण अनन्त ताप में डूबते, श्रुति-विश्वासी एकात्मा तेरे पाप से रे पापभीरु, कौन सा भार बढ़ जायेगा।[2] यहाँ "श्रुति-विश्वासी" शब्द का तात्पर्य मीमांसा-दार्शनिक हो सकता है और वैदान्तिक भी। श्रीहर्ष इस चार्वाक कथन द्वारा मीमांसा एवं वेदान्त के विभिन्न के स्तर को अभिव्यक्त करना चाहते हैं। चार्वाक केवल यही जानता है कि श्रुति कहती है पूरे संसार में एक ही आत्मा है अर्थात् ब्रह्म सब में अद्वितीय भाव से व्याप्त है। किन्तु उसे यह नहीं ज्ञात है कि वेदान्त की उपर्युक्त कल्पना के अतिरिक्त उसकी एक और कल्पना है। कर्म बंधन में आबद्ध (मोक्ष रहित) जीव अलग-अलग आत्मा रूप हैं जो कर्मानुसार जन्म लेते हैं कर्म के क्षय होने के बाद ही जीव (आत्मा) ब्रह्मलीन हो पाता है। इसके पहले तो वह अपने कर्मों, पुण्यों, पापों का फल ही भोगता है। वेदान्त का द्वितीय स्तरीय जीव (आत्मा) का चिन्तन मीमांसा का भी

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 17/51 "नैषध"

2. श्लोक संख्या - 17/55 "नैषध"

आत्म-विचार है। मीमांसा के यहाँ कोई एक ब्रह्म की परिकल्पना नहीं है, वहाँ अनेक आत्माओं की कल्पना है। इस वस्तुस्थिति को न समझ सकने के कारण ही चार्वाक व्यक्ति को पाप कर्म के लिए प्रोत्साहित करता है। चार्वाक मीमांसा पर अगला व्यंग्य कराता है- मीमांसक वेद के एक भाग को यदि प्रलाप मानते हैं, तो किस कारण दु:ख दायक (कष्ट साध्य) विधि भागों को प्रलाप नहीं मानते है ।[1] यहाँ स्पष्ट है कि वेद दो प्रकार के हैं-(1) अर्थवादात्मक (2) विधिवादात्मक "सोऽरोदीत् यदरोदीत्" ये प्रलाप वाक्य (अनर्थक वाक्य) हैं, क्योंकि वेद क्रिया के प्रतिपादक हैं, और उपर्युक्त वाक्य में क्रिया का कोई संयोग नहीं है। इन विधि वाक्यों के साथ अर्थवादात्मक वाक्य की एक वाक्यता होने से वे स्तुत्यर्थक हो जाते हैं और उपयोगी हो जाते हैं।

श्री हर्ष लिखते हैं कि मीमांसक श्रुति(वेद) पर अतिशय विश्वास करते हैं।[2] श्रुति कहती है कि परलोक में सुख है।[3] वेद देव की आज्ञा है, अतः वह अति आदरणीय है।[4] वेद देवों (ब्रह्मादि) ब्राह्मणों (याज्ञवल्क्य, व्यासादि) द्वारा रचित हैं। अतः वेद प्रामाणिक ग्रंथ हैं। त्रिलोक वेदत्रय (ऋक, यजु:, साम) रूप नेत्रों से देखकर

---

1. श्लोक संख्या - 17/59 "नैषध•"
2. श्लोक संख्या - 17/60 "नैषध•"
3. श्लोक संख्या - 17/61 "नैषध•"
4. श्लोक संख्या - 17/58 "नैषध•"

चलता है अर्थात् समस्त संसार वेद में प्रतिपादित धर्म का आचरण कर जीवन-यापन करता है। और उस धर्माचारी संसार का बज्र हस्त वो इन्द्र शासन करता है।[1]

अन्तत: हम कह सकते हैं कि श्रीहर्ष चार्वाक कथन में मीमांसा मत की वेद प्रतिष्ठा को बहुश: स्थापित करते हैं।

वेद-मंत्र की पवित्रता का विवेचन

वेद के मंत्र पवित्र होते हैं। वे पाप को नाशक होते हैं वेद ईश्वर द्वारा विनिर्दिष्ट हैं। अत: उसकी ऋचायें भी ईश्वर की आज्ञा है। वेद की ऋचायें आदरणीय हैं। उनके अनुगमन से पारलौकिक सुख की प्राप्ति होती है। श्रीहर्ष वेद -मंत्र की पवित्रता से परिचित हैं। इसीलिए वे लिखते हैं- नारद जी इन्द्र का संशय उसी प्रकार दूर करते हैं जिस प्रकारवेद का सार अर्थात् कानों को अमृत लगने वाली अघमर्षण[2] ऋचाएँ पाप का नाश करती हैं।[3]

श्रीहर्ष लिखते हैं कि नल की राजधानी में सर्वत्र वेद का अध्ययन और अध्यापन हो रहा था। सर्वत्र वेद के पदों- की ध्वनि व्याप्त थी। अर्थात चारों ओर पवित्रता छायी थी ऐसी स्थिति में सभी जगह धर्म व्याप्त था। नल की ऐसी

1· श्लोक संख्या - 17/84 "नैषध·"

2· श्लोक संख्या - ऋतं च सत्यं चाभीद···।ऋग्वेद 8/8/48।

3· श्लोक संख्या - 5/18 "नैषध·"

नगरी में पापी कलि का प्रवेश असाध्य था।[1] वेद पाठकों के मंत्रों को सुनते ही कलि भाग गया।[2] यहाँ कलि पाप का प्रतीक है।

ऋचा निर्माण पर श्रीहर्ष की एक उत्प्रेक्षा द्रष्टव्य है। श्रीहर्ष प्रात: फैलती सूर्य की किरणों को ऋचा कहते हैं। ऋचाओं के पाठ में उसमें ओंकार (ऊँ) लगाया जाता है।

सूर्य की किरणों के प्रसार के कारण अदृश्य तारे मानों "ऊँ" के बिन्दु के लिए एक स्थान पर एकत्र कर लिए गये हैं तथा उदात्त स्वर सूचिका ऋचा पर की ऊर्ध्व रेखाओं के लिए मानों अदृश्य होती चन्द्र किरणें एकत्र कर ली गयी हैं। यदि ऐसा न होता तो तारों और चन्द्र-किरणों को दिखायी पड़ना चाहिए था।[3] यहाँ श्रीहर्ष की व्यन्जना है कि ऋचाएँ उसी प्रकार पवित्र एवं अज्ञान और पाप की मोचक हैं जिस प्रकार सूर्य की किरणें अंधकार दूर करने तथा जन जागरण के कारण पवित्र एवं पाप मोचक होती हैं। उत्प्रेक्षात्मक लेखन की उसी क्रम में श्रीहर्ष लिखते हैं। सूर्य की सहस्र किरणें मानो ऋग्वेदादि वेदचतुष्टयी के ऊपर से दीखती हजारों अश्वालायन तैत्तिरीयादिक शाखाएँ अथवा उपनिषद् रूप आतात्विक परिवर्तनों के मूर्त रूप हैं।

---

1. श्लोक संख्या - 17/160 "नैषध."
2. श्लोक संख्या - 17/160 "नैषध."; 17/161 "नैषध."
3. श्लोक संख्या - 19/7 "नैषध."

प्रात: काल के वेद मंत्रों की ध्वनि मानो सूर्यलोक में होते वेद पाठ की प्रतिध्वनि है, जो वेदपाठियों के मुख रूप गह्वर से टकराकर आकाश में प्रसार पा रही है।[1] यहाँ स्पष्ट है सूर्यलोक के पवित्र मंत्रों की प्रति ध्वनि सूर्य किरणों के अवलम्बन से मर्त्यलोक में आ रही है। कमल -कमलनियों की पंखुड़ियाँ उसी प्रकार खुली हुई है, जिस प्रकार भोजन को पवित्र एवं अमृत तुल्य करने के लिए आपोशान(समन्त्र-आचमन) मन्त्र-पाठ के समय हाथ की अंगुलियों को किया जाता है।[2] मंत्र पवित्र होते है, अत: उनके प्रयोग से अभीष्ट को भी पवित्र किया जा सकता है। मंत्र अनिष्ट पापादि निवारणार्थ भी प्रयुक्त होते हैं, इसीलिएप्रात: काल में यज्ञप्रिय राजा नल "उपस्थान" मंत्र पाठ द्वारा मन्देह नामक निद्रासुरों पर जलरूप वज्र बनाकर गिरा रहे है। यहाँ पर मन्देह निद्रासुर अनिष्ठ पापादि का प्रतीक है। प्रात: समय राजा नल पवित्र प्रकाशवान, निर्दुष्ट गायत्र्यादि मंत्रों को जाप कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे मंत्र की पवित्रता, प्रकाशता, निर्दुष्टता उनके निकट साक्षात् प्रकट हो गयी है।[3]

श्रीहर्ष लिखते हैं कि ब्रह्मा के चारों मुख वेद पाठ से पवित्र हो गये हैं।[4] क्योंकि वेद-मंत्र पवित्र होते हैं।

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 19/28 "नैषध."
2. श्लोक संख्या - 19/41 "नैषध."
3. श्लोक संख्या - 21/18 "नैषध."
4. श्लोक संख्या - 2/102 "नैषध."

यज्ञानुष्ठान का वर्णन

मीमांसक वैदिक यज्ञ- याग पर विशेष बल देते हैं। वैदिक युग के यज्ञ इष्ट साधन अथवा अथवा अनिष्ट निवारण के लिए किये जाते थे। यज्ञानुष्ठानों से लौकिक और पारलौकिक सुखों को प्राप्ति होती थी। इस दार्शनिक तत्त्व को दृष्टि में रखकर श्रीहर्ष लिखते हैं कि यज्ञानुष्ठानादि कृत्यों से तुष्ट देवगण स्वर्ग भोगों की सर्जना पृथ्वी पर नल के निमित्त कर देते हैं।[1] श्री हर्ष आगे लिखते हैं कि वह यज्ञ कर्ता राजा नल श्रोत्रियों को दान देता है, परिणामत: अशेष भोगों का भोग करता है।[2] दमयंती का कथन है कि देव के निमित्त शरीर का होम करने का जो पुण्य, काम ने किया था उस सुकृति का फल नल के रूप में काम ने पुन: अति सुन्दर देह रूप में जन्म लिया।[3] वस्तुत: सुन्दर शरीर की अवाप्ति होम से प्रसन्न देवताओं की कृपा का फल है। द्वितीयत: यहाँ भारतीय दार्शनिक अवधारणा का पुनर्जन्म वाद भी निरूपित है। श्री हर्ष लिखते हैं काम ने इन्द्रियों के मंदिर अर्थात्

---

1. श्लोक संख्या - 3/21 "नैषध."
2. श्लोक संख्या - 3/24 "नैषध."
3. श्लोक संख्या -2/38 "नैषध."

शरीर की आहुति दे दो। वस्तुत: आत्मा की आहुति या होम तो किया नहीं जा सकता है। क्योंकि आत्मा का विनाश किया नहीं जासकता है।[1] इन्द्रियाँ भी सूक्ष्म शरीर का तत्त्व हैं,जो मृत्यु के बाद अन्य जन्मार्थ संगमन करती हैं, अत: उनका होम भी नहीं किया जा सकता है। होम तो मात्र भौतिक शरीर,जो पन्च-तत्त्वों से बना है,का किया जा सकता है। ऋग्वेद में इन्द्रवरूणादि देवों को यज्ञ एवं बलि देने का प्राविधान है,जिसका प्रतिफल यजमान को प्राप्त होता है। इसी प्रकाश में श्रीहर्ष लिखते हैं कि दमयन्ती विचार कर रही है कि वह क्यों न सरस्वती से नल रूपधारी यज्ञ भोगी इन्द्रवरूणादि देवों के अतिरिक्त नल के गले में वरमाला डलवाने का निवेदन करे।[2] यहाँ ऋग्वेद के इन्द्र वरूणादि देवों का उद्धरण प्राप्त है। चारों ओर यज्ञ धूम जालावृता अग्निदेव,जिनके माध्यम से देवगण यज्ञ-भाग करते हैं, वर देते हुए बोले कि जिस प्रकार काम धेनु का दुग्ध अपार है,उसी प्रकार नल की उन्नति हो।[3] यहाँ स्पष्ट उल्लेख है कि अग्नि देवता को यज्ञ में आहुति दी जाती है।

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 2/23 "गीता"

2. श्लोक संख्या - 13/51 "नैषध॰"

3. श्लोक संख्या - 14/73 "नैषध॰"

नल, भीम की नगरी में ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ-भोगी इन्द्र की भाँति नगर नागरियों को प्रतीत हो रहा था।[1] श्रीहर्ष लिखते हैं कि पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ, शत्रुमरणार्थ यज्ञ, आभिचारिक यज्ञ और वर्षा के लिए यज्ञादि का विधान वेद-विहित है। यज्ञ मन्देह राक्षसों का विनाश करता है।[2]

उस राजधानी में कलि की नाक यज्ञ में आहुत आज्या-घृत तथा अन्य सामग्री- की सुगंध से जैसे नाश की प्राप्त हो गयी और वह यज्ञ के धुँये से पीड़ित नेत्रों को न खोल सका।[3] यहाँ व्यन्जना है कि यज्ञ-विधान से पाप का निर्मूलन होता है, कलि पाप का प्रतीक है। श्रीहर्ष स्पष्ट रूप से यज्ञ के स्वरूप को लिखते है -

देवों द्वारा भोग योग्य संपदा वाली, शुद्ध यह अमृतकिरण चन्द्र की कला यज्ञ-यात्रा के सदृश है। जैसे उस यज्ञ में हिंसा है वैसे ही इसमें मृगलांछन रूप अवयव मलिन है।[4] यज्ञ से देवगण आह्लादित होते हैं और यज्ञकर्ता का इष्ट सफल होता है।[5] नल इष्ट साधन रूप यज्ञ को त्रिस्वर ऋचाओं से परिपूर्ण कर देवों को आनन्दित करता है। यहाँ व्यन्जना है कि श्रुति, सत्त्व, रजस, तमस् त्रिगुण से उत्पन्न है।

---

1. श्लोक संख्या - 15/82 "नैषध॰"
2. श्लोक संख्या - 17/93 "नैषध॰"
3. श्लोक संख्या - 17/163 "नैषध॰"
4. श्लोक संख्या - 22/74 "नैषध॰"
5. श्लोक संख्या - 5/135 "नैषध॰"

स्वर्ग की परिकल्पना की प्रयुक्ति

मीमांसा का मन्तव्य है कि स्वर्ग मृत्योपरान्त सुकृत्यों के फल-भोग का स्थल है। यह पारलौकिक सुख का केन्द्र है। प्रत्येक जीव का लक्ष्य स्वर्ग प्राप्त होता है, इसीलिए प्रत्येक जीव को वेदविहित विधानों का अनुष्ठान करना पड़ता है। स्वर्ग की इसी अवधारणा को श्रीहर्ष नैषध में प्रयोग करते हैं। महेन्द्रपर्वताधीश के साथ सम्मुखमरण को प्राप्त ऊर्ध्व लोक जाते शत्रु पृथ्वीपतियों को सूर्य मंडल के मध्य अपना सुरंग रूप मार्ग दीखता है।[1]

यहाँ स्पष्ट किया गया है कि स्वर्ग सूर्यमंडल के उस पार स्थित है। श्रीहर्ष लिखते हैं अयोध्यापति के प्रतिपक्षीवीर संग्राम स्थली में इससे पराभूत होने तथा युद्ध में सम्मुख मृत्यु को प्राप्त कर स्वर्ग जाते हैं।[2] श्रुति स्पष्ट कहती है कि परलोक है, जहाँ सुख की प्राप्ति होती है।[3] विषयभोग पराङ्मुख होकर संयतचित्त हो याजक मरणोपरान्त सुख भोग के निमित्त सोत्साह यज्ञ कर्म में प्रवृत्त होते हैं।[4] चार्वाक कहता है युद्ध में मरे (वीरगति प्राप्त) स्वर्ग में आनन्द-क्रीड़ा करते होंगे?[5]

---

1. श्लोक संख्या - 12/29
2. श्लोक संख्या - 12/12
3. श्लोक संख्या - 17/61
4. श्लोक संख्या - 17/67
5. श्लोक संख्या - 17/72

यहाँ व्यन्जना है- अवश्य-करते होंगे। वेदों में कहा गया है कि यम दूत जीवों को स्वर्ग में मरणोपरान्त ले जाते हैं। अत: यह सत्य है कि स्वर्ग है क्योंकि वेद सत्य एवं प्रामाणिक हैं।[1] इन्द्रादि समझ गये कि द्वापर और कलि दुष्ट हैं वे नल को अवश्य पीड़ा पहुँचायेंगे अत: वे स्वर्गगमनोन्मुख हुए।[2] यहाँ लक्षित है कि स्वर्ग देवों का वास-स्थल है।

सनातन-धर्म एवं कर्मकाण्ड का विवरण

श्रीहर्ष ने नैषध में यत्र-तत्र सनातन धर्म और कर्मकाण्ड के उद्धरण एवं व्याख्यान प्रस्तुत किये हैं। अग्निहोत्रादि यम-नियम पर वे लिखते हैं आस्तिक लोग वैदिक धर्म-का परिपालन महान व्रत के साथ करते हैं। चन्द्रायणादिव्रत परिपालक महान वैदिक जन अनेक दिन तक उपवास व्रत रखते हुए केवल धर्माचरण के अवलम्बन पर प्राण-धारण करते हैं।[3] वेदशास्त्र को अनुमति मानकर वैदिक जन परलोक में विश्वासपूर्वक वर को कन्या दान करते हैं।[4] वैदिक कार्य सर्वमान्य होना चाहिए कन्यादान नास्तिक तक स्वीकार करते हैं। वेदविहित कुछ कार्य लोग लोकमर्यादा-वश स्वीकार करते हैं और शेष यज्ञादि कर्म भी एकमतता के कारण मान लेते हैं।

---

1. श्लोक संख्या - 17/105
2. श्लोक संख्या - 17/156
3. श्लोक संख्या - 17/92 "नैषध"
4. श्लोक संख्या - 17/98 "नैषध"

वस्तुत: चार्वाक का कथन असत्य है कि वेद विहित कार्य सत्य एवं प्रमाणिक नही है।[1] श्रीहर्ष लिखते हैं कि नल देव-यजन आदि इष्ट और प्रजा की सुख सुविधा के साधन-तड़ाग-उत्खनन आदि समस्त कर्म वैदिक -विधि से करता है। अपने इस धार्मिक कर्म से वह अपनी प्रजा को सुरक्षा पापादि बाधाओं से करता था। इसलिए तो पाप स्वरूप कलि ~~स~~ नल की राजधानी में प्रवेश नहीं पा सका।[2]

उसकी राजधानी यज्ञ-स्तम्भों से परिव्याप्त थी। वह राजधानी धर्म को ही धन मानती थी। वैदिक धर्मानुचरण के करण वहाँ के लोग परिशुद्ध थे ।[3] नल ने सनातन धर्म की आज्ञावशात् ही विवाहमण्डप में दमयन्ती को ध्रुवदर्शन की आज्ञा ~~दिया~~ दी थी। वस्तुत: वह नल का विश्वास था कि वेद-विहित कर्म सदैव लौकिक-पारलौकिक सुख का साधन है।[4] मरणोपरान्त सद्गति न पाने वाला जीव-"भूत" योनि प्राप्त करता है। वह जीव अपने संबंधियों से अपेक्षा करता है कि वे गयादि में श्राद्ध करें और जिससे जीव को गति प्राप्त हो। वस्तुत: यह वैदिक कर्मकाण्ड (श्राद्धादि) जीव के पार-लौकिक सुख के निमित्त किया जाता है।[5]

---

1. श्लोक संख्या- 17/100 "नैषध०"
2. श्लोक संख्या - 17/158 "नैषध०"
3. श्लोक संख्या - 17/169 "नैषध०"
4. श्लोक संख्या - 16/38 " नैषध०"
5. श्लोक संख्या - 17/104 "नैषध०"

वेदपाठी द्विज और यज्ञ देव का निरूपण

मीमांसानुसार वेद ऋचाओं का पाठ करने वाले ब्राह्मण पवित्र, दैवी-शक्ति सम्पन्न और जीवनमुक्त होते हैं। इस तथ्य पर श्रीहर्ष उत्प्रेक्षात्मक लेखन-प्रस्तुत करते हैं। दमयंती के दाँत शुभ्र हैं। उनमें सामने के चार दाँत अति मोहक हैं। द्विज (ब्राह्मण) को अनेकार्थता के बल पर ये चारों दाँत श्रोत्रिय ब्राह्मण जैसे लगते हैं। जिस प्रकार तांबूलादि-रंजित और मर्जित दाँत स्वच्छ और मोतीवत् लगते है, उसी प्रकार वैकल्प राग, द्वेषादि रहित ब्राह्मण भी कालुष्य हीन और जीवन-मुक्त होते हैं।[1]

श्री हर्ष लिखते हैं वेदाध्येता ब्राह्मण यज्ञ काल में ब्रह्मांजलियों से अभीष्ट को पवित्र करते हैं। वेद-पाठी द्विज पवित्र वेद ऋचाओं के पाठन से स्वयं पवित्र हो जाते हैं।[2] कलि नित्य (संध्यास्नानादि) और नैमित्तिक(ग्रहणस्नानादि) दानमोहादि कर्म) कर्म से युक्त द्विज में स्थान नहीं पा सका था, किन्तु उपर्युक्त कर्मों से असंयुक्त द्विज में भी वह स्थान नहीं पा सका, क्योंकि वह द्विज कर्म मे दीक्षित था।[3]

---

1. श्लोक संख्या - 17/180 "नैषध॰"
2. श्लोक संख्या - 17/198 "नैषध॰"
3. श्लोक संख्या - 9/75 "नैषध॰"

देवस्वरूप चित्रण में श्रीहर्ष लिखते हैं कि अग्नि के तीन श्रोत माने गये हैं- दक्षिणाग्नि गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि। ये अग्नि की तीन मूर्तियाँ है। अग्नि देव "सर्वकालिक यज्ञ" में यजमान से अपना अंश प्राप्त कर उसे इष्ट फल प्रदान करते हैं।[1] सूर्यदेव प्रतिदिन शुक्र, बुद्ध ग्रह के साथ प्रभात मध्याह्न संध्या आदि का विधान करता है, तेज विकिर्ण करता उदित होता है।[2] श्रीहर्ष इन्द्र के साक्षात् स्वरूप का निरूपण करते हैं। इन्द्र कहते हैं नल के यज्ञों में मैं साक्षात् दृश्यमान शरीर धारण कर हुत - हविष्य का भोग करूँगा क्योंकि लोकजन हम देवों द्वारा भोग किया गया यज्ञ न देखकर मंत्र के अतिरिक्त देवों को सत्ता में संदेह करते हैं।[3] यहाँ व्यन्जना प्रकट है कि देवों की सत्ता में संदेह नहीं किया जा सकता है। श्रीहर्ष देवों को सत्ता के पक्ष में तर्क देते हैं कि वेदोक्त नल की दिव्य-परीक्षा में पापी डूबता है और निष्पाप बच जाता है। अग्नि-दिव्य परीक्षा में भी पापी और निष्पाप का निर्णय हो जाता है। इससे प्रमाणित होता है कि देवों की सत्ता है।[4]

इस प्रकार श्रीहर्ष वैदिक देवों का स्पष्ट निरूपण करते हैं।

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 17/198 "नैषध."
2. श्लोक संख्या - 9/75 "नैषध."
3. श्लोक संख्या - 1/17 "नैषध."
4. श्लोक संख्या - 14/70 "नैषध."
5. श्लोक संख्या - 17/87 "नैषध."

प्रमाण सिद्धांत

कुछ अनुपपत्ति के समाधान के लिए अदृष्टार्थ को कल्पना , जिसकी सहायता के बिना उसकी उपपत्ति नहीं हो सकती है, अर्थापत्ति कहलाती है । श्रीहर्ष लिखते हैं पति के सहवास होने पर गर्भादि धारण अनिश्चित होने से अर्थापत्ति से सिद्ध होता है पूर्व जन्मकृत फल का यह भोग है।[1] युक्ति (अनुमान अथवा अर्थापत्ति) इस देव, चन्द्र के अंकगत शुभ्र उदर वाले शश को उत्तान-(उर्ध्वमुख, अध: मुख)-ही कहती है, जिससे देव धेनुओं की भी वेदोक्त उत्तानगति उपर स्वर्ग को ओर मुख नीचे पृथ्वी को ओर पीठ करके चरने के विषय में मुझे (दमयन्ती को) और अधिक श्रद्धा उत्पन्न हो रही है।[2] यहाँ पर श्रीहर्ष अर्थापत्ति को उदाहरणपूर्वक स्पष्ट करते हैं।

मीमांसकों के अनुसार कर्म ही ईश्वर है-"कर्मेति मीमांसका:।"श्रीहर्ष स्पष्ट लिखते हैं कि संसारीजन अपने कर्मों से उत्पन्न दु:ख का निमित्त बनता ईश्वर से निष्कारण कष्ट भोगता है।[3] अर्थात् ईश्वर नहीं है। कर्म ही सुख-दु:ख का प्रधान कारण है। कर्म में एक "अपूर्व" शक्ति होती है जो जीव को समयोचित समय

---

1. श्लोक संख्या - 17/88 "नैषध॰"
2. श्लोक संख्या - 22/80 " नैषध॰"
3. श्लोक संख्या - 17/77 "नैषध॰"

और परिस्थिति परकर्म का फल प्रदान करती है। मीमांसक इसे कर्म-मीमांसा कहते

श्रीहर्ष लिखते कि ज्ञान स्वत: प्रमाण है। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार परोपकार शीलता स्वत: प्रमाणित होती है।[1] मीमांसक ज्ञान को स्वत: प्रकाशित मानते हैं।श्रीहर्ष दमयन्ती के ऊरु -युगल को पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा के रूप में निरूपित करते हैं।[2] मीमांसा के धर्मशास्त्र सरस्वती के मूर्धारूप में परिणत हैं।[3] सरस्वती को दोनों भृकुटियाँ, ललाट, तिलक और वीणा बजाने के साधन "मिजराव" वेद के ओंकार से बने है।[3]

- - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 10/81 "नैषध॰"

2. श्लोक संख्या - 10/85 "नैषध॰"

3. श्लोक संख्या - 10/86 "नैषध॰"

00000

योग - दर्शन

योग के अष्टांग - साधन का प्रलेखन

श्री हर्ष लिखते हैं कि योगी योग-साधना के प्रथम सोपान में अपनी वृत्तियों को हठात् बाह्य जगत् से आकृष्ट (निवृत्त) कर अन्तर्मार्ग की ओर नियुक्त करता है। इस प्रकार विषय -वासनाओं के प्रहार क्षीण हो जाते हैं। इस अनुकूल स्थिति में ही योगी ध्यान-साधना में प्रवृत्त हो पाते हैं तथा वे अपने शरीर को ब्रह्म-ध्यान में निश्चेष्ट कर देते हैं। इस भाँति दमयन्ती के पास स्वयं हंस भी निर्भय होकर स्थित हो गया है।[1] श्री हर्ष लिखते हैं कि दमयन्ती के प्रति अपनी बुद्धि को प्रतिबद्ध किए उस नल की उपवास-व्रत में लगी, तपश्चरण द्वारा आज दमयन्ती को प्राप्त कर अमृतपान की परितृप्ति की भाजन बाह्य इन्द्रियों का अपना देवत्व सफल हो।[2] यहाँ तपस्यारत होकर तथा तल्लीन भाव से बुद्धि लगाकर ही पुण्य-अर्जन होता है और ब्रह्म साक्षात्कार कर सकता है।

योगी जन्मान्तर में होने वाले स्वर्ग-फल के निमित्त शरीर को तपाग्नि में हवन किया करते हैं। वस्तुत: शरीर का बंधन दु:खों का कारण है। योगिजन इस

---

1. श्लोक संख्या - 3/4 "नैषध."
2. श्लोक संख्या - 3/101 "नैषध."

शरीर के बंधन से मुक्ति के निमित्त विषय-विकारों के मिथ्या आकर्षण में नहीं पड़ते हैं, अपितु वे शरीर को तप: साधना में लगाते हैं।[1]

योग-साधना करते योगी का चित्त शान्त और स्थिर रहता है।उसे बाह्य जगत् के विकार आक्रान्त नहीं करते हैं। तथापि अधिक करुणात्मक स्थिति उसके चित्त को उद्भ्रान्त कर सकती है, जैसे क्रौंच विहगी के करुण विलाप से ऋषि पुंगव वाल्मीकि का अन्तस् विकल हो उठा था। वस्तुत: इसी प्रकार की स्थिति वियोगी तथापि संयमी नल की हुई, जब उसने वियोगिनी दमयन्ती के वियोगार्त क्रन्दन को सुना। नल धर्म और कर्तव्य की निष्ठा से विचलित हो उठा। दमयन्ती यद्यपि उसके पास थी, तदापि उसे करुण स्थिति ने विचलित कर दिया।[2]

मन सदैव ही चंचल रहता है,अत: प्रकृत्या वह पापोन्मुख रहता है। विषय विकारों की ओर मन अधिक आकृष्ट रहता है। मन की चन्चलता के कारण योगी भी पापोन्मुख हो जाता है। इस अवधारणा को श्रीहर्ष इस प्रकार लिखते हैं-किस मुनि का मन पुण्य में लीन रहेगा किसका नहीं, इस विषय में पाप की ओर दौड़ता मन ही प्रमाण है। श्रीहर्ष आगे लिखते हैं कि मन की पापान्मुखी स्थिति पर भी भक्त की रक्षा करुणापरायण ईश्वर अवश्य करते हैं। भक्त की पापोन्मुख बुद्धि को वे निर्मल करते हैं। यहाँ स्पष्ट है कि मन का नियंत्रण योग-साधना के लिए अति आवश्यकत है।

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1• श्लोक संख्या - 2/45 "नैषध•"

2• श्लोक संख्या - 9/101 "नैषध•"

3• श्लोक संख्या - 8/17 "नैषध•"

श्री हर्ष दाडिमो (अनार के पेड़) एवं वियोगिनी में रूपक स्थापित करके योग दर्शन के मूल तत्त्वों का विशदीकरण करते हैं। विषय-पराङ्मुखता एवं अष्टांगयोग से परमात्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है, इस तथ्य का प्रयोग योगिनो के पक्ष में श्रीहर्ष इस प्रकार लिखते हैं- परमात्मसाक्षात्कार रूप फल का बोधक तुरीयावस्था से च्युत अतएव विषय-वासना में सानुराग, जिसके हृदय मे शुकदेव मुनि के उपदेश प्रविष्ट हो रहे होने के कारण काम-बाण निकाल कर फेंके जा रहे थे, ऐसी विषय पराङ्मुख परमप्रेमास्पद सच्चिदानन्द घन परमेश्वर को स्मृति अर्थात् निरन्तर ध्यान करने से शीघ्र परमात्म-प्राप्ति की संभावना से जात हर्ष के कारण स्पष्टत: जो रोमान्चित हो रही थी ऐसी योगिनी अष्टांग-योग को साधिका थी।[1] यहाँ योग-साधना के इस तथ्य का उद्घाटन किया गया है कि परमात्म साक्षात्कार तुरीयवस्था में ही होता है व अष्टांग योग साधना में विषय-वासना वर्जित है। परमात्म-साक्षात्कार में अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है।

सुवर्ण हंस योगशास्त्र के तथ्यों का उद्घाटन करते हुए कहता है कि वह योग-शास्त्र का श्रवण, ब्रह्मा के पवित्र मुखों से किया है। यहाँ व्यन्जना है कि ब्रह्ममुख से सुनने के कारण योग शास्त्र एक विश्वसनीय शस्त्र है। इस शस्त्र के अनुशीलन से ईश्वर ज्ञान समुपलब्ध हो सकता है। योगशास्त्र की यौगिक-क्रियाओं का पालन

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 1/83 "नैषध"

योगिक -क्रियाओं का फलन इसकी विश्वसनीयता का साथी है। हंस आगे कहता है कि मैंने योग विद्या के अनुशलीन से हृदय को अभेद्य (अरन्ध्र हृदि) बना लिया है। अरन्ध्र हृदय से तात्पर्य है कि उसके मन की चन्चलता समाप्त हो गयी है। ध्यान-धारणा में मन (चित्त) का सहयोग मिलता है।[1] वस्तुत: मन को आत्मवश करने में योग-शास्त्र की सर्वोत्कृष्ट भूमिका है।

श्रीहर्ष लिखते हैं कि दमयन्ती नल के ध्यान में इतना निमग्न थी मानों वह हृदय में स्थित नल का साक्षात् दर्शन कर रही थी। वह उत्कलेश के गुण-श्रवण से ध्यान में बाधा के कारण दोनों आँखें बन्द कर अन्तर्हृदय में ही नल को देखना चाहती थी।[2] श्रीहर्ष यहाँ एक योगी के ध्यान-योग का दृश्य प्रस्तुत किया है। योगी ध्यान-योग में अभीष्ट का ध्यान करता है। बाह्य जगत् की बाधाओं से निवृत रहने के निमित्त वह नेत्रों को बंद कर अभीष्ट का ध्यान करता है।

अनन्यवृत्ति दमयन्ती ने हृदय-कमल रूप आवास में देवों को बुद्धि में प्रतिष्ठित कर ध्यान किया, क्योंकि देवों की जो स्फुट भावना (प्रत्यक्ष दर्शन) है, वह सिद्धि का पूर्व रूप है।[3] यहाँ पर श्री हर्ष ने मानसी ध्यान-योग का निरूपण किया है।

---

1. श्लोक संख्या - 3/44 "नैषध"
2. श्लोक संख्या - 12/86 "नैषध"
3. श्लोक संख्या - 14/6(1) "नैषध"

श्री हर्ष लिखते है -नल ने याज्ञवल्क्योक्त लक्षणों में लक्षित प्राणायाम किया- स्वर्ण महाकुंभ में भरे तीर्थ जल में मंत्रोंच्चारण-पूर्वक मुख विनम्र करते और इस प्रकार प्राणायाम करते नल का जलमध्य मुख,अमृत मंथन से पूर्व सागर-मध्य वास करते चन्द्र के समान सुशोभित हुआ।[1]

यहाँ अमृत-मंथन से तात्पर्य है समाधि-साधना। समाधि केपूर्व प्राणायाम की क्रिया सम्पन्न की जाती है,इसकी ध्वनि यहाँ प्राप्त है।

योग-दर्शन में योगी को समाधि की स्थिति का विवेचन प्राप्त होता है। समाधिकाल में ईश्वर का ध्यान नेत्रों को मूँदकर त्रिकुटी पर किया जाता है। बाह्य इन्द्रियों को भौतिक सन्निकर्ष से हटाया जाता है मन को सांसारिक संबधों से निष्क्रिय किया जाता है। योगियों का मन्तव्य है कि ईश-रहस्य का ज्ञान भौतिक साहाय्य से असंभव है। अतएव ये भौतिक संबधों का विच्छेद अत्यावश्यक है। वस्तुत: समाधि की स्थिति, निद्रासन्न की स्थिति होती है, जिसमें बाह्य जगत् का संबध विछिन्न हो गया रहता है। इस योग दर्शन के परिज्ञान का प्रयोग श्रीहर्ष ने अतिपटुता से दमयन्ती-विषयक वर्णन में कर दिया है। नींद में मुँदे दोनों नेत्रों और

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 21/13 (नैषध०)

बाहरी इन्द्रियों की निष्क्रियता के कारण निष्क्रिय मन से भी छिपाकर न देखा हुआ वह पृथ्वीपति (नल) जो इसी कारण दमयन्ती का एक बड़ा रहस्य था, निद्रा ने दिखा दिया।[1] यदि यहाँ दमयन्ती को योगी, नल को ईश्वर और निद्रा को समाधि के रूप में कल्पित किया जाय तो दार्शनिक समाधि की स्थिति स्पष्ट होती है। श्रीहर्ष के इस वर्णन का एक अन्य अर्थ दार्शनिक पक्ष में स्पष्ट किया जाता है/वह इस प्रकार है- हे निद्रा ! (अज्ञान) के कारण तिरोहित अक्ष में वास करने वाले युग काले से और वाक् रूप (इन्द्रिय) व्यापार के अभाव में मूर्ख से भिन्न अर्थात् कलि-दोष से मुक्त और ज्ञानी हे अति गोपनीय लक्ष्मी वाले रहस्यमय, हे माननीय विष्णु भक्तों के मित्र दुष्टों द्वारा अदेखे उत्सव प्रिय वह तुम नल (विष्णु) मेरे पति (स्वामी) होवो। यहाँ इस प्रकार के विवेचन के द्वारा हर्ष ने भक्तिवाद को श्री विष्णुकी प्रशस्ति में प्रतिष्ठित किया है।

श्री हर्ष लिखते हैं -श्री हरिनारायण की स्तुति निवेदन कर साकार ध्यान समाधि- संप्रज्ञात के कारण हरि की भावना से अतिशय आविष्ट वह नल भावनावश प्रत्यक्ष हुए विष्णु के प्रति सहज ,प्रेम, और भक्ति के अनुरूप आनन्दाश्रुविमोचन, गीत नृत्यादि कर्म करने लगा।[2] यहाँ स्पष्ट है कि समाधि दो प्रकार -सम्प्रज्ञात तथा

- - - - - - - - - - - - - -

1• श्लोक संख्या - 1/40 "नैषध"

2• श्लोक संख्या 21/104 "नैषध"

असम्प्रज्ञात है। ध्येय ध्यातृभावयुक्त साकार ध्यान समाधि- संप्रज्ञात समाधि है। निराकार, स्वप्रकाश, परमानन्द स्वरूप परमात्मा का ध्यान असंप्रज्ञात है। नल ने प्रथम प्रकार की समाधि की।

अष्ट-सिद्धि का उद्धरण

योग-दर्शन में अष्ट सिद्धि- अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व का निरूपण है। यह सिद्धि योगी को योग-साधना के विविध चरणों पर प्राप्त होती जाती है- ऐसी योग शास्त्र की मान्यता है। श्रीहर्ष अष्ट सिद्धि के तत्वों को नैषध में प्रयुक्त करते हैं वे लिखते हैं-परमेश्वर के अष्टविध ऐश्वर्य के मध्य जो अणिमा नामक ऐश्वर्य हैं उसके विवर्त में मध्यभागवाली दमयन्ती है।[1] यहाँ पर अणिमा सिद्धि का निरूपण है। नारद ने बिना विमानादि के आकाश की यात्रा कर डाली। श्रीहर्ष लिखते हैं कि साधना तो सामान्य जनों को आवश्यक होता है, योगियों को तप से ही सिद्धि मिल जाती है।[2] यहाँ पर श्री हर्ष लघिमा सिद्धि का संकेत करते हैं। इन्द्र ने योग-सिद्धि से प्राप्त अन्तर्धान कौशल को नल को बताया है।[3] यहाँ भी अणिमा सिद्धि का प्रसंग है। भीम के पुर में प्रवेश करता वह

---

1. श्लोक संख्या - 3/64 "नैषध."
2. श्लोक संख्या - 5/3 "नैषध."
3. श्लोक संख्या - 5/137 "नैषध."

वियोगी राजा नल का शरीर में प्रवेश करते योगी के समान सुशोभित हो रहा था। यहाँ नल को योग की लघिमा-शक्ति प्राप्त थी। श्रीहर्ष लिखते हैं कि योग-साधना द्वारा योगी अलौकिक कार्यों को कर सकता है।[2] अर्थात् वह काम्य शक्ति को प्राप्त करसकता है।

श्री हर्ष देवों की भीम की नगरी से प्रस्थान पर लिखते हैं- धीरे-धीरे दूर-दूर हो गये देवों और रथों का अणिमा-गुण (सूक्ष्मता गुण) तथा अष्ट ऐश्वर्य में प्रथम गुण, वह उससमय आठ महिमादि ऐश्वर्य गुणों से पृथक् होता है जैसा स्पष्ट हुआ।[3] यहाँ अष्ट सिद्धि का उद्धरण भी प्राप्त है।

श्री-हर्ष लिखते हैं कि दमयन्ती का कृश उदर अणिमा ऐश्वर्य से, नितम्ब और उरोज गरिमा-महिमा ऐश्वर्य से, चित्त वशित्व ऐश्वर्य से, मुस्कान लघिमा ऐश्वर्य से, नल के प्रति प्रेम-समर्पण इशित्व ऐश्वर्य से, वचन चातुरी प्राकाम्य ऐश्वर्य से और दिशाओं में यश और प्रसार कामावशाय ऐश्वर्य से बने हैं।[4] यहाँ श्री हर्ष आठों सिद्धियों का भंगिमा पूर्ण वर्णन प्रस्तुत करते हैं

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 6/46 "नैषध."
2. श्लोक संख्या - 1/124 "नैषध."
3. श्लोक संख्या - 17/5 "नैषध."
4. श्लोक संख्या - 21/145 "नैषध."

चित्त वृत्ति का निरूपण

दार्शनिक भूमियों पर मन को चन्चल एवं अति तीव्र गामी अवधारित किया गया है। योगदर्शन में मन को "चित्त" की संज्ञा दी गयी है। योग भूमि पर चित्त की विविध वृत्तियों की व्याख्याप्राप्त होती है। द्रुतगामिता चित्त-वृत्ति का प्रयोग श्रीहर्ष ने इस प्रकार किया है। चित्त की द्रुतगामिता अश्ववेग के समक्ष क्षीण हो चली थी। चित्त प्रस्तुत कौशल के निमित्त अश्ववेग से शिष्यवत् प्रशिक्षण ले रहा था।[1]

श्री हर्ष लिखते हैं कि अयोध्याधीश ऋतुपर्ण दमयन्ती के प्रति एकतान मन रखने के कारण अयोध्या के बारे में भी नहीं सोचता है। यहाँ कवि ने चिन्तन चित्त वृत्ति का निरूपण किया है।

सरस्वती ने संदेह स्पदस्थिति में पड़ी तथा संदेह, आश्चर्य तथा भय के कारण नाना-विध चित्तवृत्तियों से पूर्ण दमयन्ती को अन्य देव की प्रशस्ति सुनाना उचित समझा।[2] यहाँ पर संदेह, भय, आश्चर्य, चित्तवृत्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

---

1. श्लोक संख्या - 12/5 "नैषध•"
2. श्लोक संख्या - 13/14 "नैषध•"

दमयन्ती की राग चित्त वृत्ति को स्मरण करते हुए नल ने अपने प्रति उसके प्रेम को निर्णीत किया।[1] चक्रवाक और चक्रवाकी, प्रात: काल में रागचित्त वृत्ति से संयुक्त हो जाते हैं।[2]

योगी और योग साधना का निरूपण

योगी की प्रकृति, स्वभाव एवं स्वरूप का निरूपण नैषध में प्राप्त है। इन्द्र के विवाह प्रस्ताव का इन्कार, मोक्ष की कामना करते निर्विकार चित्त विद्वान् (योगी) संसार में उत्पन्न सुखों की अवज्ञा सदृश दमयन्ती की सन्ताप कारिणी नहीं हुई।[3] यहाँ पर तीन योगी -कर्मयोगी,भक्तियोग,ज्ञानयोगी में से ज्ञान योगी का स्वरूप वर्णित है। दमयन्ती की चेष्टाएँ नल-प्राप्ति के निमित्त एकनिष्ठ होने से ज्ञान योगी की तरह हैं। इसीलिए तो उसे इन्द्र का सुखकारी विवाह-प्रस्ताव को इन्कार 'इन्द्र' सन्तापकारी - तपस्वी का स्वभाव शान्त प्रकृति का होता है। वे क्रोध से मुक्त होते हैं।[4]

तपश्चर्यायुक्त योगी सुख की लिप्सा से मुक्त रहते हैं।[5] योगी श्रुति स्मृति रूप में प्रतिपादित भगवदादेश का पालन करते हैं।[6]

---

1. श्लोक संख्या - 14/35 "नैषध"
2. श्लोक संख्या - 19/17 "नैषध"
3. श्लोक संख्या -[illegible]/96 "नैषध"
4. श्लोक संख्या - 17/79 "नैषध"
5. श्लोक संख्या - 17/185 "नैषध"
6. श्लोक संख्या -21/102 "नैषध"

बौद्ध - दर्शन

श्रीहर्ष बौद्ध-दर्शन के पण्डित थे। वे प्रस्तुत उद्धरण में बौद्ध-दर्शन के अपने विशद ज्ञान को निरूपित करते हैं। वे लिखते हैं - सरस्वती मानों कापालिक दर्शन रूप पूर्णिमा के चन्द्र तुल्य मुखवाली है। वे शून्यतात्मवाद (माध्यमिक दर्शन, अभाववादी बौद्ध दर्शन) के तुल्य नहीं है। अर्थात् वे अत्यन्त कृश उदर से युक्त हैं। वे विशिष्ट ज्ञान की सम्पूर्णता रूप सम्पूर्ण ज्ञान से प्रचुर आशिषतताशालिनी हैं और वे सौत्रान्तिक साकार विज्ञान वादी साकार सिद्धि दर्शन के समान समस्त सुन्दर रूपमयी है।[1] यहाँ पर श्रीहर्ष ने कापालिक दर्शन, अभाववादी बौद्ध दर्शन, विज्ञानमात्रवादी निराकार विश्वासी योगाचार-दर्शन और नील-पीत आदि रूपता से सिद्ध सौत्रान्तिक साकारता-सिद्धवाद- दर्शन का विशद निरूपण किया है।

बौद्ध-दर्शन में पारमिता का निरूपण है । "दान-पारमिता" बौद्ध-दर्शन का एक ग्रन्थ है। श्रीहर्ष कल्पना करते हैं कि कल्पवृक्ष ने इन्द्र से "दान-पारमिता" ग्रन्थ का अध्ययन किया है, इसीलिए उसमें इतनी उदारता है।[2]

बौद्ध-दर्शन का सिद्धान्त है कि जिसकी सत्ता है, वह क्षणिक है । बौद्ध-दर्शन में इसे क्षणिक वाद के रूप में जाना जाता है। जिसके अनुसार सब कुछ अनित्य है। यहाँ पर बौद्ध-दर्शन का उपर्युक्त सिद्धान्त वेदों की प्रामाणिकता के प्रतिकूल स्थापित है। जगत् के क्षणिकत्व के सिद्ध हो जाने पर वेद-विहित पाप-पुण्य के फल भोगने का सिद्धान्त अतथ्य प्रमाणित होता है। इसीलिए श्री हर्ष लिखते हैं-

---

1. श्लोक संख्या 10/88 "नैषध" 2. श्लोक संख्या -5/11 "नैषध"

बोधिसत्व गौतम बुद्ध ने वेद के रहस्य के उद्घाटन के निमित्त जन्म लिया, उन्होंने सत्ता के हेतु से जगत् को क्षणभंगुर कहा।[1] बौद्धों के वेद-विरोध के स्वरूप को श्रीहर्ष उपमा द्वारा इस प्रकार निरूपित करते हैं- जिस प्रकार अदुष्टकृत श्रुति को बौद्ध धर्मावलम्बी दुर्वचनों से दूषित करते हैं उसी प्रकार नल ने अदुष्टकृत दमयन्ती को अपने दूषित दूतत्व से दूषित किया।[2]

बौद्ध-दर्शन में कारणवाद की व्याख्या है। बाह्य तथा मानस जितनी भी घटनायें होती हैं, सबके लिए कुछ न कुछ कारण अवश्य होते हैं। किसी भी कारण के बिना किसी भी घटना का आविर्भाव नहीं हो सकता है इस आधार पर श्रीहर्ष लिखते हैं- रात्रि की शीतलता का कारण चन्द्रमा नहीं हो सकता है, क्योंकि चन्द्रमा तो निष्प्रभरूप में दिन में भी रहता है। वस्तुत: रात्रि की शीतलता एवं धवलता का मूल कारण कुमुदों का खिलना अर्थात् उनका हास-विलास ही है।[3] यहाँ पर कवि मूल कारण की समीक्षा बौद्ध-मत के कारणवादकी पद्धति से करता है। श्रीहर्ष कोकटाधिपति के विश्वजयी शौर्य को उसी प्रकार निरूपित करते हैं जिस प्रकार जिन-गौतम बुद्ध- ने अपने शौर्य से जन्म-मृत्यु को जीत लिया था।[4] श्री हर्ष आगे लिखते

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 17/37 "नैषध."

2. श्लोक संख्या - 9/62 "नैषध."

3. श्लोक संख्या - 22/61 "नैषध"

4. श्लोक संख्या - 12/87 "नैषध."

बुद्ध को बुद्धत्व की प्राप्ति कठोर साधना के उपरान्त हुई थी। बुद्ध ने जिस कामदेव के महायश रूप शरीर को हर लिया था उसके अवशेष भाव पाँच भौतिक शरीर को महादेव शंकर ने हर लिया था।[1] यहाँ पर स्पष्ट है कि गौतम बुद्ध ने काम-भाव को जीत-लिया था। वे पूर्णजितेन्द्रिय थे। इस कार्य के लिए उन्होंने कठोर साधना की थी। यहाँ वे दार्शनिक मत प्रकट करते हैं कि भौतिक शरीर की रचना पाँच भौतिक तत्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और पवन से हुआ है। आत्मा के अलग होने पर भौतिक शरीर का इन तत्वों में विलय हो जाता है।

श्री हर्ष लिखते हैं कि राजा नल की क्षमाशीलता के समक्ष तथागत बुद्ध को क्षमाशीलता नहीं ठहरती है।[2] यहाँ पर स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध अहिंसावृत्ति के पक्षधर थे। वे, शान्ति चित्त से साधना सम्पन्न होती है, इस बात के पक्षधर थे। श्रीहर्ष नारायण को बुद्धावतार के रूप में नल द्वारा स्तुति करते हैं। वे भगवान् बुद्ध की विशिष्टताओं को निरूपित करते हैं तथा वे बौद्ध-दर्शन पर प्रकाश डालते हैं। वे लिखते हैं कि बुद्ध और बौद्धमत वेद को नहीं मानते हैं। बौद्ध-मत से क्षणिक ज्ञान-प्रवाह ही सत्य है। बौद्ध माध्यमिक तत्त्व को मानने वाले हैं। भगवान् बुद्ध कामजयी हैं।[3]

---

1. श्लोक संख्या - 4/80 "नैषध"
2. श्लो संख्या - 3/36 "नैषध"
3. श्लोक संख्या -21/82 (1), (2), (3) (4) नैषध

श्रीहर्ष बौद्ध-देवालयों का उल्लेख करते हैं, जो बौद्ध धर्म में मन्दिर की भाँति पवित्र पूज्य स्थल माना गया है।[1] श्रीहर्ष रात्रि को बौद्ध योगिनी की भाँति व्यक्त करते हैं। बौद्ध दर्शन में शून्यवाद की अवधारणा है कि ज्ञानप्राप्ति पर सारा संसार
प्रतीत होता है। रात्रिरूपिणी योगिनी इस सिद्धान्त का वाचन कर रही है — वह शून्य
शून्य (मार्ग, आकाश) में चमकते तारे दिखा रही है, जो वस्तुतः आकाश-पुष्पों की भाँति मिथ्या है। इस अंधकार रूप भ्रम के कारण ये आकाश-पुष्पों से मिथ्या तारक रात्रि में दिखाई पड़ रहे हैं। तत्त्व ज्ञान रूप सूर्य-प्रकाश पर ये तारे लुप्त हो जाते हैं।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री हर्ष को बौद्ध-दर्शन का पूर्ण ज्ञान था। उन्हें बौद्ध मत के कारणवाद, शून्यवाद, सौत्रान्तिक, माध्यमिक, पारमिता आदि का विशद ज्ञान प्राप्त है।

वैशेषिक - दर्शन

वैशेषिक दर्शन में परमाणुवाद की व्याख्या प्राप्त है समस्त संसार की रचना परमाणुओं के मिलने से हुई है। परमाणुओं के विखण्डित होने पर सृष्टि का लय हो जाता है। वैशेषिक वादी मन को भी परमाणु के तुल्य समझते हैं। मन की परमाणु एवं उसकी चन्चलता का निरूपण श्रीहर्ष इस प्रकार करते हैं— मन अणुप्रमाण है और

---

1. श्लोक संख्या -21/25 "नैषध."
2. श्लोक संख्या - 22/23 "नैषध."

नल को समस्त संसार का सौन्दर्य प्राप्त हो गया। तथा चन्द्रमा के लिए कुछ भी शेष न रहा। जैसे, खेत से अनाज उठाये जाने पर कुछ दाने पड़े रह जाते है, वैसे ही कुछ सौन्दर्य कण शेष पड़े रह जाते हैं। चन्द्रमा ने उन्हीं कणों को एकत्र कर स्वयं को सजाया है। चन्द्रमा नल के समक्ष अत्यन्त तुच्छ है, परन्तु किसी कारण ही सही चन्द्रमा बना कणजीवी तपस्वी "कणाद"। फलस्वरूप महादेव ने श्रेष्ठ याज्ञिक रूप में मान्यता देकर अपने मस्तक पर स्थापित कर दिया। जिस प्रकार श्रेष्ठ याज्ञिक कणाद को ईश्वर ने साक्षात्कार दिया था।[1] वैशेषिक दर्शन में अन्धकार [अज्ञान] के विवेचन प्राप्त हैं। श्रीहर्ष इस विवेचन पर भङ्गिमापूर्ण लेखन प्रस्तुत करते हैं- हे अत्यन्त आकर्षक ऊरुयुगलवाली दमयन्ती, अन्धकार के स्वरूप के निरूपण के विषय में वैशेषिक [कणाद निरूपित] मत मुझ नल को उपयुक्त लगता है, क्योंकि अन्धकार के तत्त्व विवेचन में समर्थ उस दर्शन को "औलूक" दर्शन कहते हैं।[2] ज्ञातव्य है कि षड्दर्शनों में वैशेषिक की गणना की गयी है, जिसका प्रवर्तन कणाद मुनि ने किया है। उनका दूसरा नाम उलूक इसलिए पड़ा है क्यों कि वे उलूक वृत्ति से कणों का भोजन करते थे। उलूक का दर्शन वैशेषिक दर्शन एतद्कारणाद् औलूक दर्शन कहा गया है इस दार्शनिक पृष्ठभूमि पर श्रीहर्ष भाङ्गिमापूर्ण लेखन प्रस्तुत करते हैं। उलूक पक्षी विशेष वाची और कणाद ऋषि वाची होने के आधार पर श्रीहर्ष लिखते हैं- जिस प्रकार उलूक पक्षी अन्धकार में घट

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 8/42 "नैषध"

2. श्लोक संख्या 22/35 "नैषध"

घटादि की विशिष्टता बतला सकता है उसी प्रकार कणाद का औलूक-दर्शन तमस्तत्व-निरूपण में उपयुक्त मत है। तेज का अभाव ही अन्धकार है। अभावरूप अन्धकार में जो स्पर्श करने योग्य नहीं है अन्धकार है। अभावरूप अन्धकार में जो स्पर्श करने योग्य नहीं है, को केवल उल्लू ही देख सकता है। यहाँ व्यञ्जना है कि अविद्या अभाव रूप है जिसे केवल ज्ञानी लोग ही देख सकते हैं।

निष्कर्षतः श्रीहर्ष वैशेषिक दर्शन में पारङ्गत थे। उन्हें परमाणुवाद, भावा-भावाद, तर्कवादादि का विशद ज्ञान प्राप्त था। उन्होंने अपनी भङ्गिमापूर्ण लेखन शैली से इन वैशेषिक दर्शन के तत्त्वों का प्रवेश बहुत ही चारुतर रूप से कराया है।

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 22/36

0 0 0
0

जैन - दर्शन

जैन वेद को नहीं मानते हैं। वे वेद को कर्मकाण्ड मात्र मानते हैं क्योंकि वह वेद हिंसा का आधार है। श्रीहर्ष लिखते हैं कि कलि वेद विरोधी लोगों को खोजता था। वह वेद विरोधी जैन, बौद्ध दिगम्बर, भिक्षु "क्षपणक" के पास पहुँचा। किन्तु दुर्भाग्य वश वह कलि के "जिन" को न पाकर "अजिन" ब्रह्मचारियों का मृगचर्म (अर्थात् ब्रह्मचारी तपस्वियों को पाया। वह क्षपण को न पाकर अक्षपण (दीक्षा से थोड़ा भी च्युत न होने वाला) पाया।[1] कलि निषध राज्य में खोजता था "वीरहण" जिन "जैनों की भाँति महातपस्वी वीर)। वह कलि निर्मुक्त (सूर्योदय, सूर्यास्त काल में निद्रित अतएव अनाचारी) को न पाकर निर्मुक्त (जीवन मुक्त) लोगों को पाया।[2] यहाँ पर कवि ने जिन शब्द का "महावीर" पर्याय निरूपित किया है जो जैन दर्शन का प्रमुख शब्द है।

जैन दर्शन में त्रिरत्न -सद्दृष्टि सद्ज्ञान, और सद्वृत्ति निरूपित है। इस विषय पर श्रीहर्ष लिखते हैं कि जिस प्रकार जैनों ने तीन रत्नों में जिस धर्मरूप चिन्तामणि का निवेश किया उसी प्रकार दमयन्ती ने भी पतिव्रत-धर्म के पालन के निमित्त तीन धर्मों का पालन किया।[3] श्री हर्ष

---

1. श्लोक संख्या - 17/186 "नैषध."
2. श्लोक संख्या- 17/194 "नैषध."
3. श्लोक संख्या - 9/71 "नैषध."

लिखते हैं- उस राजा की सेना में चलने वाले घुड़सवारों ने मानों "जिन" के वचनों में श्रद्धा रखने के कारण ही उस विहार स्थल कोप्राप्त कर अनेक अश्वों को भी, जिस प्रकार जैन साधक मण्डली बनाकर अवस्थित होते हैं, उसी प्रकार मण्डल बनाकर घुमाया।[1] प्रस्तुत उत्प्रेक्षा में श्रीहर्ष ने लक्षित किया है कि जैन -धर्म के साधकों के उपास्य देव "जिन" होते हैं। जिन का शिक्षोपदेश स्थल विहार हुआ करता है जैन साधक मण्डली बनाकर जिन के समक्ष उपस्थित होते हैं।

श्रीहर्ष लिखते हैं- रिक्त चुल्लू से जल-धार बहाकर नल ने कला और उसकी सखी को पूर्णतः भिगोदिया। उसके महीन भीगे वस्त्र पारदर्शी बन गये और कुचादि अङ्ग दीखने लगे। वे सखियाँ नग्न दीखने लगीं। वस्तुतः वे दिगम्बरा जैन साध्वी की तरह लगने लगीं।[2] यहाँ पर कवि जैन भिक्षुणी के आचार का चित्रण करता है।

अन्ततः हम देखते हैं कि श्रीहर्ष जैनों के वेद-विरोध, त्रिरत्न, जिन-विहार, जैन भिक्षुसेविधिवत् परिचित थे।

- - - - - - - - - - - - -

1 श्लोक संख्या - 1/71 "नैषध"

2. श्लोक संख्या - 2/128 "नैषध"

चार्वाक - दर्शन

चार्वाक भौतिक जगत् को ही सत्य मानता है। वह पारलौकिक स्थिति को मिथ्या एवं भ्रमजनित मानता है। वस्तुत: उसके लिए देह ही आत्मा है। जन्मान्तर नहीं होता है। ईश्वर आदि कुछ भी नहीं है। चार्वाक के इन मौलिक दार्शनिक तत्त्वों का निरूपण श्रीहर्ष ने बड़ी निपुणता से किया है। ~~उन्होंने चार्वाक-दर्शन के निरूपण से किया है।~~ उन्होंने चार्वाक-दर्शन के निरूपण के लिए मानों नैषध के 17 वें सर्ग की रचना ही कर डाली है। चार्वाक काम-वासना, भोग-विलास आदि को जीवन का लक्ष्य स्थापित करते हैं। वे सशक्त रूप से वेद का विरोध करते हैं।[1] दमयन्ती एक जगह चार्वाक-मत में आकर त्रिवर्ग के महत्त्व को स्थापित करती है। वह स्वर्ग के लिए इन्द्र का वरण करना नहीं चाहती है।[2] सत्तारहवें सर्ग में चार्वाक के कामभोग का प्रतिवेदन, वेद-विरोध, स्वच्छन्द एवं बलात् आनन्द का भोगवाद, देहात्मवाद, मन्त्र-तन्त्र का विरोध, नश्वरता का विरोध ईश्वर और मूर्तिवाद का विरोध, मीमांसा के यज्ञानुष्ठान का खण्डन, धर्म-अधर्म की जल्पता की स्थापना, अवतारों का निराकरण, महात्माओं में क्षुद्रता का अन्वेषण, तप-व्रत पर आक्षेप, तृतीय पुरुषार्थ काम (मैथुन)

- - - - - - - - - - - - -

1. श्लोक संख्या - 10/58 "नैषध"
2. श्लोक संख्या - 06/105 "नैषध"

का महिमा मण्डन, धर्म-तीर्थ पर व्यङ्ग्य, परलोक भोग का मिथ्यापन, वेदान्त मत का उच्छेदन न्यायमत पर उपहास अपने मत की स्थापना आदि क्रमशः निरूपित किये गये हैं।[1]

निष्कर्ष

नैषध में यत्र-तत्र कतिपय ऐसे श्लोक प्राप्त हैं, जिसमें सामान्य दार्शनिक तत्त्वों का निरूपण है। कुछ सामान्य दार्शनिक तत्त्व वे हैं जिसके प्रति सभी आस्तिक दर्शनों के विचारों में एकरूपता है। जैसे-आत्मा का अस्तित्व, जन्म मरण, दुःख क्लेश, मनश्चान्चल्य, जन्मजन्मान्तर गमन, कर्म-फल, ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता, सृष्टि की ~~अ~~ नश्वरता, सृष्टि का अनवरत प्रवाह आदि सर्वसामान्य दार्शनिक तत्त्व हैं। इन दार्शनिक बिन्दुओं पर सभी दर्शन मूलतः एक रूप हैं। शैव[2] और[3] वैष्णव सम्प्रदाय के भी दार्शनिक विचार नैषध में प्राप्त हैं। नैषध में वैष्णव के भक्ति और अवतार[4] का निरूपण विशद रूप से प्राप्त है। यहाँ पर ~~ईश्वर को सगुण विशद रूप से प्राप्त है।~~ यहाँ पर ईश्वर को सगुण रूप में व्यक्त कियागया है जो अवतार रूप में लोक-क्याण में प्रवृत्त होता है।

अन्ततः यह सिद्ध होता है कि नैषध एक विद्वता पूर्ण काव्य ग्रन्थ है। जिसको दार्शनिक तत्त्वों के सम्प्रयोग से अतिशय ग्रन्थिल बना दिया गया। पूरा महाकाव्य दर्शन का आकर ग्रन्थ है, जो विद्वान् पाठकों को ही अपने काव्य-पियूष का पान कराता है।

63,66,67,68,70,71,72,73,82"नैषध०"

2. श्लोक संख्या - 1/119,3/24,4/3,8/15,18/10, 5/109,5/118, 124,126"नैषध०"

3. 2/6 "नैषध०"

4. श्लोक संख्या 1/24, 3/31, 10/69 "नैषध०"

षष्ठ अध्याय:

तीनों महाकाव्यों में दार्शनिक तत्त्वों का तुलनात्मक अध्ययन

बृहत्त्रयी के तीनों महाकाव्य-किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधीयचरित-उत्तरोत्तर श्रेष्ठ रूप में लिखे गये हैं। इस उत्तरोत्तर श्रेष्ठता की परिधि में दार्शनिक तत्त्वों का प्रयोग भी उत्तरोत्तर ढंग से बहुल है। नैषधीयचरित में तो दार्शनिक तत्त्वों की सम्प्रयुक्ति चरम बिन्दु तक पहुँच गयी है। तीनों महाकाव्यों में लगभग सभी दर्शन के तत्त्व प्राप्त होते हैं। ज्ञातव्य है कि तीनों काव्यों के रचनाकार वेदान्त, सांख्य, योग, न्याय, मीमांसा के तत्त्वों के सम्प्रयोग एवं निरूपण पर अधिक बल देते हैं, जबकि वैशेषिक, बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि के तत्त्वों के प्रयोग पर कम बल देते हैं। तीनों महाकाव्यों में उपर्युक्त दर्शनों के तत्त्वों पर लेखन की उत्तरोत्तर व्यापकता दर्शनीय होती है। बृहत्त्रयी के कवियों की दार्शनिक तत्त्वों की प्रस्तुति एवं लेखन-शैली कुछ सीमा तक समान है और कुछ सीमा तक भिन्न। भारवि कहीं पर सीधा एवं सपाट दार्शनिक प्रस्तुतीकरण देते हैं तो कहीं पर व्यञ्जना एवं लक्षणा का माध्यम लेते हैं। माघ भी प्रायः उपर्युक्त शैली को प्रस्तुतीकरण का माध्यम चुनते हैं। श्री हर्ष उपर्युक्त शैली के साथ-साथ शुद्ध दार्शनिक शैली में भी लिखने की चेष्टा करते हैं। हम अधोलिखित दर्शन के शीर्षकों के अन्तर्गत बृहत्त्रयी के कवियों के दार्शनिक तत्त्वों की प्रस्तुतीकरण का तुलनात्मक अध्ययन भिन्न-भिन्न कोणों से करते हैं। साथ ही साथ हम समीक्षात्मक रूपरेखा भी निर्मित करते हैं कि बृहत्त्रयी के कवि

दार्शनिक तत्त्वों को प्रस्तुतीकरण में उत्तरोत्तर रूप से श्रेष्ठ होते गये हैं।

वेदान्त- दर्शन

भारवि, माघ और श्रीहर्ष तीनों महाकवि वेदान्त-दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित हैं। भारवि शिव भगवान् के उपासक हैं, माघ कृष्ण भगवान् के तथा श्रीहर्ष नारायण (विष्णु) भगवान् के उपासक हैं। तीनों महाकवियों ने अपने महाकाव्यों में माया-मति-भ्रम, ब्रह्म, जीव, आत्मा, ईश्वर, ज्ञान-अज्ञान, सृष्टि-रचना, पञ्च महाभूत, आत्म-साक्षात्कार आदि दार्शनिक तत्त्वों का विशद विवेचन किया है।

ब्रह्म के निरूपण के लिए भारवि ने किरात० में अधिक स्थान और अवसर को निकाला है। भारवि शैव हैं। इसीलिए वे अपने उपास्य देव शङ्कर को ब्रह्म के रूप में निरूपित करते हैं। उन्होंने अपने महाकाव्य किरात० में भगवान् शङ्कर को एक प्रमुख पात्र बनाने के साथ-साथ फल-प्रदाता आराध्य देव के रूप में भी प्रतिष्ठित किया है। फलत: वे भगवान् शंकर को अपनी काव्य-भूमि पर सगुण ब्रह्म के रूप में निरूपित करते हैं। अवसरानुकूल वे उन्हें निर्गुण ब्रह्म के लक्षणों के द्वारा भी अभिव्यक्त कर देते हैं। वस्तुत: ऐसे स्थलों पर भारवि वेदान्त दर्शन के सगुण ईश्वर और निर्गुण ईश्वर के भेद को भी सफलतापूर्वक ज्ञापित करते हैं। सत्रहवें सर्ग में उन्हें ब्रह्म की विविध विशेषताओं पर प्रकाश डालने का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत सर्ग में कवि भगवान् शंकर

को निर्विकार तथा माया-मोह से रहित व्यक्त करता है। कवि दार्शनिक भूमि पर मल्ल-युद्ध में अर्जुन और शंकर को जीव और ब्रह्म के रूप में दर्शाता है। अर्जुन की तपश्चर्या को वह एक मुमुक्षु साधक की तपश्चर्या के रूप में देखता है।भारवि ऐसे स्थलों पर प्रतीक शैली का प्रयोग करते हैं। भारवि को हिमालय पर्वत अज्ञेय ब्रह्म की तरह लगता है, कमल-पुष्प साधक के हृदय के रूप में आभासित होता है। वस्तुत: ये दार्शनिक तत्त्व कहीं पर स्पष्ट उल्लिखित हैं तो कहीं पर अलंकारों के माध्यम से। ब्रह्म-तत्त्व को कहीं - कहीं पर ईश्वर तत्त्व के रूप में भी व्यक्त किया गया है। ब्रह्म तत्त्व के प्रयोग से किरात के काव्य-धारा-प्रवाह एवं सौष्ठव में चारूता आयी है।

माघ वैष्णव सम्प्रदाय के उपासक हैं। भगवान् कृष्ण॥विष्णु॥ उनके उपास्य देव हैं। शिशुपाल वध में भगवान् कृष्ण एक प्रमुखपात्र के रूप में हैं, साथ ही साथ वे पूज्य देव के रूप में भी प्रतिष्ठित किये गये हैं। शिशुपालवध में माघ को श्रीकृष्ण की स्तुति एवं वन्दना करने का अच्छा अवसर मिला है। जिसके कारण वे वेदान्त दर्शन के निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म-तत्त्व को निरूपित करते हैं। माघ के लिए श्रीकृष्ण मानव-मात्र नहीं है, वे तो सर्वव्यापक ब्रह्म के रूप में उपलब्ध हैं। माघ श्रीकृष्ण की स्तुति में उल्लेख करते हैं कि श्रीकृष्ण आदिपुरूषस्प हैं, वे माया से रहित हैं। वस्तुत: माघ ब्रह्म के तत्त्वों का निरूपण विशद रूप से करते हैं। वे ब्रह्म को मायावी, अजन्मा और अमर निरूपित करते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि श्रीकृष्ण

अपनी माया-शक्ति से आदि-पुरुष हैं, साथ ही साथ वे नित्य नूतन भी हैं। वे लिखते हैं कि श्रीकृष्ण अपनी माया से अद्भुत संसार की रचना कर देते हैं। श्रीकृष्ण के सगुण पक्ष को माघ ईश्वर के रूप में निरूपित करते हैं। वे व्याकरणात्मक उपमा से निरूपित करते हैं कि श्रीकृष्ण ईश्वर के रूप में संसार के कर्ता और हर्ता हैं। वे ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का स्वाभाविक चित्रण करते हैं। कुमुदवन का एक ओर श्रीहीन होना और दूसरी ओर कमल समूह का कान्तियुक्त होना, सर्वशक्तिमान्, सत्ता के अधीन है। माघ ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण दोनों पक्षों की विस्तृत चित्रण शिशुपाल वध में करते हैं। फलत: उनका महाकाव्य अधिक आकर्षक एवं रुचिकर हो गया है। ब्रह्म के दार्शनिक पक्षों के प्रयोग से काव्य की धारा की प्रवाह सहज एवं हृदयहारी हो गया है।

भारवि और माघ की अपेक्षा श्रीहर्ष नैषध० में वेदान्त दर्शन के ब्रह्म-तत्त्व का प्रयोग व्यापक रूप से करते हैं। वे ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण दोनों पक्षों के स्वरूप एवं लक्षणों का प्रयोग अपनी काव्य-धारा में वैदग्ध्यभङ्गीभणीतियों के द्वारा करते हैं। वे प्रतीक शैली के द्वारा स्वर्ण-हंस को परब्रह्म के रूप में निरूपित करते हैं। दमयन्ती के लिए नल की प्राप्ति ब्रह्म-प्राप्ति के तुल्य है। वे विष्णु (नारायण) के स्वरूप का चित्रण आलंकारिक ढंग से करते हैं। वे कुंडिनपुरी को विष्णु के उदर से उपमित करते हैं। वे पौराणिक आख्यानों के द्वारा ब्रह्म के स्वरूप को दर्शाते हैं।

श्री हर्ष ब्रह्म को सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, अमनोगम्य, अजर अमर, अनादि, अनन्त आदि लक्षणों के साथ नैषध में प्रयुक्त करते हैं। इन लक्षणों का प्रयोग श्रीहर्ष स्पष्ट रूप से नैषध0 में करते हैं। कहीं-कहीं पर ष दार्शनिक तत्त्वों को बल पूर्वक प्रयोग करने पर विवेच्य विषय गौण और दार्शनिक बिन्दु प्रमुख हो गये हैं, किन्तु इतना अवश्य कहा जासकता है कि इन दार्शनिक तत्त्वों को भाङ्गिमापूर्ण कल्पनाओं के साथ प्रयुक्त करने से काव्य में चमत्कार की छटा नितान्त रूप से आ गयी है। श्री हर्ष ब्रह्म को ईश्वर के रूप में भी निरूपित करते हैं । वे ईश्वर को जगत् के स्रष्टा के रूप में व्यक्त करते हैं। नारायण की स्तुति के अवसर पर श्रीहर्ष लिखते हैं कि नारायण जगत् के स्रष्टा हैं, वे सर्वशक्तिमान् हैं। श्रीहर्ष ईश्वर-विवेचना में भारवि और माघ के समान ही है । ब्रह्म-प्राप्ति - पद्धति पर भी कवि व्यापक लेखन प्रस्तुत करता है। हंस का सिर खुजलाना साधक का ब्रह्म-प्राप्ति - पद्धति को निरूपित करता है। दमयन्ती की प्रेम-चेष्टा साधक के कार्य-व्यापारों की अनुकृति सी है। ~~चार्वाक द्वारा वेदान्त-व्यापारों की अनुकृति सी है।~~ चार्वाक द्वारा वेदान्त-दर्शन के खण्डन के प्रकरण में ब्रह्म-प्राप्ति-पद्धति की विवेचना होती है। वस्तुत: हम देखते हैं कि श्री हर्ष ब्रह्म के विविध लक्षणों को स्पष्ट और व्यापक रूप से निरूपित करते हैं। भारवि और माघ की अपेक्षा वे अधिक बहुलता से ब्रह्म के तत्त्वों को प्रस्तुत करते हैं।

तीनों महाकाव्यों में माया, मति भ्रम और अज्ञान पर विवेचना प्राप्त होती है। भारवि को शंकर और उनकी सेना पर अर्जुन के बाण-प्रक्षेप की विफलता पर माया-शक्ति केप्रभाव का संदेह होता है। माघ लिखते हैं कि तत्त्व-ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है, फलत: व्यक्ति को सद्मति की प्राप्ति होती है। शास्त्रज्ञान से बुद्धि निर्मल होती है। श्री हर्ष माया की व्याख्या में लिखते है कि चन्द्रमा ने दमयन्ती के मुख से पराजित होने के भय से अपने को दो चन्द्र माया से बनालिया। कवि किरणमाली सूर्य के कृत्यों को माया-जन्म निरूपित करते हैं। वस्तुत: श्रीहर्ष माया के लक्षणों को निरूपित करने के निमित्त विविध प्रकार की कल्पनामय काव्य-सर्जना करतेंहै। सृष्टि-रचना के निरूपण में भी तीनों कवियों ने काव्य-सर्जना की है। भारवि निरूपित करते हैं कि चौदह भुवनों का आदि और अन्त भगवान् शंकर के उदर से ही है। माघ भी लिखते हैं कि जगत् का क्रमिक विकास होता है। ब्रह्मा ही सृष्टि की रचना करते हैं। इस संसार का उद्भव हिरण्यमय ब्रह्माण्ड से है। श्री हर्ष सृष्टि के तीनों लोकों का चित्रण इस प्रकार करते हैं। वे लिखते हैं कि सृष्टि को आदि रहित परम्परा है। भारवि पञ्चमहाभूतों को निरूपित करते हुए लिखते हैं कि इन्द्रकील पर्वत के पञ्चमहाभूत तपस्वी अर्जुन के दास बनकर अर्जुन की सेवा करते हैं। श्री हर्ष लिखते है हैं कि युद्ध में वीरगति प्राप्त करने पर शरीर पञ्चमहाभूतों में समाहित होजाता है। ~~माघ का पंचमहाभूतों में समाहित हो जाता है~~ माघ का पञ्च महाभूतों पर स्पष्ट वर्णन नहीं प्राप्त

होता है। माघ और श्रीहर्ष "अन्तःकरण" शब्द का प्रयोग अपनी काव्य-धारा में करते हैं। वे ~~अपने काव्य-लेखन में लक्षित करते हैं। वे अपने काव्य-लेखन में लक्षित करते हैं। वे अपने काव्य-लेखन में लक्षित~~ करते हैं कि अन्तः करण की निश्चयात्मिका वृत्ति और सङ्कल्पविकल्पात्मिका वृत्ति होती है। इन्द्रिय-चित्रण पर भी माघ और श्री हर्ष स्पष्ट लेखन प्रस्तुत करते हैं। माघ नव इन्द्रियों को उदाहृत करते हैं। माघ आत्मसाक्षात्कार का सहज मार्ग ईश्वर -भक्ति को प्रतिष्ठित करते हैं। श्री हर्ष भी भंगिमापूर्ण लेखन द्वारा इन्द्रियों को निरूपित करते हैं। जीव और आत्मा का निरूपण तीनों महाकाव्यों में स्पष्ट रूप से किया गया है। श्री हर्ष स्थूलशरीर और लिङ्ग शरीर की बड़ी रोचक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। वे उपनिषद् शब्द के तात्पर्य को कई बार काव्य की धारा में लाते है, वे अद्वैतवाद को भी परिभाषित करते हैं, वे कर्मवाद की अवधारणा पर भी प्रकाश डालते हैं। आत्म-साक्षात्कार (मोक्ष) पर तीनों कवियों ने पर्याप्त काव्य-सर्जना की है। उपमालङ्कार के द्वारा भारवि हिमालय को मोक्ष का स्रोत निरूपित करते हैं। वे प्रतीक अर्थ में दर्पण को चिदाभास के रूप में अवधृत करते हैं। श्री हर्ष मोक्ष की अवधारणा पर अत्यन्त सुन्दर विचार प्रस्तुत करते हैं। अस्तु, हम देखते हैं

श्रीहर्ष ने वेदान्त-दर्शन के तत्त्वों को बहुत ही गूढ़ एवं प्रभूत रूप में प्रयुक्त किया है। दूसरी ओर भारवि और माघ ने उन तत्त्वों को सामान्य रूप से विवेचित किया है।

सांख्य - दर्शन

तीनों महाकाव्योंमें गुण-त्रय की विवेचना विशद रूप से प्राप्त है। भारवि ने दर्शाया है कि दुर्योधन अनासक्त भाव से त्रिवर्ग का सेवन करता है। यहाँ पर कविगुणत्रय को व्यन्जना प्रस्तुत करता है। अर्जुन की तपश्चर्या रजोगुण एवं तमोगुण की सहकारिता पाकर प्रखर हो गयी है। भारवि गुण-त्रय के लक्षणों पर भी प्रकाश डालते हैं। माघ भी अन्धकार एवं सायं काल को तमोगुण के प्रतीक के रूप में निरूपित करते हैं। वे गुण-त्रय की सहकारिता पर भी प्रकाश डालते हैं। वे सत्त्वगुण से युक्त युधिष्ठिर के द्वारा यज्ञ-विधान को काव्य-सर्जना में संयोजित करते हैं। श्रीहर्ष भी गुणत्रय की विवेचना में लिखते हैं कि तमोगुण क्रोध का उत्पादक है। वे सत्त्वगुण एवं रजोगुण को अलग-अलग परिभाषित करते हैं। तीनों ही महाका में बुद्धि और मन का निरूपण प्राप्त है। तीनों कवियों ने मन की चन्चलता एवं द्रुतगामिता और बुद्धि की निश्चयात्मिका वृत्ति को निरूपित किया है। माघ निरूपित करते हैं कि बुद्धि से व्यक्ति में आत्मशक्ति का विकास होता है विशुद्ध

लोग निश्चय ही पथभ्रष्ट हो जाते हैं। बुद्धि ही अहङ्कार की जड़ है। भारवि लिखते हैं कि बुद्धि के निर्मल होने पर मन के अन्धकार का नाश होता है। श्रीहर्ष मन की परमाणुता की व्याख्या में लिखते हैं कि अगम्भीर बुद्धि मनीषियों के गूढ़ अभिप्रायों को समझ नहीं पाती है और मन परमाणु से अल्प भार वाला है। अहङ्कार तत्त्व का उल्लेख भारवि और श्री हर्ष स्पष्ट रूप से करते हैं। तीनों महाकाव्यों में प्रकृति पुरूष का निरूपण प्राप्त है। भारवि लक्षणा के द्वारा निर्गुण पुरूष की विवेचना प्रस्तुत करते हैं। पुरूष चैतन्य रूप है इस तथ्य को निरूपित करने के लिए भारवि प्रतीक के रूप में सूर्य को प्रस्तुत करते हैं। माघ पुरूष के स्वरूप-विवेचन में लिखते हैं कि बुद्धि का भोग दृष्टि-मात्र आत्मा का कहा जाता है, वास्तविक रूप से तो नहीं। वे श्रीकृष्ण को पुरूष के रूप में भी व्यञ्जित करते हैं। माघ प्रकृति और पुरूष के सामीप्य को भी निरूपित करते हैं। श्रीहर्ष चार्वाक-मुख से प्रकृति-पुरूष की अवधारणा की निस्सारता को ज्ञापित करते हैं। भारवि ने साङ्ख्य-सम्मत इन्द्रियों को निरूपित किया है। वे साङ्ख्य के परिणामवाद पर भी प्रकाश डालते हैं। माघ ने भी इन्द्रियों को निरूपित किया है। श्रीहर्ष ने भी इन्द्रियों की विवेचना के लिए काव्य की भङ्गिमा को प्रस्तुत किया है। उन्होंने विषय- वासनाओं की अवधारणा को काव्य में समाहित किया है। शिशुपाल एवं नैषध में कारण-कार्यवाद की परिकल्पना सम्प्रयुक्त है। माघ लिखते हैं कि भूत-काल में किये पुण्यों का प्रतिफल वर्तमान काल में अवश्य मिलता है। श्री हर्ष लिखते हैं कि मनोज्ञ श्याम मदबिन्दु

शत्रुओं की अपकीर्ति के कारण थे। माघ ने जगत् -सृष्टि के क्रम को भी दर्शाया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तीनों महाकाव्यों में प्रकृति-पुरुष, गुणत्रयक्रमन, बुद्धि पर सुन्दर विवेचन प्राप्त है। सत्कार्यवाद का निरूपण शिशुपालवध एवं नैषध में विशद रूप से प्राप्त है, किन्तु नैषध में इसे व्यापक रूप से विवेचित किया गया है। किरात में इस दार्शनिक तत्त्व की स्पष्ट विवेचना नहीं है। सांख्य दर्शन का निरूपण नैषध में अन्य दोनों की अपेक्षा मनोहर एवं उत्तम है।

योग - दर्शन

योग-दर्शन के तत्त्व तीनों महाकाव्यों में प्राप्त होते हैं। कथावस्तु में वर्ण्य-विषय के अनुकूल होने पर कवियों को योग-दर्शन के तत्त्वों के प्रदर्शन का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है। भारवि की कथावस्तु का वर्ण्य-विषय योग -दार्शनिक प्रस्फुटन के अनुकूल है, क्योंकि उनकाउद्देश्य है, अर्जुन की तपश्चर्या द्वारा अर्जुन को इष्ट पाशुपत-अस्त्र को प्राप्त कराना, और दूसरी ओर योग-दार्शनिक आचार-विचार काव्य को कल्पनाओं को आकार देने मेंस्वाभाविक रूप से सहायक होते हैं। इसीलिए कवियों की काव्य-धारा में योग-दर्शन के तत्त्वों का सहज प्रवेश हो जाता है। किन्तु द्रष्टव्य है कि बृहत्त्रयी के काव्यकारों ने इस सहज प्रवृत्ति के अतिरिक्त भी अपनी काव्य - सर्जना में योग-दर्शन के तत्त्वों को बलात् प्रविष्ट कराया है। हमें

तीनों महाकाव्यों में चित्तवृत्तियों का निरूपण प्राप्त होता है। भारवि चित्त की चञ्चलता तथा अस्थिरता के साथ-साथ, उसकी क्षिप्तावस्था को भी व्यक्त करते हैं। वे लिखते हैं कि मन को चित्तवृत्तियाँ विचित्र प्रकार की होती हैं। योग-साधना के लिए चित्त की अनुकूलता अपरिहार्य है। वास्तव में भारवि चित्त वृत्तियों की भूमियों की व्याख्या अति सुन्दर ढंग से करते हैं। शिशुपालवध में भी चित्त को परिभाषित किया गया है। उद्देश्य सिद्धि के मार्ग में कलुषित चित्त का बाधक बनना, चित्त-नियन्त्रण के लिए मनश्शक्ति की आवश्यकता, चित्त की अस्थिर प्रकृति आदि का सफल चित्रण कवि माघ ने अपने महाकाव्य में किया है। नैषधकार ने भी चित्तवृत्ति को स्थितियों को अपनी काव्य भङ्गिमा में प्रयुक्त किया है। वे राग-चित्तवृत्ति, संदेह-चित्तवृत्ति का प्रयोग अपनी काव्य-धारा में समाविष्ट करते हैं।

तीनों महाकाव्यों में अष्टसिद्धियों का उद्धरण भी प्राप्त है। तीनों महाकाव्यों में योग को सिद्धि-निरूपण ने काव्य की कल्पना को सुन्दर रूप प्रदान करने में अतिशय बल संयोजित किया है। भारवि ने अष्ट-सिद्धि को आधार देते हुए लिखा है कि अर्जुन का तप इतना बढ़ गया है कि दिशायें, वायु, आकाश, आदि मानो उसके हो उठे हैं। माघ भी श्रीकृष्ण के मानवेतर विलक्षण कृत्यों का वर्णन शिशुपालवध

में करते हैं। वे देवर्षि नारद को कथावस्तु में अतीन्द्रिय के रूप में प्रकट करते हैं। नैषधकार श्री हर्ष अणिमा, महिमा आदि सिद्धियों को आलंकारिक रूप से प्रस्तुत करते हैं। वे दमयन्ती के मध्य भाग कमर को अणिमा ऐश्वर्य की भाँति लघु दर्शाते हैं। अन्यत्र वे लिखते हैं - इन्द्र ने योग-सिद्धि से प्राप्त अन्तर्धान कौशल को नल को बताया। वस्तुत: श्रीहर्ष अष्ट-सिद्धियों का स्पष्ट उल्लेख एवं बहुलता के साथ नैषध में प्रयुक्त करते हैं। वे योग-सिद्धियों को अपनी कल्पना-शक्ति से मनोहर रूप में काव्य-पटल पर प्रदर्शित करते हैं।

योग-साधना की प्रवृत्ति एवं उसकी परिस्थिति पर भी तीनों महाकाव्यकारों ने सफल लेखन प्रस्तुत किया है। तीनों महाकाव्यों में योग-मार्ग के साधनों का विवरण प्रदत्त है। भारवि, इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन द्वारा योगशास्त्रानुकूल चित्तवृत्ति-नियमन को, किरात में प्रदर्शित करते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि लक्ष्य-प्राप्ति के निमित्त अर्जुन ने कठोर तपश्चर्या का परिपालन किया। वे यम-नियम का विशद विवेचन प्रस्तुत करते हैं। भारवि की भाँति माघ ने भी शिशुपालवध में यम-नियम का प्रतिपादन किया है। वे लिखते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान् के दोनों पार्श्वों में भीमसेन और अर्जुन अवधि और नीति के समान बैठे हैं। श्रीहर्ष ने भी योग-सिद्ध प्रवृत्ति पर मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है। वे लिखते है कि दमयन्ती की चेष्टायें नल-प्राप्ति के निमित्त एकनिष्ठ होने से ज्ञानयोगी की तरह हैं। वे रात्रि को योगिनी की भाँति चित्रित करते

है। इन प्रमुख दार्शनिक तत्त्वों के अतिरिक्त समाधि प्राप्ति एवं ईश्वर-साक्षात्कार का प्रतिपादन भी तीनों महाकाव्यकारों ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। माघ लिखते हैं कि श्रीकृष्ण मानवमात्र नहीं हैं, वे ध्यान गम्य ईश्वर हैं। उनका स्वरूप अचिन्तनीय है। योगी की प्रकृति एवम् उसके स्वरूप का चित्रण भारवि की काव्य-धारा में अन्य दोनों कवियों की अपेक्षा कुछ अधिक मिलता है। भारवि की भाँति माघ भी योगियों के लक्षणों का विवेचन अति सुन्दर रूप में करते हैं। वे लिखते हैं कि श्रीकृष्ण परम योगी भी हैं। श्रीहर्ष ने योगी, योगिनी का चित्रण मिश्रित दार्शनिक पृष्ठभूमि पर किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बृहत्त्रयी में योग के प्रमुख दार्शनिक तत्त्वों का सफल प्रयोग कियागया है। योग के तत्त्वों के प्रयोग से तीनों महाकाव्यों में काव्य-प्रवाह में जटिलता नहीं उत्पन्न होती है, अपितु काव्य-सौष्ठव के लिए एक आवश्यक सामग्री ही उपलब्ध हो जाती है। वस्तुतः योग-दर्शन के तत्त्व तीनों महाकाव्यों में समान रूप से प्राप्त हैं।

न्याय - दर्शन

श्रीहर्ष न्याय दर्शन के तत्त्वों का प्रयोग बहुलता से करते हैं, जबकि भारवि और माघ ने सीमित रूप में किया है। प्रमाण-सिद्धान्त के प्रयोग में भारवि कतिपय स्थलों पर तर्क-वितर्क सिद्धान्त का प्रयोग करते हैं, जो अति सहज रूप में प्रयुक्त हैं। माघ न्याय के प्रमाण सिद्धान्त पर थोड़ी अधिक रुचि रखते हैं। वे सविकल्पक

और निर्विकल्पक ज्ञान को परिभाषित करते हैं। वे जाति, क्रिया, गुण, धर्म को व्याख्यात करते हैं। वे उपमालंकार के रूप में अनुमान और प्रत्यानुमान शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे अनुमान- प्रमाण को निरूपित करते हैं। वे अनुमान-प्रमाण को निरूपित करते हैं। हेतु, व्याप्ति के बल पर वे संदेह व्यक्त करते हैं कि समुद्र एवं यमुना में कृष्णत्व का गुण साहचर्य गुण के कारण ही है। शिशुपालवध में न्याय-प्रमाण की सामान्य-रूपरेखा ही प्राप्त होती है, किन्तु नैषध में तो अनुमान -प्रमाण, प्रत्यक्ष- प्रमाण, कारण, प्रमाण, तर्क आदि दार्शनिक बिन्दुओं पर व्यापक काव्य-लेखन प्राप्त होता है। श्रीहर्ष हेतु और व्याप्ति के आधार पर किसी भी भङ्गिमापूर्ण कल्पना का सकारण वर्णन प्रस्तुत करते हैं। कहीं-कहीं पर तो वे प्रमाण- सिद्धान्त को परिभाषित भी करते हैं। वस्तुत: ऐसा प्रतीत होता है कि कवि न्याय-दर्शन के अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य को काव्य- की धारा में घोल देना चाहता है। श्रीहर्ष दमयन्ती के अङ्गप्रत्यङ्गों का साम्य कारण के तीनों प्रकारों से करते हैं। पुण्य -पाप, कर्मफल-भोग, दु:ख-सुख आदि का संयोजन शिशुपालवध और नैषध में अतिशय रूप से हुआ है। पुनर्जन्म की विवेचना शिशुपाल वध और नैषध दोनों महाकाव्यों में प्राप्त होती है।

न्याय दर्शन का ईश्वर -मत तीनों महाकाव्यों में सुस्पष्ट रूप से, व्याख्यात है। भारवि द्वारा ईश्वर-विचार का निरूपण किरात के अठारहवें सर्ग में "ईश्वर -स्तुति" में प्रस्फुटित है। वे भगवान् शिव को कर्मफल-प्रदाता एवं जगद्-नियन्ता के रूप में स्थापित करते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर सांसारिक

प्राणियों की भाँति जरा, जन्म, मरण आदि से रहित है। वे निरूपित करते हैं कि ईश्वर -साक्षात्कार से जीव की मुक्ति भवचक्र से हो जाती है। माघ भी यत्र-तत्र श्रीकृष्ण भगवान् को न्याय सम्मत ईश्वर के रूप में व्यक्त करते हैं। वे श्रीकृष्ण को परम-दयालु एवं जगत् व्यवस्थापक के रूप में विवेचित करते हैं। वस्तुत: न्याय सम्मत ईश्वर की अवधारणा का प्रस्फुटन कवियों के अभीष्ट-देवों की स्तुति एवं वन्दना के अवसर पर अधिक हुआ है। माघ की भाँति श्रीहर्ष ने भी ईश्वर की विशद विवचना की है। पञ्चनली-वर्णन में वे लक्षित करते हैं कि ईश्वर परम तेज से सम्पन्न है, उसको कोई अतिक्रान्त नहीं कर सकता है। श्रीहर्ष ईश्वर के व्यवस्थापक लक्षणों को व्याख्या में लिखते हैं कि ईश्वर जगत् का बहुत बड़ा व्यवस्थापक है क्योंकि वह ही शीतकाल को रजनी को शीतमय दिन के समय को काटकर बढ़ा देता है। श्रीहर्ष चार्वाक मुखं से न्याय सम्मत ईश्वर के खण्डन को स्थिति में ईश्वर की अवधारणा को निरूपित करते हैं।

हमें मोक्ष की परिकल्पना का निरूपण शिशुपाल एवं नैषध दोनों महाकाव्यों में प्राप्त होता है। माघ मोक्ष को "अभयम्" और "अजरम्" शब्दों के प्रयोग से परिभाषित करते हैं । शब्दों के प्रयोग से भिन्न श्री हर्ष ने भी नैषध में मोक्ष की परिभाषा की है। वे चार्वाक मत की व्याख्या वाले प्रसंग में न्याय सम्मत मोक्ष

का वर्णन प्रस्तुत करते हैं। अस्तु, हम कह सकते हैं कि न्यायमत पर तीनों महाकाव्यों में लेखन प्राप्त होता है। नैषध में तो न्याय-सिद्धान्तों पर विस्तृत लेखन प्राप्त होता है। न्याय-दर्शन के वैशारद्य को श्रीहर्ष नैषध में उड़ेल देने को कटिबद्ध लगते हैं। श्रीहर्ष की अपेक्षा भारवि और माघ ने न्याय-दर्शन पर सामान्य लेखन ही प्रस्तुत किया है।

0 0 0
0

मीमांसा - दर्शन

बृहत्त्रयी के महाकाव्यों की राजपरक कथावस्तु में धार्मिक तत्त्वों का पर्याप्त सम्प्रयोग है, फलत: वैदिक विश्वासों एवं कर्मकाण्डों के प्रतिफलन का सुन्दर अवसर उत्पन्न हुआ है। किरात० में दुर्योधर, युधिष्ठिर, अर्जुन आदि राजसी जीवन के चरित्र हैं। शिशुपालवध में कृष्ण और युधिष्ठिर का कार्य-व्यापर राजसी जीवन से सम्बद्ध हैं। नैषध में नल एक शक्ति शाली नरपति है, जो राजसो जीवन चर्याओं में आबद्ध हैं। वस्तुंत: ऐसे परिवेश में वैदिक परम्पराओं का निर्वहन स्वाभाविक होउठता है। हम देखते हैं कि यज्ञानुष्ठान, मन्त्रोचारण, वैदिकशास्त्राभ्यास, वैदिकधर्म का प्रवर्तन आदि का प्रयोग तीनों महाकाव्यों में सम्यक् रूपेण किया गया है। ऐसे अवसरों पर सम्बद्ध काव्यकारों ने दर्शनोन्मुखी मतिसे दार्शनिक तत्त्वों का संचार महाकाव्यों में कर दिया है।

भारवि वैदिक यज्ञानुष्ठान- विधि और उसके लाभ, कर्तव्यता आदि पर सुन्दर लेखन प्रस्तुत करते हैं। वे वेद की प्रतिष्ठा को भी निरूपित करते हैं। वे वेद के विषय में कहते हैं कि ऋत्विजों के यहाँ जलती हुई सामधेनी अग्नि पाप-समूहों को विनष्ट करती है। माघ वेद-मन्त्रों की पवित्रता पर सुन्दर काव्य- सर्जना प्रतिपादित करते हैं। वे लिखते हैं कि रैवतक पर्वत उस श्रेष्ठ द्विज की तरह है जिसने पाप-नाशक वेद-मन्त्रों को आत्मसात्

कर लिया है। माघ वेद की अपौरुषेयता का भी निरूपण करते हैं। वे स्वर्ग-सुख की परिकल्पना का रूपांकन शिशुपालवध में समाविष्ट करते हैं। श्रीहर्ष ने भारविक और माघ की अपेक्षा उत्कृष्ट और विस्तृत रूप में मीमांसा-दर्शन के तत्वों का विवेचन नैषध में प्रकट किया है। वे वेद की प्रामाणिकता पर भङ्गिमापूर्ण आलंकारिक चित्रण प्रस्तुत करते हैं। हंस दमयन्ती से कहता है कि उसकी वाणी वेद की प्रतिवेशिनी है। श्रीहर्ष पूर्व मीमांसा और उत्तरमीमांसा को परिभाषित भी करते हैं। वे वेदों का खण्डन चार्वाक मुख से तो करवाते हैं, किन्तु प्रकारान्तर से वहीं पर वेदों की प्रामाणिकता और अपौरुषेयता को पुष्ट भी करते हैं। वे प्रमाण-सिद्धान्त पर अत्यन्त रूचिर एवं वैदुष्य पूर्ण लेखन प्रस्तुत करते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि ज्ञानस्वत: प्रमाणित है। वे अर्थापत्ति को भी परिभाषित करते हैं। वे वेद मन्त्रों की पवित्रता और यज्ञानुष्ठान-लाभ पर विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं। वे स्वर्ग-सुख की परिकल्पना, सनातन-धर्म और कर्मकाण्ड, वेदपाठी द्विज आदि दार्शनिक बिन्दुओं को काव्य-सर्जना में अति मन्जुल रीति से समाविष्ट करते हैं। वस्तुत: श्रीहर्ष अपने मीमांसा विषयक ज्ञान को समुचित विधि से नैषध में समाहित करते हैं। वे स्पष्ट रूप से अथवा अलंकारों के माध्यम से दार्शनिक तत्वों का समावेशन करते हैं। वे मीमांसा के सभी प्रमुख दार्शनिक तत्वों को सहज और विद्वत्तापूर्ण विधि से काव्यधारा में लाते हैं।

भारवि और माघ ने श्री हर्ष की अपेक्षा सीमित एवं साधारण रूप से मीमांसा के तत्त्वों को प्रयुक्त किया है, यद्यपि उनके भी महाकाव्यों में मीमांसा के प्रमुख दार्शनिक तत्त्वों को अंकित किया गया है।

बौद्ध - दर्शन

बृहत्त्रयी के तीनों महाकवियों को बौद्ध-दर्शन का सम्यक् ज्ञान था, यह तथ्य बृहत्त्रयी की दार्शनिक समीक्षा से प्राप्त होता है। भारवि किरात में बौद्ध -दर्शन के तत्त्वों को व्यापक रूप से तो नहीं प्रयुक्त करते हैं, किन्तु उनके काव्य में बौद्ध-दर्शन के कुछ तत्त्वों की झलक अवश्य मिलती है। भारवि दु:खसमुदाय और दु:खनिरोधिनी प्रतिपदा की झलकी अपने काव्य में प्रकट करते हैं। वे प्रतीत्य - समुत्पाद का भी सङ्केत प्रस्तुत करते हैं। माघ ने शिशुपालवध में अपने बौद्ध-दर्शन के ज्ञान को सुन्दर ढंग से काव्य में प्रविष्ट किया है। वे रूप-स्कन्ध, संस्कार-स्कन्ध, वेदनास्कन्ध, विज्ञानस्कन्ध और संज्ञानस्कन्ध का स्पष्ट रूप से उल्लेख करते हैं। वे बोधिसत्त्वों की प्रकृति और स्वरूप को भी लेखन धारा में समाविष्ट करते हैं। वे बुद्धदेव के निर्विकार रूप को अति मनोहारी विधि से चित्रित करते हैं ।

वस्तुत: माघ बौद्ध दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। जिसका प्रदर्शन शिशुपालवध में प्राप्त है। श्रीहर्ष ने भी माघ के समान बौद्ध-दार्शनिक तत्त्वों का सफल सम्प्रयोग किया है। वे नैषध में बौद्ध - दर्शन के तत्त्वों को व्यापक रूप सेप्रयुक्त करते हैं। वे एक स्थल पर बौद्ध कापालित दर्शन को व्यक्त करते हैं। वे अभाववादी बौद्ध दर्शन, योगाचार दर्शन, सौत्रान्तिक दर्शन आदि के तत्त्वों का निरूपण करते हैं। वे बौद्ध-दर्शन के पारमिता के पर्याय को दर्शाते हैं। वे अन्य स्थल पर क्षणिकवाद को परिभाषित करते हैं। वे बोधिसत्त्व गौतम बुद्ध का वेद-विरोधी-प्रकृति को निरूपित करते हैं। वे बौद्धदर्शन के कारणवाद -बाह्य और मानस जितनी भी घटनायें होती है, उन सबके लिए कुछ न कुछ कारण अवश्य होता है- को विवेचित करते हैं। वे ऐसे स्थलों परउपमालंकार का सुन्दर प्रयोग करते हैं। वे भगवान् बुद्ध की पराक्रमी और शान्त प्रकृति का विशद वर्णन प्रस्तुत करते हैं। श्रीहर्ष रात्रि को एक योगिनी के रूप में अपनी भङ्गिमापूर्ण कल्पना के आवरण में चित्रित करते हैं। वस्तुत: श्री हर्ष ने बौद्ध दर्शन का विस्तृत निरूपण नैषध में किया है। उन्होंने अपने बौद्ध-दर्शन के गम्भीर ज्ञान का परिचय कराया है। पाठक श्री हर्ष की विद्वत्ता का लोहा मान लेता है। माघ और भारवि ने तो बौद्ध दर्शन के ज्ञान का सामान्य प्रदर्शन किया है, जो यत्र-तत्र काव्य में प्राप्त है।

जैन - दर्शन

बृहत्त्रयी में दार्शनिक तत्त्वों के निरूपण एवं प्रयोग के प्रयास में जैन-दर्शन के तत्त्वों को विशेष स्थान नहीं मिला है। जैन के साधारण तत्त्व ही बृहत्त्रयी में यत्र तत्र प्राप्त होते हैं। जैन दर्शन के सामान्य तत्त्व जहाँ कहीं भी प्रयुक्त हुए हैं वहाँ अन्य दर्शन का सामीप्य प्राप्त हो जाने पर स्पष्ट निर्धारण नहीं हो पाता है कि यह दार्शनिक तत्त्व किस दर्शन के लिए अधिक समुचित है। वास्तव में ऐसे स्थलों पर जैन- दर्शन के अतिरिक्त सम्बद्ध दर्शन से उन बिन्दुओं का सामीप्य स्थापित कर दिया गया है। इसलिए हमें किरात और शिशुपालवध में जैन-दर्शन का कोई स्पष्ट लक्षण नहीं प्राप्त होता है। नैषध में श्री हर्ष ने जैन-दर्शन के विशिष्ट तत्त्वों का स्पष्ट उल्लेख किया है। वे वेद-विरोधी दिगम्बर जैन भिक्षु "क्षपण" को प्रयोग करते हैं। वे जिन (महावीर) शब्द का भी प्रयोग करते हैं। वे त्रिरत्न का विस्तृत निरूपण करते हैं। वे विहार, जैन-साधक-मण्डली और नग्न जैन भिक्षुणी का चित्रण करते हैं। वे जैनों के वेद विरोधी स्वरूप को भी व्यक्त करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष जैन-दर्शन में पारङ्गत थे। वे बृहत्त्रयी के अन्य काव्यकारों की तुलना में जैन-दर्शन को अधिक व्यापक एवं सफल रूप से प्रयुक्त करते हैं।

वैशेषिक - दर्शन

न्याय और वैशेषिक सम्प्रदाय की दार्शनिक अवधारणा में बहुत अधिक साम्य हैं। ईश्वर, मोक्ष, जीव, ज्ञान आदि दार्शनिक बिन्दुओं पर अत्यन्त समता होने के कारण बृहत्त्रयी में न्याय और वैशेषिक दर्शन के प्रदर्शन का स्वरूप बहुधा एक-दूसरे में मिला हुआ है। बृहत्त्रयी के काव्यकारों ने प्राय: न्याय और वैशेषिक का मिश्रित स्वरूप ही निरूपित किया हैं। कहीं-कहीं पर भाषा एवं शब्द और प्रकरण के आधार पर ही वैशेषिक दर्शन के बिन्दु को निर्धारित किया गया है। ऐसे स्थल बृहत्त्रयी में बहुत कम हैं। फलत: न्याय-दर्शन के स्वरूप की विवेचना विविध दार्शनिक बिन्दुओं पर हुई है। इसी कारण किरात और शिशुपाल-वध महाकाव्यों में न्याय के तत्त्वों का ही निरूपण किया गया है, वैशेषिक के तत्त्वों का नहीं। वैशेषिक दर्शन के तत्त्वों का स्पष्ट उल्लेख नैषध में मिलता है। श्रीहर्ष वैशेषिक के परमाणुवाद, युक्तिविवेचना शिलोन्छवृत्ति आदि पर स्पष्ट निरूपण प्रस्तुत करते हैं। श्रीहर्ष लिखते हैं कि नल अन्धकार का चित्रण नहीं कर सकता क्योंकि अन्धकार के चित्रण का विषय तो उलूक (कणाद) दार्शनिक का है। वे लिखते हैं अविद्या अभाव रूप है, जिसे ज्ञानी लोग ही जान सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैशेषिक के किञ्चिद् प्रमुख तत्त्वों का स्पष्ट चित्रण नैषधकार श्रीहर्ष करते हैं। भारवि और माघ तो न्याय-दर्शन के समरूप तत्त्वों के निरूपण तक ही सीमित रह जाते हैं।

चार्वाक - दर्शन

यह सर्वथा सत्य है कि तीनों महाकाव्यों में आस्तिक दर्शन के तत्त्वों का विस्तृत निरूपण प्राप्त होता है, किन्तु यह भी सत्य है कि उन तीनों महाकाव्यों में भौतिक सुखवाद के चित्रण पर अत्यन्त बल दिया गया है। तीनों महाकाव्यकार कुछ ऐसे काव्य परिवेश को उद्भूत करते हैं, जिससे उन्हें सांसारिक विलासों के उन्मुक्त चित्रण का अधिक अवसर मिल सके। ऐसे वैलासिक चित्रणों को व्यापक रूप देने में वे कुछ भी कसर नहीं छोड़ते हैं। वे रमणियों, वाराङ्गनाओं, कामवासनों आदि के नग्न चित्रण में अधिक अवकाश ढूढ़ते हैं। बृहत्त्रयी के अध्ययन से ऐसा लगता है कि जैसे काव्य-कारों के लिए भौतिक जीवन का निर्बाध सुख-भोग स्वर्ग सुख के तुल्य है, जीवन के सार - तत्त्व का बहुत बड़ा भाग काम-वासनाओं में सम्पृक्त है। बृहत्त्रयी में लौकिक सुखभोग की भावना का प्रवर्तन महाकवि भारवि करते हैं। वे रमणियों का व्यापक वैलासिक चित्रण आठवें, नवें, आदि सर्गों में करते हैं। वे रमणियों के अर्ध-नगन-चित्रण द्वारा काम-भावना को उद्भूत करते हैं। वस्तुत: ऐसे स्थलों पर चार्वाकों के लौकिक सुखवाद का निरूपण तो होता है, किन्तु कवि कहीं भी चार्वाकवाद की स्थापना नहीं करता है, यद्यपि सुभाषित वाक्यों में कवि एक अनुशासित जीवन की कल्पना को स्थापित अवश्य करता है। महाकवि माघ भी यादवाङ्गनाओं का नग्न चित्रण करते हैं। वे राधाओं

क्रीड़ा को विस्तृत रूप से दर्शाते हैं। वे राजाओं के वैलासिक जीवन पर भी प्रकाश डालते हैं। ऐसे स्थलों पर स्पष्ट होता है कि कवि जीवन के उन्मुक्त सुखवाद से अधिक प्रभावित है। कहीं-कहीं पर सुभाषित वाक्यों के प्रयोग में इस भावना की झलक भी मिलती है। लौकिक-सुखभोग जीवन का अपरिहार्य भाग है, यह माघ कवि की चित्रण -शैली से स्पष्टत: लक्षित होता है। इसीलिए तो उन्होंने नवें, दसवें, ग्यारहवें, आदि सर्गों में काम-वासना ,रति-क्रीड़ा आदि का स्पष्ट चित्रण किया है। ऐसे स्थलों पर माघ का यह काव्य -सन्देश प्रकट हुआ लगता है कि जीवन में लौकिक सुखों को नकारा नहीं जा सकता व यह सन्देश उस स्थल पर लक्षित होता है जहाँ पर राजागण रति-क्रीड़ा में रात्रिजागरण करके और तदुपरान्त अल्प विश्राम के बाद प्रभात वेला में शुभमुहूर्त में धर्म-अर्थ आदि का चिन्तन करते हैं। महाकवि श्रीहर्ष ने तो चार्वाक दर्शन के तत्त्वों को व्यापक रूप से चित्रित किया है। वे चार्वाक दर्शन के निरूपण के निमित्त पूरा सत्तरहवाँ सर्ग ही रच डालते हैं। वे,चार्वाकवादी मुख से वेदों और कर्मकाण्डों की निस्सारता, दर्शनों के अतात्त्विक ज्ञान-बोध,पौराणिक महापुरूषों के कदाचार, उन्मुक्त यौनाचार आदि को व्याख्यात करते हैं। वे नल-दमयन्ती की रति -क्रीड़ा पर विस्तृत लेखन द्वारा भी चार्वाकवादी उन्मुक्त काम-भोग को निरूपित करते हैं। हम देखते हैं कि श्रीहर्ष अपने पूर्ववर्ती भारवि और माघ की अपेक्षा अधिक अवसर चार्वाकवाद के निरूपण के लिए निकालते हैं। श्रीहर्ष ने चार्वाक-दर्शन को विस्तृत और विशद रूप में सम्प्रेषित किया है।

भक्ति - उपासना

तीनों महाकाव्यों में दार्शनिक तत्त्वोंके निरूपण में बहुश: समता है। ईश्वर की अवधारणा, सृष्टि को परिकल्पना, भौतिक जीवन को निस्सारता, कर्म-वाद की स्थापना, जीव का संचरण, तप-योग का माहात्म्य आदि ऐसे दार्शनिक बिन्दु हैं, जहाँ पर तीनों कवियों में चिन्तन-परम्परा समान रूप से देखने को मिलती है। इन दार्शनिक बिन्दुओं को समता का प्रदर्शन हमें भक्ति, उपासना, स्तुति, अवतारवाद की स्थापना आदि के स्थलों पर अधिक मिलता है। तीनों महाकाव्यों में देवस्तुति व्यापक रूप से की गयी है। ये स्तुत्य देव, मूर्त रूप में शिव, नारायण, कृष्ण, विष्णु के रूप में निरूपित हैं और अमूर्त रूप में चिरन्तन सत्य ईश्वर के रूप में भो निरूपित हैं। तीनों महाकाव्यकार ईश्वर के अवतार रूप को भी वन्दना करते हैं। वे ईश्वर -भक्ति-मार्ग को ईश्वर के परमधाम को प्राप्त कराने वाले मार्गों में श्रेष्ठ रूप में स्थापित करने की चेष्टा करते हैं। वस्तुत: अभीष्ठ देवों की स्तुति-उपासना के स्थलों पर तीनों कवियों दर्शन के सर्व सामान्य तत्त्वों को विशद रूप से व्यक्त करते हैं।

अस्तु हम देखते हैं कि तीनों महाकाव्यों में दार्शनिक तत्त्वों के निरूपण में अत्यधिक समता है। वेदान्त, न्याय, सांख्य, योग मीमांसा के सर्व सामान्य

तत्त्वों का विशद निरूपण तीनों महाकाव्यों में न्यूनाधिक्य रूप से किया गया है। वस्तुतः दार्शनिक तत्त्वों के निरूपण को बहुअधिक बहुत अधिक समता है किन्तु उत्तरोत्तर श्रेष्ठता स्थापित होती गयी है।

0 0 0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0

0 0 0

0

सप्तमोऽध्याय:

उपसंहार

संस्कृतसाहित्य-जगत् में किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित महाकाव्यों की अपनी पृथक् पहचान है। किसी प्रशस्तिकार ने इन महाकाव्यों को बृहत्त्रयी नाम से संज्ञापित करना इसलिए उचित समझा, क्यों कि इन महाकाव्यों की लेखन शैली अतिशय समरूप है, जो संस्कृत-काव्य-सर्जना की धारा में बहुधा पृथक् और विशिष्ट है। संस्कृतसाहित्य के अन्यकाव्यकार विद्वान् नहीं रहे हैं, ऐसी बात नहीं है, किन्तु उनकी काव्य-सर्जना में बृहत्त्रयी की अपेक्षा अत्यल्प पाण्डित्य का संयोजन किया गया है, तत्त्वत: रस और स्वाभाविकता के प्रस्रवण पर अधिक बल दियागया है, जबकि बृहत्त्रयी के काव्यकारों ने पाण्डित्य-प्रदर्शन के प्रभूत आग्रह और लिप्सा में काव्य को बलात् आलंकारिक बना डालना चाहा है। जिस प्रकार वाल्मीकि अश्वघोष, कालिदास, बाण, भर्तृहरि, विशाखदत्त आदि की कृतियों में विविध विषयों, शास्त्रों, कलाओं, व्याकरण इतिहास, पुराण, दर्शन, ज्योतिष आदि का सम्यक् प्रकार से प्रयोग किया गया है, उसी प्रकार भारवि, माघ और श्रीहर्ष की कृतियों में भी उपर्युक्त तत्त्वों का प्रयोग प्राप्त होता है, किन्तु बृहत्त्रयी के काव्यकारों ने पाण्डित्य-प्रदर्शन की अभीप्सा में दार्शनिक तत्त्वों को बहुलता से प्रयुक्त किया है। बृहत्त्रयी का यह बहुल प्रयोग बृहत्त्रयी को विशिष्ट स्वरूप देने वाले कारकों में एक है। बृहत्त्रयी

में दार्शनिक तत्त्वों को विविध कोणों से निरूपित किया गया है। कहीं पर दार्शनिक तत्त्वों का सीधा और सपाट उल्लेख है, तो कहीं पर उनका लक्षणा तथा व्यन्जना के द्वारा सङ्केत किया गया है। कहीं पर दार्शनिकपरिवेश का निर्माणकिया गया है, तो कहीं पर अलंकारों को दार्शनिकता के प्रदर्शन का माध्यम बनाया गया है। कहीं पर पौराणिक आख्यानों के माध्यम से उनको व्यक्त किया गया है तो कहीं पर वाद-विवाद को पद्धति,से तो कहीं पर अप्रस्तुत विधा द्वारा उन्हें निरूपित किया गया है। वस्तुत: पूरे के पूरे महाकाव्य ही दार्शनिक तत्त्वों के प्रदर्शन एवं निरूपण की आधार-भूमि बना दिये गये हैं। सम्पूर्ण बृहत्त्रयी में दार्शनिक तत्त्वों का प्रतिफलन प्राप्त होता है। वेदान्त, न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा के तत्त्व प्रभूत रूप में प्रयुक्त किय गये हैं। उपर्युक्त दर्शनों के तत्त्व किरात, शिशुपालवध और नैषध तीनों ही महाकाव्यों मे बहुत अधिक प्राप्त होते हैं। वैशेषिक, जैन, बौद्ध, और चार्वाक दर्शनों के तत्त्व किरात और शिशुपालवध में विशेष रूप से नहीं प्राप्त होते हैं, किन्तु नैषध में इनका गूढ़ और स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। वस्तुत: नैषध में सभी दर्शनों पर व्यापक लेखन प्रात होता है। जिसके कारण काव्य को धारा के प्रवाह में बाधा और जटिलता उत्पन्न हो गयी है। श्रीहर्ष को अपेक्षा माघ और भारवि क्रमशः कम दार्शनिकता काप्रयोग करते हैं। भारवि और माघ के महाकाव्यों में बहुत अधिक दार्शनिक तत्त्वों का प्रयोग न होने से, इनके महाकाव्यों में श्रीहर्ष के नैषध जैसी जटिलता एवं ग्रन्थिलता नहीं आ पायी है। कहीं -कहीं पर तो इनके महाकाव्यों में दार्शनिक

बिन्दुओं के प्रयोग एवं संयोजन से काव्य की चारुता में अभिवृद्धि हुई है। दार्शनिक तत्त्वों के प्रयोग से बृहत्त्रयी में कल्पनाओं को प्रयुक्ति में भङ्गिमा का सहज संयोजन हुआ है। इस कार्य में श्रीहर्ष अधिक पटु हो गये हैं। अन्य दो कवियों की अपेक्षा श्रीहर्ष एक प्रखर एवं पक्षधर दार्शनिक हैं और उनकी यह दार्शनिकता काव्य-धारा के साथ प्रबल रूप से प्रकट होती हुई आयी है। इन तीनों महाकाव्यों में भक्ति, उपासना स्तुति और अवतारवाद की स्थापनापर विस्तृत लेखन की परम्परा देखते हैं। वस्तुत: ऐसे स्थलों पर तो दार्शनिक तत्त्वों का निरूपण होता है, साथ ही साथ काव्य में धार्मिकता का प्रवेश भी हो गया है। जिससे वर्ण्य -विषय में आस्तिक परिवेश का संयोजन हो गया है। बृहत्त्रयी में हम एक और विशिष्टता पाते हैं कि तीनों महाकाव्यों में वैदिक कर्मकाण्डों एवं विश्वासों पर विशेष बल दिया गया है। वेद-मन्त्रों की पवित्रता, यज्ञानुष्ठान-लाभ, वेदपाठी द्विज, पाप-पुण्य, आदि तत्त्वों केप्रयोग से महाकाव्यों में लौकिक धार्मिकता की सम्पुष्टि हुई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बृहत्त्रयी में दार्शनिक तत्त्वों को विविध कोणों से प्रयुक्त किया गया है, जो बृहत्त्रयी को एक विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं।

बृहत्त्रयी में अति आलङ्कारिक शैली का सूत्रपात पाया जाता है । बृहत्त्रयी के काव्यकारों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों वाल्मीकि, कालिदास, अश्वघोष, आदि द्वारा संस्थापित सुकुमार शैली को त्याग कर एक नयी विचित्र [अलङ्कारमयी] शैली का अनुकरण किया है। इस विचित्र शैली का प्रवर्तन महाकवि भारवि के [illegible]

औ

और उसका अनुगमन माघ और श्री हर्ष ने उत्तरोत्तर उन्नत रूप में किया ।सुकुमार शैलो में रस,स्वाभाविकता,सहजता,भावना,अनुभूतियों आदि का प्रस्रवण किया जाता है, जबकि विचित्र लेखन-शैली में कृत्रिमअसहज,अलङ्कार -प्रधान,पाण्डित्यपूर्ण,भङ्गिमा-पूर्ण, काल्पनिक, ग्रन्थिल आदि विधियों से काव्य-रचना को प्रवृत्ति का निर्वहण किया जाता है। इस शैली का उत्कर्ष श्रीहर्ष के नैषध में देखा जा सकता है। बृहत्त्रयी के काव्य कीधारा का प्रवाह विचित्र लेखन के कारण स्थल-स्थल पर अवरूद्ध सा हो गया है। फलत: बृहत्त्रयी सामान्य बुद्धि के पाठकों के लिए असहज हो गयी है।बृहत्त्रयी तो विद्वान् पाठकों के लिए असहज हो गयी है। बृहत्त्रयी तो पाठकों के लिए असहज अनुपम कृति है। नैषध को तो विद्वानों के लिए औषध रूप बताया गया है। श्रीहर्ष ने तो अपनी कृति के लिए स्पष्ट लिखा था-"मास्मिन् खल: खेलत"-मन्दबुद्धि व्यक्तितो इस कृति को समझने को खिलवाड़ न करें। इसे तो श्रद्धा पूर्वक गुरू से पढ़ने-समझने के बाद ही ग्रन्थियों के शिथिल हो जाने पर समझा जासकता है ।

बृहत्त्रयी में छन्द,अलंकार,शब्द-विन्यास,अर्थ-गौरव,पद-लालित्य,पौराणिक आख्यानों लघु घटनाओं को अनावश्यक व्यापकता, वासनात्मक-लेखन आदि पर विशेष बल दिया गया है। बृहत्त्रयी में नये-नये छन्दों को संयोजित किया गया है और विविध अलंकारों को बहुल रूप से प्रयुक्त किया गया है। अर्थ-गौरव और पद -लालित्य पूर्ण काव्य-सर्जना के चमत्कार पर विशिष्ट रूचि का निर्वाह किया गया है। पौराणिक आख्यानों और लघु घटनाओं को व्यापकता से काव्य को दुर्बोधता पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है।

श्रृंगारपरक लेखन की सर्वोच्च सीमा-रेखा खींच दी गयी है। वस्तुतः संस्कृत-साहित्य में यह नयी परम्परा बहुत ही उत्साह के साथ बृहत्त्रयी के काव्यकारों ने अपनायी है और उतने ही सशक्त रूप से वे इस परम्परा के सर्वोच्च कीर्तिमान को स्थापित कर दिये हैं।

पाण्डित्य-प्रदर्शनमयी रचना-परम्परा में काल्पनिक भङ्गिमा का प्रवर्तन बृहत्त्रयी को अनुपम देन है। बृहत्त्रयी के काव्यकारों ने अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन की अभिरुचि में कल्पनाओं का असहज उड़ान प्रस्तुत किया है। कल्पनाओं के असहज उड़ान को देखकर पाठक बृहत्त्रयी के काव्यकारों के पाण्डित्य का लोहा मान लेता है। जिस घटना या परिवेश को काव्याकारों ने उठाया है, उसका कोना-कोना झाँक आना और उसके चमत्कारपूर्ण रूप को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर देना बृहत्त्रयी के काव्यकारों को एक सहज प्रवृत्ति रही है। काव्यकारों को रस और स्वाभाविकता ~~रही है~~। के स्थान पर कल्पनाओं के चमत्कार में अधिक रुचि रही है। पञ्चनली वर्णन, प्रभात वर्णन, न्यायानुमान पर आधारित वर्णन आदि ऐसे स्थल हैं, जहाँ कवि की काल्पनिक भङ्गिमा की पराकाष्ठा देखने को मिलती है। काव्यकारों ने भाषा को व्याकरणात्मक ज्ञान-प्रदर्शन, नव शब्द-विन्यास, नव छन्द एवं अलङ्कारों के प्रयोग के द्वारा क्लिष्ट एवं दुरूह बना डाला है। पाण्डित्य- प्रदर्शन को ललक तीनों महाकवियों में सभी काव्य-क्षेत्रों में समान रूप से है, चाहे वह साहित्यिक लेखन हो अथवा चाहे शास्त्रीय लेखन हो। विविध शास्त्रों के ज्ञान का प्रदर्शन नैषध में बहुत अधिक किया गया है।

बृहत्त्रयी के काव्यकारों ने ~~काव्यकारों ने~~ काव्य-रचना को पुरानी परम्परा से निकलकर अतिरन्जित श्रृंगार-वर्णन की नयी परम्परा को स्थापित किया है। वस्तुत: वे पूर्व कवियों को उस परम्परा को त्याग देते हैं, जिसकी काव्य-धारा में वासनात्मक और उन्मुक्त लेखन को स्थान नहीं दिया जाता रहा है,और यदि कुछ स्थान भी मिला है, तो उसे परन्तु नगण्य घोषित कर पाठकों को निरुत्साहित कर दिया गया है। किन्तु बृहत्त्रयी के काव्यकारों ने भौतिक सुख,भोग, विलास को जैसे जीवन का अपरिहार्य भाग मानते हैं और प्रकृति के सादर प्रदत्त सुख-विलासों को भोग लेना व्यक्ति का कर्तव्य एवम् अधिकार मानते हैं। क्योंकि बृहत्त्रयी में यह विचित्र संयोग मिलता है कि वे काव्य-कार एक ओर चार्वाक को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत करते हैं और दूसरी ओर वे भौतिक भोग-विलासों के वर्णन का समर्थन करते हैं। एक ओर वे दार्शनिक तत्त्वों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं, तो दूसरी ओर वे रमणियों, अप्सराओं, यादवाङ्गनाओं, वेश्याओं का अर्धनग्न, नग्न-चित्रण, कामासनों, सुरत-क्रीड़ाओं, राजाओं के विलास-व्यापारों के स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त लेखन का संसार रच देते हैं। बृहत्त्रयी के काव्यकारों का अन्वेषण एवं दर्शन है कि जीवन केवल तप एवं तपस्या में खपा देने भर के लिए नहीं है, अपितु प्रकृति एवं जीवन के अनुबन्धों का सादर स्वागत कर जीवन का सम्मान सुख-भोग कर लेना भी आवश्यक है। जीवन

पलायन वाद की चीज नहीं है। इसीलिए माघ के राजागण रात्रि भर जागरण कर काम-क्रीड़ा का सेवन कर तथा अल्प विश्राम के बाद प्रात: काल के शुभ मुहूर्त में धर्म अर्थ आदि पुरूषार्थों का चिन्तन करते हैं। इसीलिए श्रीहर्ष की दमयन्ती इन्द्र से विवाह कर केवल मोक्ष अर्थात् स्वर्ग सुख को नहीं भोगना चाहती है, अपितु वह नल के परिणय में पृथ्वी के धर्म ,अर्थ और काम का भी भोग करना चाहती है।इसी-लिए भारवि के अर्जुन इन्द्र के स्वर्ग सुख केप्रलोभन को निराकृत कर भौतिक सुख के साधन पाशुपत अस्त्र-प्राप्ति की व्याख्या करते हैं। अस्तु , जो भी हो बृहत्त्रयी के काव्य-कार काव्य के लिए भावनात्मक सौन्दर्य और सुख से कुछ भी कम भौतिक और दैहिक सौन्दर्य और सुख को नहीं मानते हैं।

बृहत्त्रयी में मध्यकालीन समाज कीमानसिकता का प्रतिफलन हुआ है। मध्यकालीन समाज सामन्ती समाज था। जिसमें एक वर्ग भोग-विलास के रंग में डूबा हुआ था। इसीलिए हम उस मध्यकालीन समाज के उस भोगवादी वर्ग की प्रतिच्छाया बृहत्त्रयी को राजपरककथावस्तु में पाते हैं और इसीलिए बृहत्त्रयी में अतिरञ्जित श्रृंगार -लेखन को अतिशाशयिता प्राप्त होती है। मध्यकालीन समाज का शिक्षित वर्ग विद्वता-पूर्ण लेखन को प्रश्रय देता था। उसे कालिदासवादी रसात्मकता एवं सहजता में अधिक रूचि नही रही थी, इसीलिए बृहत्त्रयी के काव्यकारों ने पाण्डित्यप्रदर्शन पूर्वक महाकाव्यों की रचना की। उस मध्यकालीन भौतिक वादी समाज का प्रतिबिम्ब बृहत्त्रयी में स्पष्ट लक्षित होता है।

बृहत्त्रयी के तीनों महाकाव्यों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठ लेखन की स्पर्धा देखने को मिलती है। हर एक क्षेत्र एवं विषय में बृहत्त्रयी में उत्तरोत्तर बलीयान् लिखने कीप्रवृत्ति देखने को मिलती है। दार्शनिक तत्त्वों के प्रयोग द्वारा पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रति स्पर्धा सर्वाधिक देखने को मिलती है। इस प्रतिस्पर्धा में श्रीहर्ष का नैषध पाण्डित्य- प्रदर्शन का उत्कृष्ट महाकाव्य बन गया है। किरात, शिशुपालवध और नैषध को आकार में क्रमशः विस्तृततर बनाया गया है। सर्गों को दीर्घतर रूप में व्यवस्थित कियागया है। वर्ण्य-विषय को व्यापकतर बनाया गया है। शास्त्रज्ञान को भी क्रमशः अधिक व्यापक रूप में निरूपित किया गया है।

अन्ततः, हम कह सकते हैं कि बृहत्त्रयी समानान्तर शैली में रचित तीन महाकाव्यों का ऐसा संग्रह है, जो अपने शैलीगत वैशिष्ट्य पाण्डित्य-प्रदर्शन एवं दार्शनिकता की बोझिलता के कारण संस्कृत-साहित्य-जगत् में एक विशिष्ट स्थान रखता है। यहाँ शब्दार्थ का साहित्य ही नहीं ,अपितु रसवत्ता एवं दार्शनिकता का विचित्र समन्वय विद्यमान है। बृहत्त्रयी ऐसी काव्य-धारा है जिसमें निमज्जन कर विद्वान् पाठक काव्य के परमानन्द से आह्लादित एवं रोमाञ्चित हो उठते हैं, साथ ही दार्शनिकता की धारा से अपनी बुद्धि को निर्मल करते है। विद्वान् पाठक बृहत्त्रयी को रजनी में,

दार्शनिक तत्त्वों के तारकों की छाया में, ग्रन्थिल लेखन के तम में,वासनात्मक लेखन की मन्द बयार में,भङ्गिमापूर्ण कल्पना के चमत्कारी उल्कापात में,अपनी बुद्धि के पादों के कौतुकी संचरण में किसी सुखराशिमयी चान्द्रमसी छटों के मधुर आनन्द से आप्लावित होता रहता है।

सहायक ग्रन्थ-सूची
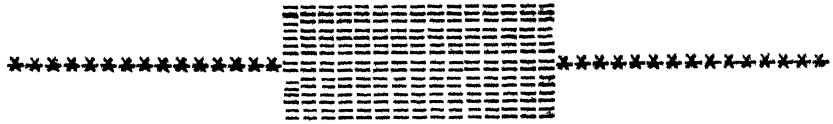
दर्शन के प्रमुख ग्रन्थ

1.	भारतीय दर्शन की भूमिका	डॉ0उमेश मिश्र, हिन्दीसंस्थान, लखनऊ
2.	भारतीय दर्शन	बलदेव उपाध्याय
3.	भारतीय दर्शन	डॉ0 हिरियन्ना
4.	भारतीय दर्शन	डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
5.	इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन फिलासफी	का हिन्दी अनुवाद- मूल लेखक डॉ0 सतीश चन्द्र चट्टोपाध्याय और डॉ0 धीरेन्द्र मोहन दत्त।
6.	तर्क-भाषा	केशव मिश्र
7.	सांख्यकारिका	ईश्वर कृष्ण
8.	वेदान्त सार	सदानन्द योगीन्द्र (हिन्दी रूपान्तर तत्त्व परिजात)
9.	श्रीमद्भगवत्गीता	व्यास (गीताप्रेस, गोरखपुर)
10.	योगाङ्क	कल्याण
11.	सर्वदर्शन-संग्रह	माधवाचार्य
12.	पातन्जल योग दर्शन	हरिहरानन्द आरण्य
13.	श्रीमद्भागवत्	दशामस्कन्ध संस्कृत हिन्दी टीका
14.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण	गीता प्रेस, गोरखपुर
15.	कामसूत्र	वात्स्यायन

16.	ब्रह्मसूत्र भाष्य	शंकर (निर्णय सागर, बम्बई)
17.	कठोपनिषद्	अनुवादक शिवहरि दत्त, गीताप्रेस, गोरखपुर

विषय के प्रमुख सहायक ग्रन्थ

1.	किरातार्जुनीयम्	मल्लिनाथ की टीका हिन्दी अनुवाद
2.	किरात-घंटा-पथ-प्रकाश	मल्लिनाथ (संस्कृत-हिन्दीसम्पूर्ण व्या सहित)
2.	किरात-हिन्दी —	इन्गलिश ट्रान्सलेशन नोट्स-एम0आर0
4.	भारविकाव्य में अर्थान्तरन्यास	डॉ0 उमेश प्रसाद रस्तोगी (चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी 965)
5.	शिशुपालवधम्	मल्लिनाथीय मणिक प्रभा संस्कृत-हिन व्याख्या सहित
6.	महाकविमाघ उनका जीवन तथा कृतियाँ	डॉ0 मनमोहन लाल जगन्नाथशर्मा कृतशोध-प्रबन्ध, नवयुग प्रकाशन, दिल्ल
7.	नैषधीयचरितम्	श्री हर्ष-नारायणकृत नैषधीयप्रकाश टी सहित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 19
8.	नैषध महाकाव्य	श्री हर्ष मल्लिनाथ कृत जीवातुमणिक प्रभा सहित, चौखम्भा संस्कृत सीरी बनारस 1954
9.	चन्द्रकला	संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित, शेषराज शर्मा, "रेगनी"

नैषध परिशीलन — डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल

शिशुपालबध — माघ- मल्लिनाकृत सर्वंकषा सहित चौखम्भा विद्याभवन, बनारस, 1955

बृहत्त्रयी का आलोचनात्मक अध्ययन

श्रीरसपञ्चाध्यायी -सांस्कृतिक अध्ययन — डॉ० रसिक बिहारी जोशी (मुन्सीराम मनोहर लाल, दिल्ली, 1961)

संस्कृत साहित्य का इतिहास — पं० बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी

संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास — डॉ० कपिलदेवद्विवेदी

संस्कृत साहित्य की रूपरेखा — पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय

हिन्दी अभिनव भारती — डॉ० नगेन्द्र, दिल्ली विश्वविद्यालय

साहित्य दर्पण - — विश्वनाथ- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना

काव्य प्रकाश — मम्मट-ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी

काव्यादर्श — दण्डी- गवर्नमेन्ट ओरियन्टल सीरीज पूना 1988 (प्रभा टीका)

काव्यालङ्कार — भामह -बिहार राष्ट्र भाषा, परिषद

रामायण — वाल्मीकि -गीताप्रेस, गोरखपुर

महाभारत — श्रीकृष्णद्वैपायन (गीता प्रेस, गोरखपुर)

रघुवंश — कालिदास (चौखम्भा संस्कृत सीरीज

मेघदूत

कुमारसम्भव — कालिदास, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

बुद्धचरितम् — अश्वघोष, " " " "

सौन्दरनन्द — " " " " "

उत्तर रामचरितम् — भवभूति " " " "

कादम्बरी — बाणभट्ट " " " "

हर्षचरित — " " " " "

मुद्राराक्षस — विशाखदत्त " " " "

काव्यमीमांसा — राजशेखर

अभिज्ञानशाकुन्तल — कालिदास

पद्यचुड़ामणि — बुद्धघोष

कप्फणाभ्युदय — शिवस्वामिन्

धर्मशर्माभ्युदय — हरिश्चन्द्र

नाट्यशास्त्र — भरत (अनुवादक डॉ० रघुवंश, मोतीलाल, बनारसी दास, दिल्ली, वाराणसी, पटना)

ध्वन्यालोक — आनन्द वर्धन (लोचन एवं बालप्रिया सहित चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

खण्डन खाद्य — श्री हर्ष

शिवशक्तिसिद्धि — "

नलचम्पू — त्रिविक्रम भट्ट

परिशिष्ट पर्वन् — हेमचन्द्र (जैन-ग्रन्थ)

मिलिन्द पन्हो — नागार्जुन (बौद्ध ग्रन्थ)

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निबन्ध

महाकवि भारवि का जीवन दर्शन	डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री, मध्य प्रदेश संदेश, यजन०, 1958
शिशुपालवध में रैवतक -वर्णन	डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री, कल्पना पत्रिका दि० 1952
संस्कृत साहित्य में ऋतु-वर्णन	डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री अजन्ता पत्रिका , 1952 दि०

0 0 0 0 0
0 0 0
0

(Books in English)

1. Chaitanya Krishna - A new History of Sanskrit Literature, Asia Publishing house 1962.

2. De. S. K. - History of Kavya Literature in a History of Sanskrit Literatu (Classical period) Val I(i) Culcutta.

3. Handiqui K. K. - The Naisadha charita of Sriharsa, Translated in to English with critical notes Poona, 1956.

4. Jani A. N. - A critical study of Sanskrit's Naisadhiycharitam, oriental Institute Baroda, 1957.

5. Kane P.V. - History of Sanskrit poetics, Bombay. 1931.

6. Raja C. Kunhan - Survey of Sanskrit literature, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay.